

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180497

UNIVERSAL
LIBRARY

शरत्-साहित्य

ॐ विप्रदास



अनुवादकर्ता

धन्यकुमार जैन

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं. ४.

जनवरी, १९४६
मूल्य तीन रुपया

: मुद्रक :
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केलेवाडी, गिरगांव, बम्बई :

विप्रदास

१

बलरामपुर गाँवमें रथ-थानके नीचे किसान-मजूरोंकी एक बैठक हो गई। निकटवर्ती रेल्वे-लाइनके कुलियोंके दलने भी—रविवारकी छुट्टीकी फुरसतमें—सभामें शामिल होकर उसकी इज्जत बढ़ाई, और, कलकत्तेसे कुछ नामी वक्ताओंने आकर आधुनिक कालके असाम्य और अमत्रीके विरुद्ध तीव्र प्रतिवाद करते हुए ज्वालामय भाषण दिये। असंख्य प्रस्ताव स्वीकृत हुए, और बादमें जुलूस निकालकर 'वन्दे मातरम्' की ध्वनियोंके साथ गाँवकी परिक्रमा करके उस दिनके सम्मिलनका कार्य समाप्त किया गया।

बलरामपुर समृद्ध गाँव है। उसमें छोटे-बड़े अनेक ताल्लुकेदारों और धनी गृहस्थोंका वास है। एक छोरपर मुसलमान किसानोंका मुहल्ला है; और उसीके पास कुछ घर 'बागदी' और 'दूले' लोगोंके हैं। भागीरथी-नदीकी एक शाखा बहुत समय पहले यहाँ तक आकर रुक गई थी और उसने अब कोस-भर जमीन अर्ध-वृत्ताकारमें घेरकर एक ताल-सा बना दिया है; उसीके किनारे इन लोगोंकी शोपड़ियाँ हैं। इस गाँवमें सबसे ज्यादा धनी व्यक्ति हैं यशेश्वर मुखोपाध्याय।

१ 'रथतला' बंगला शब्द है, जिसके मानी रथ-स्थान या रथ-स्थान है। इस जगहसे (आषाढ़ मासमें) जगन्नाथ या अन्य किसी देवताका रथ निकलता और फिर वापस आकर इसी जगह रुका रहता है।

२ 'बागदी' = बंगालकी एक अनुन्नत जाति है जो खेतीवारी बगैरह करती है; इस जातिके लोग प्रायः बलिष्ठ प्रभुभक्त और साहसी होते हैं। 'दूले' = होनेवाले भोइयोंकी श्रेणीकी एक जातिविशेष।

जमीन-जायदाद, और तिजारत आदिके देखते हुए उनकी सम्पत्ति और सम्पदाको यदि बहुत ज्यादा या जरूरतसे ज्यादा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उमकी विशाल अट्टालिकाके सामनेवाले रास्तेसे जब यह जुलूस लाल पताकाओंपर लिखित नानाप्रकारके वाक्यों और किसान-मजदूरोंके जोर-जोरसे जयजयकार-बहन करता हुआ गुजर रहा था तब उस मकानकी दूसरी मंजिलपर बरामदेमें खड़ा हुआ एक दीर्घाकृति बलिष्ठ युवक नीचेके सम्पूर्ण दृश्यको चुपचाप देख रहा था। अकस्मात् उसपर दृष्टि पड़ते ही विभुन्ध जनताका उफनता हुआ कोलाहल एक ही क्षणमें बुझ-सा गया। आगे-आगे चलनेवाले नेतृस्थानीय दो-तीन व्यक्तियोंने इधर-उधर देखकर बहुतसे लोगोंकी दृष्टिका चौँककर अनुसरण करके ऊपरकी ओर मुँह उठाते ही देखा कि वह युवक खम्भोंकी आड़में धीरे धीरे गायब हो गया। उन लोगोंने पूछा—“कौन है ?”

बहुतोंने दबे हुए गलेसे कहा—“विप्रदास बाबू।”

“कौन विप्रदास ? गाँवका जमींदार ?”

किसी एक जनेने कहा—“हाँ।”

नेता शहरके ठहरे, किसीकी ऐसी-कोई परवाह नहीं करते, उपेक्षाके साथ बोले—“ओः—यह बात है !” और दूसरे ही क्षण सिरके ऊपर हाथ घुमाते हुए बुलन्द आवाजसे एक साथ चीत्कार करते हुए बोले—“बोलो भारत-माताकी जय ! बोलो किसान-मजदूरोंकी जय ! बोलो बन्दे मातरम् !”

किन्तु कोई ग्वास नतीजा नहीं निकला। अधिकांश लोग चुप रहे या मन-ही-मन बोले, और जिन दो-चार जनोंने आवाज निकाली उनके भी क्षीण कण्ठ ज्यादा ऊँचे न जा सके—उनकी आवाज विप्रदासके बरामदेको लांघ कर उनके कानोंतक पहुँची या नहीं, समझमें नहीं आया। नेताओंने अपनेको अपमानित अनुभव किया, वे झुँझलाकर बोले—“गाँवका एक मामूली जमींदार, उससे इतना डर ! ये ही तो हमारे शत्रु हैं और हमारे शरीरका खून रात-दिन चूसा करते हैं। हमारी असली लड़ाई तो इन्हींके खिलाफ है। ये ही तो—”

प्रदीप वाग्मितामें सहसा बाधा आ पड़ी। बहुतसे पैनाये हुए ब्राण अब भी उनके तरकशोंमें संचित थे, किन्तु उनके प्रयोग करनेमें विघ्न आ गया। भीड़मेंसे एक आदमीने आहिस्तेसे कहा—“उनके भाई सा’ब हैं !”

“किनके ?”

एक पचीस-छब्बीस सालका युवक झंडा लेकर सबके आगे-आगे जा रहा था, उसने मुड़कर कहा—“वे मेरे ही बड़े भाई हैं !”

और मजेकी बात यह कि इसी युवकके आग्रह, उद्यम और खर्चसे आजका यह अनुष्ठान सफल हो पाया था ।

“ओः—आपके ! आप भी शायद यहांके जमींदार हैं ?”

युवक लज्जासे सिर झुकाये चुप रहा ।

*

*

*

२

::

विप्रदासने अपनी बैठकमें छोटे भाईको बुलवाकर कहा—“कलका आयोजन बुरा नहीं था, बहुत-कुछ चौका देनेवाला था । ‘वार-क्राइ’ (War cry = रणक्षेत्रके चीत्कार) भी खूब चुने हुए थे । यह तो मानना ही पड़ेगा कि गर्मी है ।” द्विजदास चुपचाप खड़ा रहा ।

विप्रदासने प्रश्न किया—“जुलूस क्या खासकर मेरे ही लिए मेरी नाकके सामनेसे निकाला गया था ? मैं डर जाऊँ इसलिए ?”

द्विजदासने शान्त स्वरसे जवाब दिया—“सिर्फ आपके लिए ही नहीं । जुलूस चाहे जिस रास्तेसे ले जाया जाय, डर जिनके लिए है वे तो डरेंगे ही भाई सा’ब ।”

विप्रदास मुसकरा दिये । मुसकराहट बिलकुल अवज्ञापूर्ण थी । बोले—“तुम्हारे भाई-साहब उस श्रेणीके आदमी नहीं हैं, यह बात तुम्हारे जुलूसवालोंमेंसे बहुतोंको मालूम है । नहीं तो, उनकी जयध्वनि सुननेके लिए मुझे बरामदमें जाकर कान लगाके खड़ा नहीं होता पड़ता । घरके भीतर बैठे बैठे ही सुन सकता । तुम लोगोंके तरह-तरहके झंडे और बड़े बड़े व्याख्यानोसे डरता नहीं । मैं खूब अच्छी तरह समझता हूँ, चमचमाते हुए बनावटी दाँतोंसे आदमीको सिर्फ बन्दर घुड़की ही दी जा सकती है, उनसे काट खानेका क्रम नहीं लिया जा सकता ।”

जिस कारणसे कल बहुतसे लोगोंका कण्ठरोध हो गया था वह छिपा नहीं था । और उसीका इशारा पाकर द्विजदासने मन-ही-मन गहरी लज्जाका अनुभव

किया। वह स्वभावतः शान्त प्रकृतिका आदमी है, और अपने बड़े भाईका अत्यन्त सम्मान करनेके कारण शायद और किसी प्रसंगमें वह चुप ही रहता; किन्तु जिस बातको लेकर उन्होंने ताना मारा उसका सहना कठिन था। फिर भी मृदुकंठसे ही उसने कहा—“भाई साहब, बनावटी दाँतोंसे जितना हो सकता है उससे ज्यादा नहीं होनेका, यह बात हम लोग जानते हैं; सिर्फ आप ही लोग नहीं जानते कि संसारमें सचमुचके दाँतवाले लोग भी हैं, काट खानेके दिन आनेपर उनकी कमी नहीं रहती।”

ऐसे जवाबकी आशा नहीं थी। विप्रदास आश्चर्यसे उसके मुँहकी ओर देखकर बोले—“अच्छा ?”

द्विजदास प्रत्युत्तरमें कोई एक बात कहने जा रहा था, किन्तु डरकर रुक गया। डर विप्रदासका नहीं था, अकस्मात् दरवाजेके बाहर माका कंठस्वर सुनाई दिया—“तुम लोग दरवाजेपर परदा क्यों लटकाये रखते हो बताओ तो ? छुआ-छुई किये बिना घरमें घुसना मुश्किल है। घर-गिरिस्ती विलायती फैशनसे भर गई है।”

द्विजदासने व्यस्त होकर परदा हटा दिया, और विप्रदास कुरसी छोड़कर उठ खड़े हुए। एक प्रौढ़ विधवा महिला भीतर घुस आई। उमर चालीससे ऊपर पहुँच चुकी है, किन्तु रूपकी सीमा नहीं। जरा कुछ कृश हैं, मुँहपर वैधव्यकी कठोरताकी छाप है, यह बात जरा लक्ष्य देते ही समझमें आ जाती है। छोटे लड़केकी ओर पूरी तरह पीठ करके बड़े लड़केसे बोलीं—“क्योंरे विप्र, सुना है कि एकादशीके बारेमें इस महीनेमें पतरामें गड़बड़ी है ? ऐसा तो कभी नहीं होता ?”

विप्रदासने कहा—“होना तो नहीं चाहिए मा।”

“तू स्मृतिरत्न पंडितजीकी एक बार बुलवा तो सही। उनका क्या मत है सुन लूँ।”

विप्रदास जरा-सा हँसकर बोले—“सो बुलवाये लेता हूँ। पर उनके मतामतसे क्या होगा मा, तुम्हारे कानों तक एकबार जब कि बात पहुँच चुकी है, तब मैं जानता हूँ कि उन दोनों दिनोंमेंसे एक भी दिन तुम जल तक न छुओगी।”

मा हँस दी, बोलीं—“झूठमूठ उपासे मरनेका क्या किसीको शौक है रे ? पर उपाय क्या है ? इसके करनेसे पुण्य नहीं, न करनेसे अनन्त नरक है। क्यों

रे, बहू कह रही थी, अखबारमें लिखा है कि कोई एक बड़े-भारी पंडित कलकत्तेमें बड़ी-अच्छी ' भागवत ' की व्याख्या कर रहे हैं । एक दफे दरियाफ्त तो करवा देख, क्या करनेसे इस घरमें उनके चरणोंकी धूल पड़ सकती है ? ”

“ तुम्हारी आज्ञा होते ही करवा देखूँगा मा ? ”

“ क्यों, मेरी आज्ञाकी ही क्या ज़रूरत है ? तुम लोगोंको सुननेकी इच्छा नहीं होती ? कब हुई थी कथा हमारे यहाँ—”

विप्रदासने हँसकर बाधा पहुँचाते हुए कहा—“ उसे तो अभी तीन महीने भी नहीं हुए मा । ”

माने आश्चर्यके साथ कहा—“ कुल तीन ही महीने ? पर तीन महीने ही क्या कम हैं ? खैर, जो भी हो बेटा, अबकी बिना कहे काम नहीं चलेगा । मेरी दोनों मामियोंने चिट्ठी लिखी है । कैलासनाथ-मानसरोवरके दर्शनके लिए अबकी मैं अवश्य जाऊँगी । ”

विप्रदासने हाथ जोड़कर कहा—“ दुहाई है मा, यही आज्ञा तुम मत करना । तुम्हारे दोनों बेटोंमेंसे बगैर एकके साथ गये मामियोंके भरोसे तुम्हें तिब्बत नहीं भेज सकूँगा और सब तरहकी हानि सह सकता हूँ, पर माको खोनेकी हानि नहीं सह सकता । ”

माकी दोनों आँखें भर आई, बोलीं—“ डरे मत रे, कैलासकी यात्रामें मरण हो ऐसा पुण्यका जोर तेरी माका नहीं है । मैं फिर लौट आऊँगी । पर बेटोंमेंसे तू तो मेरे साथ जा नहीं सकेगा । तुझपर ही इतनी बड़ी घर-गिरस्तीका सारा भार है । और, मेरे पीछे जो बेटा खड़ा है उसे साथ लेकर तो मैं वैकुण्ठ भी जानेको राजी नहीं । ब्राह्मणका लड़का होकर संध्या-पूजा तो बहुत दिनोंसे ही छोड़ रखी है, सुना है कि कलकत्तेमें भक्ष्य-अभक्ष्यका भी कुछ विचार नहीं करता । और फिर कल क्या किया है सुना है ? ”

विप्रदास भले-आदमी जैसा मुँह बनाकर बोला—“ और क्या किया ? मैंने तो कुछ नहीं सुना । ”

माने कहा—“ जरूर सुना है । तेरी आँखोंको धोखा दे सके इतनी बुद्धि उस लड़केमें नहीं है । पर इसका तू कोई प्रतिकार कर । वह हमारा ही खायेगा पहिनेगा और हमारे ही रुपयोंसे कलकत्तेसे आदमी बुलाकर हमारी रियायाको उमाड़नेका षड्यंत्र करेगा ? उसका कलकत्तेका खर्चा तू बंद कर दे । ”

विप्रदासने आश्चर्यके साथ कहा—“यह कैसी बात है मा, पढ़ाईका खर्च बंद कर दूँ ? पढ़ेगा नहीं ?”

माने कहा—“जरूरत क्या है ? मेरे ससुरके स्कूलके छात्रोंने जब एक साथ दल बाँधकर आके कहा कि विदेशी शिक्षासे देशका सर्वनाश हो रहा है, तब उन्हें तू मारने दौड़ा था । और अब जब कि तेरा अपना छोटा भाई ठीक वही बात कहता डोलता है, तो तू उसका कोई प्रतिकार नहीं करेगा ? यह तेरा कैसा न्याय है ?”

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—“उसमें एक कारण है मा । स्कूलके क्लासमें प्रमोशन न पानेपर भी वैसी शिकायत करना मुझसे नहीं सहा जाता, मगर द्विजुकी तरह एम्० ए० पास करके विलायती शिक्षाको कोई चाहे कितना ही कोसता फिर, मुझे उसकी परवाह नहीं ।”

माने कहा—“मगर यह ? हमारे ही रुपयोंसे हमारी ही रैयतको भड़काना ?”

द्विजदास अब तक चुप था, उसने एक भी बातका जवाब न दिया था । अबकी उसने जवाब दिया, बोला—“कलकी सभा-समितिके लिए तुम लोगोंकी इस्टेटका एक पैसा भी मैंने नहीं बिगाड़ा ।”

माने कमरेमें घुसनेके बाद एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा था; और अब भी नहीं देखा । विप्रदाससे पूछने लगीं—“तो इस अभागसे पूछ तो सही, रुपये आये कहाँसे ? रोजगार कर रहा है ?”

ठीक इसी समय परदेके बाहरसे चूड़ियोंकी टुन टुन आवाज हुई । विप्रदासने कान लगाके सुनकर कहा—“बाहरसे जवाब आ रहा है न । तुम्हारे घरकी बहू ही अगर रुपयेकी मदद दे, तो उसे कौन रोक सकता है बताओ भला ?”

माको याद आ गया । बोलीं—“हाँ, यही बात है । सतीका ही काम है यह । बड़े-आदमीकी लड़की बापकी जमींदारीसे सालाना छै-हजार रुपये पाती है, इसका तो मुझे खयाल ही नहीं था ।” जरा देर स्थिर रहकर फिर कहने लगीं—“तेरी सगाई करने जब समधी साहब खुद यहाँ आये, तभी मैंने तेरे बापूजीसे कहा था कि राय घरानेकी लड़की घरमें लानेकी जरूरत नहीं । अभाय राय उन्हींके खानदानका तो था जो विलायत जाकर मेम ब्याह लाया था । वे लोग क्या नहीं कर सकते ? उनके लिए दुनियामें असाध्य क्या है ?”

विप्रदास उसी तरह मुसकराता हुआ चुप रहा । वह जानता था कि सतीके भाग्यसे यह उलाहना कभी जानेका नहीं । उसके मायकेके खानदानका कोई

अनाथ राय मेम ब्याह लाया था, उस बातको मा अब तक भूल नहीं सकी हैं।

सबको चुप देखकर वे फिर कहने लगीं—“ अच्छा रहने दे। बाबा कैलास-नाथ अब मुझे खींच रहे हैं, उनके दर्शन करके लौट आऊँ; उसके बाद इसका इन्तजाम करूँगी। ” इतना कहकर वे वहाँसे चली गई।

विप्रदासने कहा—“ क्यों रे द्विजू, माको लेके जा सकेगा ? उन्होंने जब जानेकी ठान ली है तब भरोसा नहीं कि उन्हें रोका जा सकेगा। ”

द्विजदासने उसी क्षण अस्वीकार करते हुए कहा—“ आप तो जानते हैं, देवी-देवताओंपर मेरा विश्वास नहीं है। इसके सिवा मेरे साथ वे वैकुण्ठ जानेको भी तैयार नहीं, इतना तो आप उनके मुँहसे ही सुन चुके हैं—”

विप्रदासने असन्तुष्ट होकर कहा—“ हँरे पंडित, सुना है। पर तू जा सकेगा या नहीं, सो बता ? ”

“ मुझे तो अभी मरनेकी भी फुरसत नहीं। ”—इतना कहकर द्विजदास दूसरे प्रश्नके पहले ही घरसे बाहर चला गया।

विप्रदासने एक साँस छोड़कर कहा—“ यही बात है ! ऐसा ही काम है देशका कि माको भी नहीं माना जा सकता। ”

यहाँपर माका जरा-सा परिचय देना आवश्यक है। विप्रदासकी ये विमाता हैं। विप्रदासकी मा मरनेके एक वर्ष बाद ही यज्ञेश्वर दयामयीको ब्याह कर लाये थे, और उसी दिनसे इन्हींके हाथों वह बड़ा हुआ है। ये उसकी मा नहीं हैं—यह बात विप्रदासको काफी उमर न होने तक मान्य ही नहीं हो पाई थी।

*

*

*

*

३

इस घरमें द्विजदास सबसे ज्यादा आदर करता था अपनी भाभीका। उसके सब तरहके फिजूल-खर्चके लिए रुपये भी आते थे भाभीके सन्दूकसे। सती सिर्फ रिश्तेके हिसाबसे ही नहीं उमरके लिहाजसे भी कई महीने उससे बड़ी थी। इसीसे, अक्सर वह उसका नाम लेकर पुकारा करती थी। इसी बातपर बचपनमें द्विजने मासे असंख्य बार शिकायत की है।

सिर्फ ग्यारह सालकी उमरमें सतीने वधूके रूपमें इस घरमें प्रवेश किया था, जिससे उसके लड़-प्यारकी सीमा नहीं थी। सास हँसके कहतीं—“ऐसी बात है ? पर यह तो तुम्हारी बड़ी बेजा बात है बहूरानी, देवरको नाम लेके पुकारना।” सती कहती—“क्यों है, मैं जो उससे उमरमें बहुत बड़ी हूँ।”

“बहुत बड़ी ? कितनी बड़ी हो बेटी ?”

“मैं जनमी हूँ बैसाख महीनेमें, वो जनमा है भादोंमें।”

मा हँसकर कहतीं—“भादोंमें ही हुआ है न, मुझे ही याद नहीं था। अब अगर फिर कभी वह शिकायत करने आयेगा तो उसके कान ऐंठ दूँगी।”

अदालतमें हारकर द्विजु जब गुस्सा होकर चला जाता तब बहूको गोदके पास खींचकर सास स्नेहके साथ कहतीं—“अभी बच्चा है न, इसीसे नहीं समझता। ‘लालाजी’ कहनेसे बड़ा खुश होता है। कभी-कभी ‘लालाजी’ भी कह दिया करना, क्यों ठीक है बहूरानी ?”

सतीने राजी होकर गरदन हिलाकर जवाब दिया था—“अच्छा मा, कभी कभी लालाजी ही कहूँगी।”

उस दिन वह थी बालिका, आज है इतने बड़े घरकी गृहिणी। विधवा होनेके बादसे सास तो लगी रहती हैं अपने जप-तप और धर्म-ध्यानमें, फिर भी उनका उस दिनका उपदेश बादमें बहुत दिनों तक सतीके बहुत काममें आया है। जैसे आज।

पिछले परिच्छेदमें वर्णित घटनाको लगभग पंद्रह-सोलह दिन हो गये हैं। आज सुबेरे ही सतीने देवरके पढ़नेके कमरेमें प्रवेश करते हुए पुकारा—“लालाजी—”

द्विजदासने हाथ उठाकर रोकते हुए कहा—“रहने दो भाभी, ज्यादा खुशामदकी ज़रूरत नहीं, मैं कहूँगा।”

“क्या करोगे सुनूँ भी ?”

“तुम जो हुकम दोगी, सो ही। मगर भाई-साहबकी यह बड़ी बेजा बात है।”

“बेजा कैसे हुई बताओ ?”

द्विजदास वैसे ही नाराजीके साथ बोला—“मैं जानता हूँ। अभी-अभी मैं भाई-साहबके कमरेके सामने होकर आ रहा हूँ। भीतर वे, मा और तुम तीनों मिलकर जो षड्यंत्र रच रहे थे, सो मेरे कानों तक पहुँच गया है। उनमें साहस नहीं कि मुझसे कहें, इसीसे तुम्हें पकड़ा है काम हासिल करनेके लिए। कितनी बड़ी बेजा बात है बताओ तो !”

सतीने मुसकराते हुए कहा—“ बेजा तो नहीं है लालाजी । उन लोगोंको अच्छी तरह मालूम है कि उनके कहते ही जवाब मिलेगा, ‘ मुझे मरनेकी भी फुरसत नहीं ’—पर भाभीके हुकम करते ही द्विजजूकी मजाल नहीं कि ‘ नहीं ’ कहे । ”

द्विजदासने गरदन हिलाते हुए कहा—“ यहीं तो मेरे लिए मुश्किल है, और यहीं उन्हें जोर मिल गया है । मगर करना क्या होगा ? ”

सतीने कहा—“ मा कैलास दर्शनको अवश्य जायेंगी और तुम्हें उनके साथ जाना पड़ेगा । ”

द्विजदास कुछ क्षण चुप रहकर बोला—“ दो-तीन महीनेसे कम नहीं लगेंगे । काममें कितनी हानि होगी, सोच देखा है भाभी ? ”

सतीने स्वीकार करते हुए कहा—“ हानि तो कुछ होगी ही । पर एक नई जगह भी देख आओगे । अपनी तरफसे इसे खालिस हानि नहीं कहा जा सकता । राजा-भइया हो न मेरे, बादमें इसमें कोई आपत्ति नहीं करना । ”

द्विजदासने कहा—“ तुम जब आदेश कर रही हो तो आपत्ति नहीं करूँगा,—साथ जाऊँगा । मगर माने उस दिन बड़ी आसानीसे भइयासे कहा था, मेरा कलकत्तेका पढ़ाईका खर्च बन्द कर देनेके लिए । ”

सतीने हँसकर कहा—“ वह गुस्सेकी बात थी लाला । पर अभी हुकम जिन्होंने दिया है वे माके सिवा और कोई नहीं । यह बात भी तुम्हें न भूलना चाहिए । ”

द्विजराजने उत्तर दिया—“ भूल नहीं भाभी । उस दिनसे मैंने भी क्या तय कर रखा है जानती हो ? मैं अकेला आदमी ठहरा, ब्याह करनेका मुझे कभी समय भी नहीं मिलेगा, मौका भी नहीं आयेगा । लिहाजा खर्च मामूली समझो । ज़रूरत पड़ेगी तो लड़कोंको पढ़ाकर गुजर कर देंगा, पर इनके इस्टेटसे कभी एक पैसा भी नहीं माँगूँगा । ”

सती फिर हँस दी, बोली—“ माँगनेकी ज़रूरत नहीं होगी लालाजी, खुद ही आ हाज़िर होगा । और अगर न होगा, तो भी तुम्हें लड़के पढ़ानेकी ज़रूरत न होगी । कैमसे कम, मेरे जीते जी तो नहीं । उसका भार मुझपर रहा । ”

यह भरोसा द्विजजू भी मनमें स्वतःसिद्धकी भाँति मौजूद था, लहमे-भरके लिए उसके पलक भारी हो उठे, किन्तु उस भावको झटपट दूर करके उसने पूछा—“ कब जानेका तय हुआ है इन लोगोंका ? कभी ज़ाँयें, आखिर मुझे ही

साथ जाना पड़ा। और मजेकी बात यह कि माने उस दिन साफ-साफ ही कहा था कि मुझ-जैसे म्लेच्छाचारीके साथ वे वैकुण्ठ जानेको भी राजी नहीं। इसीको कहते हैं भाग्यका परिहास, क्यों भाभी ?”

सतीने इस उलाहनेका जवाब नहीं दिया, चुप रही।

द्विज कहने लगा—“खैर, कुछ भी हो, तुम्हारा हुक्म न टाळूंगा भाभी,—उन्हें निश्चिन्त रहनेको कह देना।”

सती हँस दी, बोली—“मुझे भेजके वे निश्चिन्त ही हैं। कमरेसे बाहर निकलते ही तुम्हारे भाई साहबकी बात मेरे कानोंमें पड़ी, वे जोरके साथ मासे कह रहे थे, अब बेधड़क यात्राकी तैयारियाँ करो मा, जिन्हें दौत्य-कार्यमें नियुक्त किया गया है उनके सामने भइयाजीका तर्क नहीं चलनेका। गरदन झुकाकर मंजूर कर लेगा, तुम देख लेना।”

सुनकर द्विजदास मारे क्रोधके क्षणभर सन्न रहकर बोला—“नामंजूर नहीं कर सकता, यह जानकर ही अगर उन लोगोंने यह षड्यंत्र रचा हो कि स्त्रियोंके मनमें बेमतलबकी उठनेवाली किसी लहरको चरितार्थ करनेका वाहन मुझे ही बनना पड़ेगा, तो मेरी तरफसे तुम दादा-भाईको यह बात कह देना भाभी, कि उन्हें शरम आनी चाहिए।”

सतीने कहा—“कहनेसे कुछ लाभ नहीं होगा लालाजी, जमींदार होकर जो प्रजाका खून चूसा करते हैं उनकी यही नीति है। अपना काम हासिल करनेमें ये लोग किसी तरहकी हया-शरम महसूस नहीं करते। सम्पत्तिके आधे मालिक होते हुए भी जब तुम्हें इनकी जमींदारीसे रुपये लेनेमें संकोच मालूम होता है तब, एक तरफ जैसे मुझे दुःख होता है, वैसे ही दूसरी ओर मन खुशीसे भर उठता है। तुम्हारा नाम लेकर माको मैंने भरोसा दे दिया है कि उनके जानेमें विघ्न नहीं होगा, तुम साथ जाओगे। तीर्थसे अच्छी तरह वापस लौट आओ लालाजी, चाहे तुम्हारा कितनाही नुकसान हो मैं सबका सब पूरा कर दूँगी।”

द्विजदासने चुपकेसे चौकीपरसे उठकर भाभीके पाँवकी धूल माथेसे लगाई और फिर वापस अपनी जगहपर जा बैठा।

सतीने कहा—“अभी तक तो पराई उम्मेदवारी ही करती रही। अब मेरा अपना अनुरोध भी एक है ?”

द्विजदासने हँसकर कहा—“तुम्हारा अपना ? यह लेकिन मुझसे नहीं हो सकेगा भाभी।”

सती खुद भी हँसी, बोली—“ ताज्जुब नहीं लालाजी, डर लगता है कहीं सुनके ‘ ना ’ न कह बैठो । ”

“ अच्छी बात है, तो कहके ही न देख लो । ”

सतीने कहा—“ मेरे एक भ्लेच्छ चाचा हैं,—सगे नहीं, बापूजीके चचेरे भाई—वे विलायत गये थे । तब कहीं यह खबर इन लोगोंके कानों तक आ पहुँचती तो इस घरमें मैं आ ही नहीं सकती । माके मुँहसे यह बात सुनी होगी शायद ? ”

“ बहुत दफे । यहाँ तक कि औसतन फी-रोज एक बारके हिसाबसे गिना जाय तो इन पंद्रह-सोलह सालोंमें उसकी गिनती पाँच-छैएक हजार तक अवश्य पहुँच जायगी । ”

सतीने हँसते हुए जवाब दिया --“ मेरा अन्दाज भी यही है । चाचा बम्बई रहते हैं । उनके एक ही लड़की है और वहीं पढ़ती है । अगले साल वह विलायत जायगी अपनी पढ़ाई पूरी करने । तुम्हें जाकर उसे लिवा लाना होगा । ”

“ कहाँसे ? बम्बईसे ? ”

“ हाँ । वह लिखती है, आ तो वह अकेली भी सकती है, लेकिन इतना दूरका सफर, अकेली बुलानेमें मेरी हिम्मत नहीं होती । ”

“ उन्हें पहुँचा देनेवाला कोई नहीं है ? ”

“ नहीं, चाचाजीको छुट्टी नहीं मिलेगी । ”

द्विजदास सहसा राजी न हो सका, सोचने लगा । सती कहने लगी—“ मेरा जब ब्याह हुआ था तब वह सात-आठ सालकी बच्ची थी । उसके बाद एक बार सिर्फ भेंट हुई थी कलकत्तेमें, तब उसने मैट्रिक पास करके आई० ए० पढ़ना शुरू ही किया था,—उसे तो कई साल हो गये । उसे मैं बहुत ही प्यार करती हूँ लालाजी, अगर तकलीफ उठाकर उसे एक बार लिवा लानेके लिए वह अकसर चिट्ठी लिखा करती है, पर कोई मौका ही नहीं लगता । ”

द्विजदासने पूछा—“ मगर अभी कौनसा मौका लग गया ? मङ्ग्या राजी हो गई हैं ? ”

सती इस सवालका सहसा जवाब न दे सकी । और न दे सकनेकी बजहसे ही एक तरहकी सचमुचकी व्याकुलता उसके चेहरेपर प्रकट हो उठी । ज़रा ठहरकर उसने कहा—“ मासे कहा है । अब भी ठीक राय तो उन्होंने नहीं दी है, पर अपनी तीर्थयात्राको लेकर वे इतनी बावली हो रही हैं कि आशा है

इन्कार न करेंगी। इसके सिवा वे खुद जब यहाँ नहीं रहेंगी तब दो-तीन महीने वह आसानीसे मेरे पास रह सकेगी।”

द्विजदासने मन-ही-मन समझ लिया कि सासकी आज्ञा न मिलनेपर भी इस मौकेपर वह अपनी प्रवासिनी बहनको एक बार पास बुलाना चाहती है। उसने पूछा—“तुम्हारे चाचा क्या ब्राह्मसमाजी हैं?”

सतीने कहा—“नहीं। लेकिन हिन्दू-समाज भी उन्हें नहीं अपनाता। वे खुद भी शायद नहीं जानते कि उनका कहाँ स्थान है। इसी तरह दिन कट रहे हैं।

ऐसी अवस्था बहुतोंकी है। द्विजदास मन-ही-मन खिन्न होकर बोला—“जानेमें मुझे कोई ऐतराज नहीं भाभी, लेकिन मेरा कहना है कि माके रहते तुम उसे यहाँ मत बुलाओ। माको तो जानती ही हो, कुछ नहीं तो खाने-पीनेकी लुआछूतको लेकर ही ऐसा बखेड़ा खड़ा कर देंगी कि बहनको लेकर तुम्हें इतनी शर्मिन्दा होना पड़ेगा कि जिसकी हद नहीं। इससे तो बल्कि हम लोगोंके चले जानेपर बुलानेका इन्तजाम करना—सब तरफसे अच्छा रहेगा।”

यह अच्छी सलाह है, इस बातको सती खुद भी समझती है; मगर उसने जब कि खुद ही चिट्ठी लिखकर आनेकी प्रार्थना जताई है, तब वह किस तरह उसे किसी अनिश्चित भविष्यकी सम्भावनामें मनाईकी चिट्ठी लिख दे, यह उसकी समझमें न आया। इसका संकोच और दुःख क्या कुछ कम है? उसने कहा—“अपनी बहन होनेकी वजहसे नहीं कह रही लालाजी, बल्कि कलकत्तेमें उस बार महीने-भरके लिए उसे बहुत ही नजदीक पाकर मैंने निश्चितरूपसे समझ लिया है कि रूप और गुणमें वैसी लड़की संसारमें दुर्लभ है। बाहरसे उन लोगोंका आचार-व्योहार चाहे जैसा भी दीखे, पर, मा अगर उसे दो दिन भी अपने पास देख सकें तो म्लेच्छ लड़कियोंके बारेमें उनकी धारणा ही बदल जायगी। फिर कभी उसपर अश्रद्धा नहीं कर सकेंगी।”

द्विजदासने कहा—“लेकिन ये दो ही दिन माको दिखाना तो कठिन हैं भाभी। वे देखना ही नहीं चाहेंगी। यह भी सच है।”

सतीने कहा—“पर उसका रूप भी तो देखनेमें आयेगा? उसे तो मा आँख मीचकर अस्वीकार नहीं कर सकेंगी? वह भी तो एक परिचय है।”

द्विजदास चुप रहा। सती कहने लगी—“मेरा यह निश्चित विश्वास है कि बन्दनाकी उपेक्षा या अवहेलना दुनियामें कोई नहीं कर सकता। मा भी नहीं।”

द्विजदासने अचंभेमें आकर पूछा—“ बन्दना ? नाम तो सुना हुआ-सा मालूम होता है भाभी । कहीं शायद देखा हो, अच्छा ठहरो, अखबारमें क्या—एक तसवीर भी शायद—”

बात खतम भी न हो पाई कि नौकरानी आहटके साथ भीतर आ पहुँची और बोली—“ बहूजी, तुम यहाँ हो ? तुम्हारे कोई काका सा’ब अपनी लड़कीके साथ बम्बईसे आये हैं । बाहर कोई नहीं है, बड़े बाबू सा’ब भी नहीं हैं । गुमास्ताजीने उन लोगोंको नीचेके कमरेमें बिठाया है । ”

इस घटनाकी किसीको उम्मीद न थी । “ एँ—कहती क्या है ? ”—कहते कहते सती आँधीकी तरह तेजीसे कमरेसे बाहर हो गई । पीछे-पीछे द्विजदास भी गया ।

*

*

*

४

निर्दोष साहसी पोशाकसे भूषित एक प्रौढ़ भद्रपुरुष कुरसीपर बैठे थे; और उनके पास ही खड़ी हुई एक ग्रीस-इक्कीस सालकी लड़की दीवारपर टँगी हुई जगद्धात्री देवीका विशाल चित्र बड़े ध्यानसे देख रही थी । उसकी पोशाक बिल्कुल मेम-साहिबाके जैसी न होनेपर भी, देखकर सहसा ऐसा नहीं लगता कि वह बंगालीकी लड़की है । खासकर शरीरका रंग बिल्कुल गोरा और साफ था । बदनका गठन और चेहरेकी श्री अनन्यसुन्दर । देवरके सामने सती अभी-अभी गर्वके साथ कह रही थी कि उसका रूप तो सासुकी नजरोंमें आयेगा, आँख मीचके तो वे इससे इन्कार नहीं कर सकतीं,—सो वास्तवमें, यह बात सच है । बहनकी तरफसे इस रूपपर अहंकार या गुमान किया जा सकता है ।

नीचेके कमरेमें पहुँचते ही सतीने ढोक देकर प्रणाम किया, बोली—“ मझले काका, लड़कीके घर इतने दिनों बाद आखिर पाँवोंकी धूल पड़ी ? ”

सतीके काका उठके खड़े हो गये और भतीजीके सिरपर हाथ रखकर हँसते हुए बोले—“ हॉरी बेटी, पड़ी ! कब, किस जमानेमें काकाको न्योता देकर खबर भिजवाई थी जो मैंने इन्कार किया था ? कभी कहा था आनेके लिए ? खुद ही जब बिना-बुलाये आ पहुँचा तब बात बना रही है—पाँवोंकी धूल पड़ी ? ”—द्विजदासकी तरफ नज़र पड़ते ही पूछ उठे—“ ये तेरे कौन हैं ? ”

सतीने पीछेकी ओर देखकर कहा—“ये मेरे देवर हैं—द्विजदास।”

द्विजदासने दूरसे नमस्कार किया। बन्दना अपनी जीजीको प्रणाम करके हँसती हुई बोली—“ओह, ये ही हैं वे ? जिनके मोरे शायद जमींदारीका टिकना मुश्किल हो गया है। मुझे चिट्ठीमें लिखा था न ? वंशसे निराले, गोत्रसे निराले भयानक स्वदेशी ?”

“ऐसी बात तुझे कब लिखी थी ?”

“अभी तो, उस दिन। इतनेहीमें भूल गई ?”

सतीने गरदन हिलाकर कहा—“नहीं, यह नहीं लिखा,—तुझे याद नहीं।”

द्विजदास अब तक, न जाने कैसे एक प्रकारके संकोचके मोरे जड़वत् हो रहा था। इस विषयमें वह कुछ भी तय नहीं कर पा रहा था कि एक अनात्मीय और अपरिचित युवती महिलाले सामने उसे क्या करना चाहिए। इसके पहले कभी ऐसा मौका भी नहीं आया, ज़रूरत भी नहीं पड़ी,—परन्तु इस नवागत तरुणीकी आश्चर्यजनक स्वच्छन्दतासे मानो उसने आज एक नई शिक्षा प्राप्त की। उसकी अकारण और अशोभन जड़ता क्षण-भरमें दूर हो गई; और उसने एक स्वच्छ आनन्दका स्वाद लिया। इस बातको वह अपनी बुद्धिके द्वारा बहुत समयसे स्वीकार करता आया है कि स्त्रियोंको भी शिक्षा और स्वाधीनताकी आवश्यकता है; और मा या भाई-साहबसे बहस छिड़ जानेपर वह यही युक्ति देता आया है कि स्त्री होनेपर भी वे हैं तो मनुष्य ही, लिहाजा शिक्षा और स्वाधीनतापर उनका हक है। मूल्य रखकर उन्हें घरमें बंद रखना अन्याय है। किन्तु आज इस अतिथि युवतीके आकस्मिक परिचयसे उसने लहमे-भरमें पहले-पहल यह अनुभव किया कि उन सब मामूली हक-हुक्कोंकी युक्तियोंसे भी बहुत बड़ी बात यह है कि पुरुषके चरम और परम प्रयोजनके लिए ही स्त्रीको शिक्षा और स्वाधीनताकी आवश्यकता है। उसे वंचित रखकर पुरुष अपनेको कितना वंचित कर रहा है, इस सत्यको उसने इतनी स्पष्टतासे इसके पहले कभी नहीं देखा। उस युवतीको लक्ष्य करके उसने मुसकराते हुए कहा—“आपकी बात ही ठीक है, भाभी भूल गई हैं। पर इस विषयको लेकर बहस करनेमें कुछ फायदा नहीं।”—इतना कहकर उसने बनावटी गम्भीरतासे चेहरा गम्भीर करके भाभीसे कहा, “भाभी, तुम्हारे जोरसे ही तो मेरा सारा जोर है, और तुम्हारी चिट्ठीमें ही ऐसी बातें ? अच्छी बात है, मुझे तुम लोग त्याग दो, और मैं भी अपना सारा अधिकार त्याग देता हूँ। तुम

लोगोंकी जमींदारी अटूट-अक्षय बनी रहे, तुम एक बार मुँह खोलके हुकम दो, मैं आज ही वकीलको बुलाकर सब लिखा-पढ़ी किये देता हूँ। ये गवाह रहेंगी, देखो मैं कर सकता हूँ या नहीं ? ”

साहबने मुँह उठाकर सतीकी ओर देखते हुए कहा—“तेरे देवर जबरदस्त स्वदेशी हैं क्या ? ”

सतीने कहा—“हाँ, जबरदस्त । ”

“तेरे कहते ही लिखा-पढ़ी करके अपनी जमींदारीका हिस्सा छोड़ देना चाहते हैं ? ”

सतीने गरदन हिलाते हुए जवाब दिया—“बड़ी आसानीसे छोड़ सकते हैं । इनके लिए असाध्य कोई काम नहीं । ”

बन्दना अपने कुतूहलको दबा न सकी, पूछ बैठी, “सच कहते हैं ? हमेशाके लिए सचमुच ही सब त्याग सकते हैं ? ”

द्विजदासने उसके चेहरेकी तरफ क्षण-भर देखकर कहा,—“सचमुच छोड़ सकता हूँ । उसका मुझे रंचमात्र भी लोभ नहीं । देशके पंद्रह आने लोगोंको एक वक्त भर-पेट खानेको नहीं मिलता, सुबहसे शाम तक मेहनत करनेपर भी नहीं—और बगैर मेहनतके हमारे लिए पुलाव कलिया तैयार रहता है,—ऐसा पापका अन्न मुझे नहीं भाता, गलेमें अटक जाना चाहता है । ऐसी सम्पत्तिका चला जाना ही अच्छा है । तब देशके अन्य सबोंकी तरह मेहनत-मजूरी करके गुजर कर सकूँ तो जी जाऊँ । जुट गया तो मंगल ही मंगल है, न जुटा तो उन लोगोंके साथ भूखों मरकर कभी शायद स्वर्ग भी जा सकूँगा, मगर इस रास्ते तो उसकी कभी कोई आशा नहीं । ”

बन्दना एकटक उसको ओर देखती हुई सुन रही थी, बात खतम हो जाने-पर उसने कुछ कहा नहीं,—सिर्फ उसके मुँहसे एक लम्बी साँस निकल गई ।

सहसा सतीकी अन्यमनस्कता मानों दूर हो गई । उसके लालाजीके पास इसके सिवा मानो कोई बात ही नहीं । कहते कहते वह कंठस्थ हो गई है । उसने कहा—“अपना यह पुराना लेक्चर पीछे देना लालाजी, इसके लिए काफी वक्त मिलेगा । काकाजीने अभी तक शायद हाथ-मुँह भी न धोया होगा । बन्दना, चल बहन, ऊपर चल्के कपड़े-अपड़े बदल । ”

साहबने पूछा—“कुँवर साहब तो नहीं देख पड़ते ? ”

सतीने कहा—“वे सबेरे ही किसी एक ज़रूरी कामसे बाहर गये हैं, लौटनेमें शायद देर होगी । ”

बन्दनाने पूछा—“जीजी, तुम्हारी सासुजी भी तो नहीं दीखतीं ? हैं तो घर ही में ? ”

सतीने कहा—“अभी तो हैं, पर जल्दी ही कैलास-मानस-सरोवरकी तीर्थ-यात्राको जानेवाली हैं । सबरेका वक्त तो सारा उनका पूजा-आह्निकमें ही बीत जाता है; अब, थोड़ी ही देर बाद उन्हें देख सकोगी । ”

बन्दनाने पूछा—“वे ज्यादातर धर्म-कर्ममें ही लगी रहती हैं न ? ”

सतीने कहा—“हाँ । ”

“विधवा होनेके बाद, सुना है, वे घर-संसारका कुछ भी नहीं देखतीं,—सच है न ? ”

“सच ही तो है । सच मुझे ही सम्हालना पड़ता है । ”

बन्दनाने उत्सुक होकर पूछा—“वे तुम्हारी सौतेली सासु हैं न जीजी ? ”

सती हँसके बोली—“आँखोंसे तो नहीं देखा वहन, लोग शायद झूठ कहते हैं । ”

द्विजदास जवाबके तौरपर बोल उठा—“झूठ ही कहते हैं । यदि सौतेली-सासुके मानी भाईसाहबकी सौतेली-मा हैं, तो झूठ बात है । सौतेली-मा ज़रूर हैं, पर भाई साहबकी नहीं, मेरी । खैर जाने दो, नहाने-निघटनेके बाद ये बातें होंगी,—अब ऊपर चलिए । अच्छा, मैं देखता हूँ जाकर भाभी, देर मत करो, इन्हें लेकर जल्दी आओ । ”—इतना कहकर वह तैयारियोंकी देखभाल करने जा रहा था, इतनेमें माको देखकर ठिठकके खड़ा हो गया ।

बहुत सम्भव है कि दयामयी खबर पाकर पूजाके बीचमेंसे ही उठके चली आई हों । उमर ज्यादा न होनेसे वे वैधव्यके बाद भी साधारणतः बाहरके मर-दोंके सामने निकलती न थीं, परदे या ओटमें रहकर ही बात करती थीं, मगर आज एकबारगी कमरेके भीतर आ खड़ी हुई । माथेका पल्ला ललाट तक खिंचा हुआ था, किन्तु चेहरा साराका सारा दीख रहा था ।

“ये मेरे मझले काकाजी हैं मा । और यह मेरी वहन बन्दना । ”—इतना कहकर सतीने पास आकर सहसा सासुके पाँव ढोक दी । इस तरह बेमतलब पाँव ढोक देनेकी न तो प्रथा ही है और न कोई देता ही है । दयामयीको मन-ही-कुछ अचम्भा हुआ, किन्तु जैसे ही वह उठके खड़ी हुई वैसे ही दयामयीने स्नेहके साथ उसकी ठोड़ी छूकर अपनी उँगलियाँ चूमकर * आशीर्वाद दिया ।

* बंगालमें स्त्रियाँ अपनेसे छोटोंको इसी तरह आशीर्वाद दिया करती हैं ।

परन्तु बन्दनापर निगाह पड़ते ही उनकी दृष्टि रुखी-सी हो गई । अपनी बहनकी देखादेखी उसने भी पास आकर ढोक देके प्रणाम किया, किन्तु उन्होंने उसे छुआ नहीं, बल्कि शायद छूनेसे बचनेके लिए ही वे एक कदम पीछे हट गई और अस्फुट स्वरसे बोलीं—“जीती रहो ।”

फिर बोलीं—“समधी साहब, नमस्कार । बाल-बच्चोंके भाग्य हैं कि अचानक आपके पाँवोंकी धूल इस घरमें पड़ी ।”

समधी साहबने प्रतिनमस्कार करते हुए कहा—“अनेक कारणोंसे समय नहीं मिलता समधिन साहिब, लेकिन बगैर कहे-सुने इस तरह अचानक चले आनेकी भूल-चूक माफ कीजिएगा । अब जब कभी आऊँगा तब यथासमय सूचना देकर आऊँगा ।”

दयामयीने इन बातोंका कुछ उत्तर नहीं दिया, सिर्फ इतना ही कहा—“अभी मेरी संध्या-पूजा पूरी नहीं हुई है समधी साहब,—फिर मिलूँगी ।—बहू, ऊपर ले जाओ,—खाने-पीनेकी कोई तकलीफ न होने पावे । विपिन आये तो उसे मेरे पास भेज देना एक बार ।”—इतना कहकर वे और किसी तरफ बगैर देखे बाहर निकल गई । बाहरसे प्रचलित सौजन्यमें खास कोई ठुट्टि हुई हो सो बात नहीं, किन्तु भीतरकी तरफसे सबको ऐसा ढगा कि चन्द्रमाकी शुभ्र चाँदनीके बीचों बीच एक काला बादल निर्मल आकाशके एक कोरसे दूसरे कोरतक उड़ता हुआ निकल गया ।

५

बन्दना नहा-धोकर बैठकमें आई तो देखा कि उसके पिता पहलेहीसे फारिग होकर तैयार बैठे हैं और एक शोफियानी आराम कुरसीपर बैठे आँखोंपर चश्मा चढ़ाये अखबार पढ़ रहे हैं । पास ही एक छोटी टेबिलपर अखबारोंका ढेर लगा हुआ है; और द्विजदास खड़े-खड़े तारीखें मिला-मिलाकर उन्हें तरतीबवार लगा रहे हैं । रेलमें तथा कामकी भीड़में कई दिनके अखबार वे देख न सके थे । लड़कीको कमरेमें प्रवेश करते देख उन्होंने आँख उठाकर कहा—“बेटी, हम लोग दो बजेकी गाड़ीसे कलकत्ते चलेंगे, यह तय किया है । बहनके घर कुछ दिन रहनेकी अगर तुम्हारी तबीयत हो तो लौटते वक्त तुम्हें वहाँ पहुँचाकर मैं सीधा बम्बई चला जाऊँगा । क्यों ठीक है न ?”

“कलकत्तेमें तुम्हें कितने दिन लौंगे ?”

“पाँच-सात दिन—या आठ दिन, इससे ज्यादा नहीं।”

“लेकिन उसके बाद फिर मुझे बम्बई कौन ले जायगा ?”

“उसका इन्तजाम आसानीसे हो जायगा।”—इतना कहकर उन्होंने जरा-कुछ सोचा और फिर कहा—“अच्छी बात है, तुम्हारी तबीयत हो तो तुम यहीं बनी रहो सतीके पास, लौटते वक्त मैं तुम्हें साथ लेता जाऊँगा,—क्यों ?”

बन्दना कुछ देर चुप रहकर बोली—“अच्छा जीजीसे पूछ देखूँ।”

द्विजदासने कहा—“भाभी रसोईघरमें गई हैं। शायद उन्हें देर लगेगी।” फिर हाथका बण्डल दिखाता हुआ बोला—“आपको क्या दूँ ?”

बन्दनाने जवाब दिया—“अखबार ? अखबार मैं नहीं पढ़ती।”

“अखबार नहीं पढ़ती ?”

“नहीं। उसमें मैं धीरज खो बैठती हूँ। शामको बापूजीके मुँहसे बातें सुन लिया करती हूँ, इसीसे मेरी भूख मिट जाती है।”

“आश्चर्य है। मैंने सोचा था आप बहुत ज्यादा पढ़ती होंगी।”

• बन्दनाने कहा—“मेरे सम्बन्धमें बगैर कुछ भी जाने ऐसा क्यों सोचते हैं ? बड़ा बेइन्साफ करते हैं।”

द्विजदास शरमिन्दा-सा होने लगा तो बन्दना हँसके बोली, “आप लोगोंमेंसे किसने कितना देशोद्धार किया और अँग्रेजोंने उसपर कितनी आँखें लाल कीं—इस विषयमें मुझे जरा भी कुतूहल नहीं। बापूजीको है। देखिए न, खबरोंके ठेठ तलेमें डूब गये हैं। वाह्यज्ञान रहा ही नहीं।”

साहबके कानोंमें शायद लड़कीका सिर्फ “बापूजी” शब्द पहुँच गया था, पर उन्हें आँख उठाकर देखनेका वक्त नहीं मिला, बोले—“जरा ठहर जा, बताता हूँ। ठीक यही जवाब मैं ढूँढ़ रहा था।”

लड़की मुसकराती हुई गरदन हिलाकर बोली—“तुम ढूँढ़-ढूँढ़कर दिन-भर पढ़ते रहो बापूजी, मुझे जरा भी जल्दी नहीं।”—फिर द्विजदासकी तरफ लक्ष्य करके बोली—“जीजीके मुँहसे सुना था कि आपके बड़ी-भारी लाइब्रेरी है, वहीं चलिए, देखूँ आपने कितनी किताबें इकट्ठी की हैं।”

“चलिए।”



लाइब्रेरीका कमरा तीसरी मंजिलपर था। जीना खूब चौड़ा था; चढ़ते चढ़ते द्विजदासने कहा—“लाइब्रेरी काफी बड़ी है, पर मेरी नहीं है, भाई साहबकी है। मैं तो सिर्फ कहाँसे क्या-क्या किताबें निकलीं, इसकी खबर देता हूँ; और हुक्मके मुफिक खरीद लाया करता हूँ।”

“किन्तु पढ़ते तो हैं आप ?”

“सो एक तरहसे नहींके बराबर। पढ़ते हैं वे खुद जिनकी लाइब्रेरी है। आश्चर्यजनक शक्ति है उनमें और वैसी ही अद्भुत बुद्धि।”

“किनकी ? भाई साहबकी ?”

“हाँ। यह सच है कि युनिवर्सिटीकी छाप-वाप विशेष कुछ नहीं लगी उनकी देखपर, पर मालूम होता है इतना विशाल पाण्डित्य इस देशके बहुत कम लोगोंमें है। शायद नहीं भी हो। आपके तो वे बहनोई हैं, कभी देखा नहीं उन्हें ?”

“नहीं। कैसे हूँ देखनेमें ?”

“ठीक मुझसे उलटे। जैसे दिन और रात। मैं काला हूँ और उनका रंग सोने जैसा। शरीरकी ताकत उनकी इस प्रान्तमें मशहूर है। लाठी, तलवार और बन्दूक चलानेमें इधर उनका कोई साथी नहीं। सिवा एक माके और कोई उनके चेहरेकी तरफ देखकर बात करनेकी हिम्मत नहीं करता।”

बन्दनने हँसते हुए पूछा—“मेरी जीजी भी नहीं ?”

द्विजदासने जवाब दिया—“नहीं, आपकी जीजी भी नहीं।”

“बहुत ज्यादा गुस्सैल हैं ?”

“नहीं, सो भी नहीं। अँग्रेजीमें एक ऐरिस्ट्रोक्रैट* शब्द है, मेरे भाई साहब शायद किसी जन्ममें उन्हींके राजा थे। कम-से-कम मेरी धारणा तो ऐसी है। और गुस्सैल हैं या नहीं, आप पूछ रही थीं ? सो किसी तरहका गुस्सा करनेका उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता।”

बन्दनने कहा—“भाई साहबपर आपकी बड़ी जबरदस्त भक्ति है ? है न ?”

द्विजदास चुप रहा। थोड़ी देर बाद बोला—“इस बातका जवाब आपको अगर सम्भव हुआ तो और किसी दिन दूँगा।”

बन्दनने कहा—“इसके मानी ?”

* Aristocrat=सम्भ्रान्त या उच्च कुलके गौरवसे गौरवान्वित।

द्विजदासने हँसकर कहा—“मानी अगर अभी ही बता दूँ तो फिर और किसी दिन जवाब देनेकी ज़रूरत ही न होगी। आज रहने दीजिए।”

विशाल लाइब्रेरी है। आलमारी टेबिल कुरसी वगैरह जैसा कीमती असबाब है वैसे ही तरतीब और सफाईसे सजी हुई है। गँवई-गाँवमें इतना बड़ा आयोजन देखकर बन्दनाको बहुत आश्चर्य हुआ। बम्बई शहरमें इस चीज़का अभाव नहीं; उसकी तुलनामें यह शायद कुछ भी नहीं; किन्तु एक गाँवमें किसी एक व्यक्तिका इतना ज्यादा संग्रह करना सचमुच आश्चर्यकी बात थी। उसने पूछा—“क्या, वास्तवमें इतनी किताबें भाई साहब पढ़ते हैं?”

द्विजदासने कहा—“पढ़ते हैं और पढ़ी हैं। आलमारियाँ बन्द नहीं हैं, कोई भी एक किताब निकालके देख लीजिए न, उनके पढ़नेके निशान शायद नजर आ जायें।”

“इतना वक्त उन्हें कब मिलता है? दिन-रात क्या सिर्फ़ यही करते रहते हैं?”

द्विजदासने गरदन हिलाते हुए कहा—“नहीं। कमसे-कम मैं तो नहीं जानता। इसके सिवा, हमारी जमींदारी या जमीन-जायदाद बहुत-भारी न होने-पर भी निहायत कम भी नहीं कही जा सकती। उसमें कहाँ क्या है और क्या हो रहा है, सब भाई साहबकी नजरोंमें रहता है। सिर्फ़ आजकल ही नहीं, बल्कि बापूजीके सामनेसे ही बराबर यही व्यवस्था चली आ रही है। वक्त मिलनेका रहस्य मुझे भी ठीक ढूँढ़े नहीं मिलता। आपकी तरह मेरा आश्चर्य भी कुछ कम नहीं,—मगर हाँ, सिर्फ़ यही सोचकर रह जाता हूँ कि संसारमें कभी कभी ऐसे भी दो-एक व्यक्ति जन्म लेते हैं जो साधारण लोगोंके हिसाबके बाहर होते हैं। भाई साहब उसी श्रेणीके जीव हैं। हम लोगोंकी तरह शायद इन्हें तकलीफ़ उठाकर पढ़ना भी नहीं पड़ता, छापेके हरूफ़ आँखोंकी राह जाकर मगज़में अपने आप छाप लगाते चले जाते हैं। पर भाई साहबकी बात अभी रहने दो। आपने उन्हें अभी तक आँखोंसे देखा भी नहीं, मेरे मुँहसे इकतरफ़ा आलोचना अतिशयोक्ति मालूम हो सकती है।”

“मगर सुननेमें मुझे बहुत अच्छी ही लग रही है।”

“लेकिन सिर्फ़ ‘अच्छी लगना’ ही तो सब कुछ नहीं है। संसारमें हम लोग और अत्यन्त साधारण और भी बहुतसे लोग हैं! एकमात्र असाधारण

व्यक्ति ही अगर सारी जगह घेरकर बैठ जाय, तो फिर हम लोग जायँ कहाँ ? भगवानने मुँह तो सिर्फ़ दूसरोंकी स्तुति करनेको नहीं दिया ? ”

बन्दना हँसती हुई बोली—“ यानी बड़े-भाईको छोड़कर अब ज़रा छोटे भाईकी स्तुति करना चाहते हैं—यही तो ? ”

द्विजदास भी हँस दिया, बोला—“ चाहता तो हूँ, पर मौका कहाँ मिलता है ? जो लोग परिचित हैं वे तो कान ही न देंगे, अपरिचितोंके पास ही ज़रा-कुछ गुनगुनाया जा सकता है । पर साहस नहीं होता, डर लगता है कि अभ्यासकी कमीके कारण अपने मुँहसे अपनी ही स्तुति शायद रुक रुक जायगी । ”

बन्दनाने कहा—“ नहीं भी रुक सकती है;—कोशिश कर देखिए । मेरा तो विश्वास है कि पुरुषवर्ग इस विद्यामें आजन्मसिद्ध होते हैं । अब देर न कीजिए; शुरू कीजिए । ”

द्विजदासने सिर हिलाकर कहा—“ नहीं, मुझसे न हो सकेगा । इससे तो बल्कि यह अच्छा कि एकान्तमें बैठकर दो-चार किताबें देखिए आप, मैं भाभीको भेजे देता हूँ । ” यह कहकर वह जानेको तैयार हुआ कि बन्दना जोर देकर कह उठी—“ आप तो खूब हैं ! नहीं, आप मुझे अकेली छोड़कर न जाइए । किताबें मैंने बहुत पढ़ी हैं, उसकी ज़रूरत नहीं । आप बातचीत कीजिए, मैं सुनूँ । ”

“ काहेकी बातचीत ? ”

“ अपनी खुदकी । ”

“ तो ज़रा सत्र कीजिए, मैं अभी नीचे जाकर बहुत अच्छा वक्ता भेजे देता हूँ । ”

बन्दनाने कहा—“ जीजीको भेजे देंगे न ? उनकी ज़रूरत नहीं । उन्हें जो कुछ कहना था, सत्र चिट्ठियोंमें ही खतम हो चुका है । वह सब सच है या नहीं—अब तो यही सुनना चाहती हूँ । ”

द्विजदासने कहा—“ नहीं, सच नहीं है । कमसे कम रुपयेमें भारह-आने झूठ है । अच्छा सुना है कि आप बहुत जल्दी ही विलायत जा रही हैं ? ”

बन्दना समझ गई कि यह आदमी अपने प्रसंगकी चर्चा नहीं करना चाहता; और ज़िद करने-लायक घनिष्टता भी अशोभन होगी । उसने कहा—“ पिताजीकी ऐसी ही इच्छा है । स्कूलकी विद्याको वे वहीं जाकर समाप्त करनेको कहते हैं । आप भी क्यों नहीं चलते ? ”

द्विजदासने कहा—“मुझे अपनी तरफसे कोई आपत्ति नहीं, पर रुपये कहाँसे आयेंगे ? वहाँ लड़के पढ़ाकर भी गुजारा नहीं किया जा सकता; और इतना भार भाभीपर भी नहीं लद सकूँगा। यह व्यर्थकी आशा है।”

सुनकर बन्दना हँस दी। बोली—“द्विजूबाबू, यह तो आपकी नाराज़ीकी बात है। नहीं तो, जितना धन आप लोगोंके पास है उससे सिर्फ़ आप अकेले ही नहीं, चाहें तो आप इस गाँवके अधे आदमियोंको साथ ले जा सकते हैं। अच्छा तो ठीक है, इसकी व्यवस्था मैं किये देती हूँ, आप चलनेको तैयार हूजिए।”

द्विजदासने कहा—“सो व्यवस्था होनेकी नहीं। धन बहुत है, माना, पर वह सब भाई साहबका है, मेरा नहीं। अगर कहूँ कि मैं दयापर निर्भर हूँ तो अत्युक्ति न होगी।”

बन्दनाने फिर हँसनेकी कोशिश करते हुए कहा—“अत्युक्ति क्या और कौन-सी होती है, सो मैं भी समझती हूँ। पर यह भी नाराज़ीकी बात है। जीजीकी चिट्ठीसे एक बार मालूम हुआ था कि जिस सम्पत्तिको आपने खुद नहीं कमाया उसे आप लेना नहीं चाहते। क्या यह बात ठीक नहीं ?”

द्विजदासने कहा—“अगर ठीक भी हो तो वह मनुष्यकी धर्मबुद्धिकी बात है, नाराज़ीकी नहीं। परन्तु इतना ही सम्पूर्ण कारण नहीं है।”

“सम्पूर्ण कारण क्या है, क्या सुन नहीं सकती ?”

द्विजदास चुप रह गया। बन्दना क्षण-भर उसके चेहरेकी ओर देखती रही, फिर आहिस्ते-आहिस्ते बोली—“मैं स्वभावतः इतनी कुनूदली नहीं हूँ; और मेरा यह आग्रह दुनियासे न्यरा आतिशय्य या ज्यादाती है, इतनी समझ मुझमें भी है; लेकिन समझ रहनेसे ही संसारकी सब ज़रूरतें नहीं मिट जाती—अभाव मुँह बाय ताकता ही रहता है। आपकी बातें मैंने इतनी ज्यादा सुनी हैं कि आप पहले-पहल जब मेरे सामने उम कमरेमें दाखिल हुए, तो अपरिचित-से मालूम ही नहीं हुए,—ऐसी आसानीसे पहचान लिया कि जैसे कितनी ही बार देखा हो। जीजीको इतनी बातें बता सके, मुझे नहीं बता सकते ? और कुछ न होऊँ, उनकी तरह मैं भी तो आपकी एक आत्मीय हूँ।”

बात सुनकर द्विजदास दंग रह गया। और, अकस्मात् सारी बातें याद आ जानेसे उसके संकोच और आश्चर्यकी सीमा न रही। बिलकुल अपरिचित जवान लड़कीके साथ एकान्तमें इस तरह बातें करनेका इतिहास उसके लिए यह

पहला ही था। दीवारपर टेंगी घड़ीकी तरफ देखा तो घंटे-भरसे भी ज्यादा वक्त बीत चुक था। इस बीच अगर किसीने उसे ढूँढ़ा हो तो, इस घरमें उसका जवाब क्या हो सकता है, उसे ढूँढ़े न मिला। हो सकता है कि भाई-साहब घर वापस आ गये हों, हो सकता है कि माकी संध्या-पूजा हो चुकी हो—सहसा उसका शरीर और मन व्याकुल होकर मानो एक क्षणमें जीनेकी तरफ दौड़ गया, किन्तु कुछ भी कह न सकनेके कारण ज्योंका त्यों सन्न होकर बैठा रहा।

“हाँ तो बताया नहीं ? बताइए ? ”

द्विजदास मानो सोतेसे जगा। बोला—“अगर बताऊँगा तो पहले-पहल आपको ही बताऊँगा। भाभीको भी आज तक नहीं बताया। ”

“उसका फैसला वे करेंगे। मैं लेकिन बगैर सुने—”

बताना उचित नहीं, इसमें तो द्विजदासको कोई सन्देह ही नहीं था; मगर अनुरोधकी उपेक्षा करनेकी भी उसमें शक्ति नहीं रही।

मिनट-भर हतबुद्धि-सा देखता रहा, फिर बोला—“पिताजी मुझे वास्तवमें कुछ भी नहीं दे गये हैं। ”

बन्दना चौंक उठी, बोली—“ऊँह! झूठी बात है ! ऐसा हो ही नहीं सकता। ”

प्रत्युत्तरमें द्विजदासने सिर्फ़ सिर हिलाकर जताया—“हो सकता है। ”

“मगर इसकी वजह ? ”

“बापूजीकी शायद धारणा हो गई थी कि मुझे दे जानेसे उनकी सम्पत्ति नष्ट हो सकती है। ”

“इस धारणाके लिए कोई सच्चा हेतु भी था ? ”

“था। मुझे बचानेके लिए एक बार उनका बहुत रुपया नष्ट हुआ था। ”

बन्दनाको याद आ गया, इस तरहका एक इशारा एक बार सतीकी चिट्ठीमें भी था। उसने पूछा—“पिताजी ‘विल’ (वसीयतनामा) लिख गये हैं ? ”

द्विजदासने कहा—“यह तो भाई साहबको ही मालूम है। वे कहते हैं—“नहीं। ”

बन्दनाने एक गहरी साँस लेकर कहा—“फिर भी गनीमत है। मैंने समझा कि शायद वे सचमुच ही ‘विल’ लिखकर आपको वंचित कर गये हैं। ”

द्विजदासने कहा—“उनकी इच्छा तो थी, मगर शायद भाई साहबने उन्हें वैसा करने नहीं दिया। ”

“ भाई साहबने नहीं करने दिया ? आश्चर्य है । ”

द्विजदासने हँसते हुए कहा—“ भाई साहबको जान जायेंगी तो फिर आश्चर्य नहीं मालूम होगा । एक दिनकी बात है, शाम हो चुकी थी, नौकर तब तक उस कमरेमें बत्ती नहीं रख गये थे, मैं बगलवाले कमरेमें एक किताब ढूँढ़ रहा था, अचानक पिताजीकी बात कानोंमें आ पड़ी । भाई साहबने कहा, ‘ नहीं । ’ पिताजी ज़िद करने लगे, ‘ नहीं क्यों विप्रदास ? मैं अपनी बाप-दादोंके जमानेसे चली आई सम्पत्तिको नष्ट नहीं होने दे सकता । परलोकमें रहकर भी मुझे शान्ति नहीं मिलेगी । ’ फिर भी भाई साहबने यही जवाब दिया कि ‘ नहीं, ऐसा किसी तरह भी नहीं हो सकता ’ । बापूजीने कहा कि ‘ फिर भी तुम्हारे ही हाथ मैं सब छोड़े जाता हूँ । अगर अच्छा समझो तो दे देना, अगर वैसा न समझो तो मत देना । ’ इसके बाद भी पिताजी दो-तीन साल तक और जीवित रहे, पर मुझे निश्चित मालूम है कि उनकी राय नहीं बदली थी । ”

बन्दनाने मृदुकंठसे पूछा—“ इस बातको और भी कोई जानता है ? ”

“ कोई नहीं । सिर्फ मैं ही जानता हूँ; छिपके सुना था इसलिए । ”

बन्दना बहुत देर तक मौन रहकर अस्फुट स्वरमें बोली—“ सचमुच ही आपके भाई साहब असाधारण आदमी हैं । ”

द्विजदासने शान्तभावसे कहा—“ हाँ । पर अब मैं नीचे ज़ूता हूँ, बहुत देर हो गई मुझे । आप बैठी-बैठी किताब पढ़ती रहें—जब तक कि बुलावा न आवे । ”

बन्दना हँसती हुई बोली—“ इस वक्त किताब पढ़नेकी रुचि नहीं है, चलिए मैं भी चलती हूँ । कमसे कम आठ-दस दिन तो यहाँ हूँ ही,—किताबें पढ़नेको बहुत वक्त मिलेगा । ”

द्विजदास चलनेको तैयार हो गया था, पर तुरत ही ठिठककर खड़ा हो गया; बोला—“ अपने पिताजीके साथ आप कलकत्ते नहीं जायेंगी ? ”

“ नहीं । जब वे कलकत्तेसे वापस होंगे, तो उनके साथ ही बम्बई जाऊँगी । ”

द्विजदासने कहा —“ बल्कि, मैं तो कहता हूँ कि उनके वापस जाते वक्त आप कुछ दिनके लिए यहीं ठहर जायें । ”

बन्दनाने कहा—“ पहले ऐसी ही इच्छा थी, पर अब देखती हूँ कि उसमें बहुत असुविधा है । मुझे पहुँचा देनेवाला कोई नहीं है । हाँ, आप अगर राजी हो जायें तो आपकी सलाह ही मान लूँगी । ”

“ मगर मैं तो उस समय यहाँ रहूँगा नहीं । मुझे तो इसी सोमवारको माको लेकर कैलासकी यात्रा करने जाना है । ”

बन्दनाकी दोनों आँखें आनन्द और उत्साहसे चमक उठीं, बोली—
“ कैलास ? कैलास जायेंगे ? सुना है कि परमाश्चर्यकी चीज़ है । आप लोगोंक साथ और कौन कौन जा रहे हैं ? ”

“ ठीक नहीं मालूम, शायद और भी कुछ लोग जायें । ”

“ मुझे भी साथ लेंगे ? ”

“ द्विजदास चुप रहा । वन्दनाने क्षुण्ण-अभिमानके कंठसे, जबरदस्ती हँसनेकी कोशिश करते हुए, कहा—“ और इसीलिए ही शायद ठीक उसी समय मुझ यहाँ आकर रहनेका सत्परामर्श दे रहे हैं ? ”

द्विजदास उसके मुँहकी ओर आँख उठाकर शान्त भावसे बोला—“ सचमुच इसीलिए परामर्श दिया है । भाभीने आपको इतनी बातें लिखीं, सिर्फ़ यही नहीं लिखा कि हमारा यह कितना जबरदस्त कष्टूर हिन्दू धराना है ? इसके आचार-विचारकी कटोरताका कोई आभाम चिट्ठीमें नहीं मिला आपको ? ”

वन्दनाने सिर हिलाकर जवाब दिया—“ नहीं । ”

“ नहीं ? आश्चर्य है । ”—फिर ज़रा ठहरकर द्विजदासने कहा—“ एक मेरे सिवा आपका लुआ हुआ पानी तक पीनेवाला इस घरमें कोई नहीं है । ”

“ लेकिन आपके भाई साहब ? ”

“ नहीं । ”

“ जीजी ? ”

“ नहीं, वे भी नहीं । हम लोगोंके चले जानेपर तो शायद दो-चार दिन आप रह भी सकेंगी, पर माके रहते हुए एक दिन भी आपका इस घरमें निबाह नहीं हो सकता । ”

वन्दनाका चेहरा फफ़ पड़ गया, बोली—“ सच कह रहे हैं ? ”

“ सच ही कहा है । ”

ठीक इसी समय नीचेके जीनेमेंसे सतीकी आवाज सुनाई दी—“ लालाजी बन्दना ? तुम दोनों कर क्या रहे हो ? ”

“ आया भाभी ”—कहता हुआ द्विजदास जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ चलने लगा, तो वन्दनाने फीके चेहरे और दबी जवानसे सिर्फ़ इतना ही कहा—
“ इतनी बातें मैं कुछ भी नहीं जानती थी । धन्यवाद । ”

६

बन्दनाने नीचे आकर देखा कि पिताजी मजेसे खाने बैठे हैं। उस बैठक-खानेमें ही एक छोटी-सी टेबिलपर चूँदीके थलमें खानेको परोसा गया है। एक दीर्घाकृति अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति पास ही खड़ा है,—उसके शरीरका शक्तिसम्पन्न गठन और अत्यन्त गोरा रंग देखकर ही बन्दनाने पहचान लिया कि ये ही विप्रदास हैं। सती भी साथ ही आ रही थी, पर वह भीतर नहीं घुसी, दरवाजेकी आड़में खड़ी हो गई और बन्दनाको नमस्कार करनेका इशारा करके जता दिया कि 'हाँ, ये ही हैं'।

भारतीय लड़कीको यह बात सिखानेकी ज़रूरत नहीं थी, और इसके पहले माको जैसे उमने ढोक देकर प्रणाम किया था, बड़े बहनोईके लिए भी वैसा कर सकती थी; किन्तु सहसा न जानें कैसे उसका सम्पूर्ण मन विद्रोह-सा कर उठा। इनकी अनन्य साधरण विद्या और बुद्धिका वर्णन द्विजदासके मुँहमें न सुना होता तो शायद इस प्रचलित शिष्टाचारका लंघन करनेकी बात उसके मनमें भी न उठती, किन्तु इस परिचयहीने उसे कठोर कर डाला। जीजीका मान रखनेके लिए उसने हाथ उठाकर नमस्कार तो किया किन्तु उसमें उसकी उपेक्षा ही स्पष्टतर हो उठी। बात उसने पितासे ही की, बोली—“तुम अकेले खाने बैठे हो, मुझे बुलवा क्यों नहीं लिया?”

साहबने मुँह उठाकर उसकी ओर देखा, और कहा—“मेरा जो गाड़ीका वक्त हो गया था बेटी, तुम्हें तो कोई जल्दी नहीं थी। फिर बोले—“मेरे चले जानेके बाद तुम लोग धीरे-सुस्ते खा-पी सकोगी।”

सतीने ओटमेंसे गरदन हिलाकर इस बातका अनुमोदन किया। बन्दनाने उसकी तरफ लक्ष्य करके कहा—“जीजी, इतने-सारे कीमती चूँदीके बरतन क्यों बिगाड़े, बापूजीको एनामिल या चीनी मिट्टीके बरतनमें परोस देनेसे ही काम चल जाता?”

साहबका चबाना रुक गया। अत्यन्त सरल प्रकृतिके आदमी थे वे, लड़कीकी बातका तात्पर्य कुछ भी न समझ सके; इस तरह व्यस्त और लज्जित हो उठे—जैसे यह उनका अपना ही कसूर हो; बोले—“हाँ, हाँ, ठीक तो है—इसका मैंने कुछ खयाल ही नहीं किया,—सती कहाँ गई—मुझे किसी डिशमें ही परोस देनेसे काम चल-जाता,—एः—”

विप्रदासका चेहरा क्रोधसे कठोर और गंभीर हो उठा। आजतक उसका इतना बड़ा अपमान करनेका किसीने साहस नहीं किया, जैसा कि इस नवागता रिश्तेदार लड़कीने कर डाला। बरतन नष्ट होनेकी दुश्चिन्ता तो मात्र एक छल है। असलमें यह उसके आचारनिष्ठ परिवारके प्रति निर्लज्ज व्यंग्य है; और जहाँ तक सम्भव है उसीके उद्देश्यसे किया गया है। ऐसी दुरभिसन्धि किसने उसके मगजमें ला दी, यह बात विप्रदासके समझमें ही नहीं आई। मगर कोई भी लाया हो, इस भले मानस वृद्ध व्यक्तिको उपलक्ष्य बनानेकी जघन्यतासे उसकी विरक्तिकी सीमा न रही। मगर उसने अपने उस भावको दमनकर जबरदस्ती ज़रा हँसकर कहा—“तुमने अपनी जीजीसे सुना नहीं कि यह कट्टर हिन्दूका घर है ? यह एनामेल या चीनी मिट्टीकी कोई भी चीज़ घुस सकती है भला—सुना नहीं क्या ?”

बन्दनाने कहा—“मगर कीमती बरतन तो नष्ट हो गये ?”

साहब व्याकुल होकर बोल उठे—“लेकिन सुना है कि घी चुपड़के ज़रा आगमें डाल देनेसे ही—”

विप्रदासने इस बातपर कान ही नहीं दिये, और जैसे कह रहे थे वैसे बन्दनाको ही लक्ष्य करके कहते गये—“इस घरमें चाँदीके बरतनोंकी कमी नहीं है, किन्तु विशेष किसी काममें नहीं आते। तुम्हारे पिताजी रिश्तेमें मेरे बुजुर्ग हैं, इस घरमें अत्यन्त सम्मानित अतिथि हैं, चाँदीके बरतनोंके चाहे जितनी ही कीमत क्यों न हो उनकी इज्जतके सामने वह त्रिलकुल ही तुच्छ है,—तुम लोगोंके आनेके उपलक्ष्यमें कुछ बरतन अगर नष्ट ही हो जायँ तो हो जाने दो।”

—इतना कहकर ज़रा मुसकरकर फिर बोले,—“तुम्हारी जीजीकी तरह तुम्हारा भी अगर किसी कट्टर-पन्थी घरमें ब्याह हो तो तुम अपने बापूजीको मिट्टीके तसलेमें खाना परोस देना, फेंक देनेसे वह किसीको न खटकेगा। क्यों बन्दना, क्या कहती हो ?”

“कभी नहीं। बापूजीके लिए मैं तो सोनेके बरतन बनवा रखूँगी।”

विप्रदासने हँसते हुए उत्तर दिया—“सो तुम नहीं कर सकोगी। जो कर सकती है वह पिताके सम्बन्धमें ऐसी बात जवानपर भी नहीं ला सकती। और तो क्या, अन्य किसीको अपमानित करनेके लिए भी नहीं। अपने पिताको तुम जितना प्यार करती हो, कोई और अपने काकाजीको शायद उससे भी ज्यादा प्यार करती है।”

यह सुनकर साहबके मनपरसे सिर्फ एक भार ही नहीं उतर गया सम्पूर्ण हृदय खुशीसे भर उठा। बोले—“तुम्हारी यह बात, बेटा, बिलकुल सच है। भाई-साहबकी जब अचानक मौत हो गई तब सती बहुत छोटी थी। मैं परदेशमें नौकरी करता था, हमेशा घर आ नहीं सकता था, और आता था तो समाजके शासनके मारे अकेल ही रहना पड़ता था, मगर सती मौका पाते ही मेरे पास दौड़ी आती थी,—”

बन्दना चटसे घाधा देती हुई बोल उठी—“उन बातोंको रहने दो न बापूजी—”

“नहीं नहीं, मुझे सब याद है,—झूट थोड़े ही है। एक दिन मेरे साथ एक थालीमें खाने ही बैठ गई—उसकी मा तो यह देखके—”

“आह, बापूजी, तुम न जाने क्या कह रहे हो बिना ठीक-ठिकानेका। कब मेरी जीजी तुम्हारे साथ,—तुम्हें कुछ भी याद नहीं।”

साहबने मुँह उठाकर प्रतिवाद किया—“वाह, याद क्यों नहीं। और फिर इस बातको लेकर कहीं कोई ऊधम न उठ खड़ा हो, इस खयालसे तुम्हारी माने उस दिन कैसे डरते-डरते—”

बन्दनाने कहा—“बापूजी, आज तुम ज़रूर गाड़ी फेल करांगे। कितने बजे हैं मालूम है ?”

साहबने व्यक्त होकर जेबसे घड़ी निकाली और समय देखकर निश्चिन्तताकी साँस छोड़ते हुए कहा, “तू तो ऐसा डरा देती है कि चौंक जाना पड़ता है। अभी बहुत देर है,—आसानीसे गाड़ी मिल जायगी।”

विप्रदासने हँसकर उनकी हँमें हाँ मिलते हुए कहा—“हाँ, गाड़ीमें अभी बहुत देर है। आप निश्चिन्त होकर जीमिए, मैं खुद स्टेशन जाकर आपको चढ़ा आऊँगा।”—इतना कहकर वह कमरेसे बाहर हो गया।

दरवाजेकी ओटसे निकलकर सती ज्यों ही उसके पास आके खड़ी हुई त्यों ही बन्दनाने उससे अत्यन्त मृदुस्वरसे कहा—“जीजी, बापूजीने क्या काण्ड कर डाला, सुना ?”

“सतीने सिर हिलाकर कहा—“हाँ।”

बन्दनाने कहा—“तुम्हारी सासुके कानों तक बात पहुँच गई तो तुम्हें दुःख उठाना पड़ेगा। है न जीजी ?”

सतीने कहा—“पड़ेगा तो पड़ता रहे। अभी रहने दो, काकाजी सुन लेंगे।”

“ लेकिन तुम्हारे पति,—वे भी तो अपने कानोंसे सब सुन गये हैं; इस अपराधके लिए क्षमा शायद उनके पास भी नहीं ? ”

सती हँस दी, बोली—“ अपराध अगर सचमुच ही हुआ हो तो मैं भी उसके लिए माफी क्यों माँगने लगी ? उसके विचारका भार उन्हींपर छोड़कर मैं निश्चिन्त हूँ । अगर तुम यहाँ रहों, तो अपनी आँखोंसे ही देख लोगी । काकाजी, तुम्हारे लिए और क्या लाऊँ ? ”

साहबने मुँह उठाकर कहा—“ काफी है, काफी है,—मेरा खाना हो चुका चंटी, और कुछ नहीं चाहिए । ” इतना कहके वे उठ बैठे ।

स्टेशन जानेका समय हो गया । नीचे गाड़ी-चरामदेमें मोटर खड़ी प्रतीक्षा कर रही है, विस्तर बैग वगैरह सामान दूसरी गाड़ीमें लादा जा रहा है, साहब पास खड़े हुए विप्रदासके साथ बात कर रहे हैं; इतनेमें बन्दना कपड़े पहनके तैयार होकर पास आ खड़ी हुई । बोली—“ बापूजी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी । ”

पिताको आश्चर्य हुआ, बोले—“ इतनी धूपमें स्टेशन जानेसे क्या फायदा, चंटी ? ”

बन्दनाने कहा—“ सिर्फ स्टेशन ही नहीं, कलकत्ते जाऊँगी । और जब तुम चम्बई जाओगे तब मैं तुम्हारे साथ ही चलूँगी । ”

विप्रदासको भी बड़ा आश्चर्य हुआ, बोले—“ यह क्या ? तुम कुछ दिन वहीं रहोगी, मैं तो यही जानता था ? ”

बन्दनाने उत्तरमें सिर्फ इतना ही कहा—“ नहीं । ”

“ लेकिन तुमने तो अभी खाया भी नहीं है । ”

“ नहीं, ज़रूरत नहीं । कलकत्ते पहुँचकर खाऊँगी । ”

“ तुम जा रही हो, तुम्हारी जीजीको मालूम है ? ”

बन्दनाने कहा—“ ठीक नहीं जानती । मेरे चले जानेपर मालूम हो जायगा । ”

विप्रदासने कहा—“ तुम्हारे बिना खाये-पीये इस तरह चले जानेसे उन्हें बड़ा-भारी दुःख होगा । ”

बन्दना ने मुँह उठाकर कहा—“ दुःख किस बातका ? मुझे तो उन्होंने न्योता देकर नहीं बुलाया जो बिना खाये-पीये चले जानेसे उनका आयोजन नष्ट हो जायगा । वे नासमझ नहीं हैं, समझ जायेंगी । ”—इतना कहकर वह, आगे बात न बढ़ाकर, जल्दीसे गाड़ीमें जा बैठा ।

साहबने मन-ही-मन समझ लिया कि कोई बात हो गई है। नहीं तो, अचानक विना-कारण कुछ कर डालनेवाली लड़की नहीं है यह। उन्होंने कहा—“मैं भी यही जानता था कि कुछ दिन यह सतीके पास ही रहेगी। मगर एक बार जब गाड़ीमें बैठ गई है तो अब यह न उतरेगी।”

विप्रदासने कुछ जवाब नहीं दिया, चुपचाप उसके पीछे-पीछे जाकर गाड़ीमें बैठ गये।

गाड़ी चल दी। अकस्मात् ऊपरकी ओर निगाह करते ही बन्दनाने देखा कि तीसरी मंजिलके लाइब्रेरीवाले कमरेके खुले जंगलकी छड़ पकड़े द्विजदास चुपचाप खड़ा है। आँखें चार होते ही उसने हाथ उठाकर नमस्कार किया।

७

स्टेशन पहुँचनेपर भालूम हुआ कि कहीं कोई एक आकस्मिक दुर्घटना हो जानेसे गाड़ी आनेमें अभी काफी देर है। शायद घंटे-भरसे भी ज्यादा लेट है। परिचित स्टेशन-मास्टरके अचानक वीमार पड़ जानेसे एक मद्रसी रिलिविंग-हैण्ड कलसे काम कर रहा था, वह ठीक-ठीक खबर न दे सका, सिर्फ अनुमान ही कर सका, कि देर एक घंटेकी भी हो सकती है और दो घंटेकी भी। विप्रदासने साहबके मुँहकी ओर देखकर कहा—“कलकत्ते पहुँचनेमें रात हो जायगी, आज क्या बगैर गये नहीं चलेगा ?”

“क्यों नहीं चलेगा ? मेरी तो—”

बन्दना बीचहीमें बोल उठी—“नहीं बापूजी, सो नहीं हो सकता। एक बार घरसे निकलके लौटा नहीं जा सकता।”

विप्रदासने अनुनयके स्वरमें कहा—“क्यों नहीं लौटा जा सकता बन्दना ! ख्यासकर तुम बिना खाये चली आई हो, दिन-भर उपसी ही रही आओगी ?”

बन्दनाने सिर हिलाकर कहा—“मुझे भूख नहीं है। वापस लौटनेपर भी मैं न खा सकूँगी।”

साहब मन-ही-मन क्षुण्ण हुए, बोले—“इन लोगोंकी शिक्षा-दीक्षा ही अलग है। एक बार जिद पकड़ लेनेपर फिर नहीं चिगाया जा सकता।”

विप्रदास चुप रह गया, उसने और अनुरोध नहीं किया।”

X

X

X

X

स्टेशन बड़ा न होनेपर भी, एक छोटा-सा वेटिंग-रूम था; वहाँ जाकर देखा कि एक लड़क-उमरके बंगाली साहब और उनकी स्त्रीने पहलेसे ही दखल जमा रखा है। साहब सम्भवतः वैरिस्टर या डाक्टर होंगे अथवा विलायत-ग्रास प्रोफेसर भी हो सकते हैं। इस तरफ वे कहाँ आये थे, सो भी एक रहस्यकी बात है। आरामकुरसीके दोनों हाथोंपर टाँग पसारकर अध-सोये-से पड़े थे। आकस्मिक जन-सम गमसे सिर्फ़ जरा आँखें खोल दीं,— भद्रता या शराफ़त दिखलानेका उद्यम इससे अधिक आगे न बढ़ा। परन्तु उनकी स्त्री कुरसी छोड़कर जल्दीसे उठके खड़ी हो गई। शायद अभी तक पूरी तौरसे मेम-साहब नहीं बन पाई हैं, किन्तु ऊँचे एड़ीदार जूते और पहनाव-उढ़ावका आयोजन देखकर मालूम होता है कि इस विषयकी कोशिशमें कोई कमी नहीं की गई है।

कमरेमें एक और आराम-कुरसी मौजूद थी। बन्दना पिताको उसपर बिठाकर खुद एक दूसरी बेञ्चपर जा बैठी; और अत्यन्त सम्मानके साथ विप्रदासको बुलाकर बोली—“जोजी, झूटमूठ खड़े क्यों हैं, मेरे पास आकर बैठ जाइए। बड़े काष्ठपर बैठनेमें दोष नहीं लगता, आपकी जाति नष्ट नहीं होगी।”

सुनकर बन्दनके पिता जरा-कुछ हँस दिये; बोले—“बिप्रदासके छुआछूतका विचार क्या बहुत ज्यादा है ?”

विप्रदास खुद भी हँस दिये, बोले—“विचार तो है, पर क्या होनेस ‘बहुत ज्यादा’ होता है, इसे बगैर जाने इस प्रश्नका जवाब कैसे दूँ ?”

बुद्धने कहा—“यही समझ लो जैसा कि बन्दनाने कहा।”

विप्रदासने कहा—“वे बगैर खाये-पीये बहुत ज्यादा गुस्सेमें हैं। लड़कियों गुस्सेमें जो कुछ कह डालती हैं, उसपर आलोचना नहीं चल सकती।”

बन्दनाने कहा—“मैं गुस्सेमें नहीं हूँ,—जरा भी नहीं।”

विप्रदासने कहा—“हो, और बहुत ही ज्यादा गुस्सेमें हो। नहीं तो आज तुम कलकत्ता न जाकर घर लौट चलतीं। इसके सिवा तुम्हें खुद ही ख्याल रहता कि अभी अभी हम सब एक ही गाड़ीमें बैठके आये हैं, जाति नष्ट हुई हो तो वह पहले ही हो चुकी है, बेञ्चपर बैठनेकी बात कहना तो सिर्फ़ तुम्हारा छल है।”

बन्दनाने कहा—“खैर छल ही सही, पर आप सब तो बताइए मुखर्जी-

साहब, क्या हम लोगोंसे छू-छा जानेसे घर लौटकर आपको फिरसे नहीं नहाना पड़ेगा ? ”

“ चलो न, घर चलकर अपनी आँखोंसे देख लो । ”

“ नहीं । आप जानते हैं कि माको जब मैं प्रणाम करने लगी तब वे छू जानेके डरसे दूर हट गई थीं ? ” कहते-कहते ही बन्दनाका चेहरा मारे क्रोध और लज्जाके सुर्ख हो उठा ।

विप्रदासने इसे देखा । उत्तरमें उसने शान्त भावसे सिर्फ इतना ही कहा—
“ बात झूठ नहीं है, मगर सच भी नहीं । इसका असल कारण उनके पास बगैर रहे तुम नहीं समझ सकोगी । लेकिन उसकी तो सम्भावना ही नहीं रही । ”

“ हाँ, नहीं रही । ”

इस तीव्र अस्वीकारका कारण अब जाकर विप्रदासको साफ-साफ मालूम हुआ । मन-ही-मन उसके क्षोभकी सीमा न रही । क्षोभ नाना कारणोंसे हुआ । विमाताके सम्बन्धकी बात आंशिक रूपसे ही सत्य है और उसमें वह खुद भी कुछ-कुछ लपेट लिया गया है । इसपर मजा यह कि समझाकर कहने सुननेका न तो मौका है और न वक्त ही । दूसरी तरफ, धीर-चित्तसे समझने-लायक मनोवृत्तिक भी बन्दनामें बिलकुल अभाव है । लिहाजा चुप रह जानेके सिवा और कोई चारा ही न था; और वह बिलकुल चुप ही रहा ।

छोकरा-साहब पैर नीचे उतारकर जम्हाई लेते हुए उठ बैठे, पूछ उठे—
“ आप ही जर्मीदार विप्रदास-बाबू हैं ? ”

“ हाँ । ”

“ आपका नाम सुना है । पासके गाँवमें मेरी स्त्रीकी ननसाल है,—बंगालमें जब आना हुआ ही है तो इनकी इच्छा हुई कि एक दफे भेंट-मुलाकात करती चलें । इसीसे आया था । मैं पंजाबमें प्रैक्टिस करता हूँ । ”

विप्रदासने उसकी ओर गौरसे देखा कि वह उन्हींके बराबरकी उमरका है, —एक-आध सालकी कमी-बेशी हो सकती है, इससे ज्यादा नहीं ।

साहब कहने लगा—“ कल ही आपकी बात हो रही थी । लोग कहते हैं कि आप बड़े जबरदस्त, यानी बहुत कड़े जर्मीदार हैं । अवश्य ही दो-चार ब्राह्मण-पण्डितोंने कट्टर-हिन्दू होनेकी वजहसे आपकी बहुत तारीफ भी की । अब देख रहा हूँ कि बात बिलकुल झूठ नहीं है । ”

एक अपरिचितकी इस बिन-चाही आलोचनासे बन्दना और उसके पिता

दोनों ही को आश्चर्य हुआ; परन्तु विप्रदासने कोई उत्तर नहीं दिया। शायद वे इतने अन्यमनस्क थे कि सारी बातें उनके कानों तक पहुँची ही नहीं।

साहबने फिर कहना शुरू कर दिया—“अपने लेक्चरोंमें मैं अकसर कहा करता हूँ कि ज़रूरत है ‘रियल’ (असल) चीजकी, ‘सॉलिड’ (ठोस) शिक्षाकी,—ढकोसला या चकमेबाजी नहीं चाहिए। आपको चाहिए कि एक बार योरोप घूम आवें। वहाँकी आब-हवा, वहाँकी ‘फ्री एयर ब्रीद’ (स्वच्छन्द आब-हवामें साँस लेना) बगैर कि। मनमें ‘फ्रीडम’ (स्वाधीन चित्तवृत्ति) आती ही नहीं,—मन सुसंस्कारोंसे छुटकारा ही नहीं पाना चाहता। मैं लगातार पाँच साल तक उस देशमें था।”

बन्दनाके पिता इस आखिरी बातपर खुश होकर बोले—“यह बात तो सच है।”

उत्साह पाकर नौजवान साहब गरम हो उठा, बोला—“इस डिमोक्रेसी (प्रजातंत्र) के युगमें सभी समान हैं, कोई किसीसे छोटा नहीं है; और ज़रूरत इस बातकी है कि हरएक व्यक्ति अपने अधिकारको जबरदस्ती ऐसर्ट (assert=निःसन्दिग्ध भावसे कहे) करे, कॉन्सक्वेन्स (consequence=परिणाम) उसका कुछ भी क्यों न हो। मेरे फ़ैस रुपया होता तो आपकी ज़मींदारीमें रहनेवाली प्रत्येक रिआयाको मैं अपने खर्चसे योरोप घुमा लाता। फिर वे इस बातको खुद ही समझ जाते कि अपना राइट (right=अधिकार) किसे कहते हैं।”

बन्दनाको शायद बहुत बुरा लगा, उसने आहिस्तेसे कहा—“जीजान्नी अपनी प्रजापर अत्याचार करते हैं, यह खबर आपको किसे दी? मुझे आशा है कि आपके मामा-ससुरपर कोई जुल्म न हुआ होगा?”

“ओह—ये आपके बहनोई हैं क्या? थैंक्स (धन्यवाद), नहीं, उन्होंने कोई शिकायत नहीं की।”—फिर अपनी स्त्रीको लक्ष्य करके हँसते हुए बोला—“काश तुम्हारी बहनें अगर ऐसी होतीं!”—और फिर बन्दनासे कहने लगा—“आप शायद विलायत घूम आई हैं? नहीं गईं? जाइए, जाइए। फ्रीडम (स्वच्छन्द मनोवृत्ति), साहस, शक्ति, किसे कहते हैं, उस देशकी महिलाएँ वास्तवमें क्या हैं, एक बार अपनी आँखोंसे देख आइए। मैं नेक्स्ट टाइम (अबकी बार) जाते समय इन्हें साथ ले जाऊँगा, लय कर लिया है।”

किसीके कुछ बोलनेके पहले ही स्टेशनके उस रिलीविंग-प्लैण्डने दरवाजेके पाससे मुँह बढ़ाकर जताया कि गाड़ी डिस्टेन्स-सिगनल पार कर चुकी है,—आ ही पहुँची समझिए । ”

सब व्यस्त होकर प्लॉटफॉर्मपर आ खड़े हुए ।

गाड़ी खड़ी होनेपर देखा कि छुट्टियोंके कारण मुसाफिरोकी बेशुमार भीड़ है । कहीं भी तिल रखनेको जगह मिलना मुश्किल है । सिर्फ एक डब्बा फर्स्ट क्लासका और एक ही सेकेण्ड क्लासका । सेकेण्ड क्लासमें फिंरंगी रेल्वे सरवेण्टोंका दल ठसाठसा भर रहा है, जो कोई खेल देखनेके लिए कलकत्ते जा रहा है; और शायद उन्हींमेंसे कुछ लोग जगहकी कमीसे फर्स्ट क्लासमें जा बैठे हैं । हदसे ज्यादा शराब और ‘बीयर’ पीनेसे उन लोगोंका चेहरा जितना भीषण हो रहा था, व्यवहार भी उतना ही बदतर और ला-परवाहीका था । डब्बेका दरवाजा भीतरसे बन्द करके सबके सब बुरी तरह चिल्ला उठे—
“go—जाओ—जाओ ! ”

स्टेशन-मास्टर आया, गार्ड साहब भी आ पहुँचा, पर उन लोगोंने किसीको कुछ समझा ही नहीं ।

छोकरा-साहब बोला—“अब उपाय ? ”

बन्दना डरती हुई बोली—“चलिए, आज घर लौट चलें । ”

विप्रदासने कहा—“नहीं । ”

“नहीं तो क्या किया जाय ? न हो तो रातकी गाड़ीसे—”

छोकरा-साहब कहने लगा—“इसके सिवा और चारा ही क्या है ! तकलीफ तो होगी, पर हो । ”

विप्रदासने गरदन हिलाकर कहा—“नहीं । डब्बेमें चार ही पाँच जने हैं, और भी चार-पाँच जनोंके लिए जगह होनी चाहिए । ”

बन्दनाके पिता व्याकुल होकर कहने लगे—“चाहिए, सो तो जानता हूँ, मगर ये सबके सब मतवाले जो हैं । ”

विप्रदासका सारा शरीर मानो कठिन लोहेकी तरह सीधा हो उठा, उन्होंने कहा—“यह उन लोगोंका शौक है,—हमारा कसूर नहीं । चढ़िए,—मैं साथ चढ़ूँगा । ” और दूसरे ही क्षण गाड़ीका हत्था पकड़कर जोरसे धक्का मारके दरवाजा खोल डाला । फिर बन्दनाका हाथ पकड़के उसे भीतर खींचते हुए कहा—“आओ । ” नौजवान साहबसे कहा—“राइट ऐस्टरट

(अधिकार रक्षा) करना चाहते हैं तो स्त्रीको लेकर आ जाइए। अत्याचारी जमींदारके साथ रहते हुए कोई डर नहीं।”

मतवाले साहब लोग इस आदमीके चेहरेकी तरफ क्षण-भर ताकते रहे और फिर चुपकेसे उधरकी बेझपर जाकर बैठ गये।

८

शोरगुल सुनकर बगलके डब्बेके सहयात्री साहब लोग प्लेटफॉर्मपर उतर आये; और रूखे स्वरसे एक साथ पूछ उठे—“Whats up?” (“क्या मामला है?”) उनका ढंग यह था कि साथियोंकी तरफसे वे अपना विक्रम या शौर्य दिखानेको तैयार हैं।

विप्रदासने पास ही खड़े हुए गार्डको इशारेसे पास बुलाकर कहा—“ये लोग शायद फर्स्ट क्लास पैसेझर नहीं हैं, आपकी ड्यूटी है कि इन लोगोंको उतार दें।”

वह बेचारा भी साहब था, किन्तु अत्यन्त काला-साहब। लिहाजा ड्यूटी कुछ भी हो, वह बगलें झँकने लगा। बहुतसे लोग तमाशा देख रहे थे, वह मद्रासी रिलीविंग-हैण्ड भी खड़ा था; उसे हाथके इशारेसे पास बुलाकर विप्रदासने पाँच रुपयेका नोट देते हुए कहा—“मेरा नाम मेरे नौकरोंसे मालूम हो जायगा,—आप अपने अफसरोंके पास एक तार भेज दें कि ये मतवाले शराबी जबरदस्ती फर्स्ट क्लासमें चढ़ गये हैं, उतरना नहीं चाहते। और यह बात भी जतल्य दीजिए कि गाड़ीके गार्ड खड़े तमाशा देखते रहे और कोई मदद नहीं की।”

गार्डने अपनी आनेवाली विपत्तिको समझ लिया और फिर साहसपर सवार हो उन लोगोंसे कहा—“Don't you see they are big people? तुम लोग रेल्वे-सरवेण्ट हो, रेल्वे ‘पास’ पर जा रहे हो—be carefull!” (“देखते नहीं आप लोग, ये लोग बड़े आदमी हैं,—होशियार हो जाओ।”) बात मतवालोंके लिए भी उपेक्षणीय नहीं थी। लिहाजा वे उतरकर बगलके डब्बेमें चले गये, लेकिन ठीक अहिंस-मिजाजसे नहीं। दब्री जवानसे वे जो कुछ कह गये, उससे मन बिलकुल निश्चिन्त नहीं हो सका। खैर कुछ भी हो, पंजाबके बैरिष्ठर साहबने गार्डको धन्यवाद देते हुए कहा—“आप न होने तो शायद आज हम लोगोंका जाना ही न होता।”

“ओ—नो। यह तो मेरी ड्यूटी है।”

गाड़ी छूटनेकी घंटी बजी। विप्रदास उतरनेको उद्यत होकर बोले—“अब शायद मेरे साथ जानेकी ज़रूरत नहीं। वे अब कुछ नहीं करेंगे।”

वैरिस्टरने कहा—“हिम्मत नहीं पड़ेगी। नौकरीका भी तो डर है?”

वन्दना दरवाजा रोककर खड़ी हो गई, बोली—“सो नहीं होगा। नौकरीका डर ही चरम गैरण्टी नहीं है,—साथ आपको चलना ही पड़ेगा।”

विप्रदासने हँसकर कहा—“पुरुष होतीं तो समझतीं कि इससे बड़ी गैरण्टी संसारमें और कोई नहीं है।—लेकिन मैं तो कुछ खा-पी नहीं आया?”

“खा-पी तो मैं भी नहीं आई।”

“यह तुम्हारा शौक है। लेकिन थोड़ी ही देर बाद ‘होटल’वाला बड़ा स्टेशन आयेगा, वहाँ चाहो तो खा-पी सकोगी।”

वन्दनाने कहा—“पर उसकी चाह नहीं होगी। उपास मैं भी कर सकती हूँ।”

विप्रदासने कहा—“कर सकनेसे किसीको भी लाभ नहीं होगा,—मैं उतर जाऊँ।” फिर वैरिस्टर साहबसे कहा—“आप साथ हैं ही, ज़रा देखिएगा। अगर ज़रूरत पड़े तो—”

वन्दना बोल उठी—“जंजीर खींचकर गाड़ी खड़ी करा दें? सो तो मैं भी कर सकती हूँ।” इतना कहकर खिड़कीसे मुँह निकालकर घरके नौकरोंसे कह दिया—“तुम लोग घर जाकर मासे कह देना कि बाबू साहब हम लोगोंके साथ चले गये हैं। कल या परसों लौट आयेंगे।”

गाड़ी छूट गई।

वन्दना विप्रदासके पास आकर बैठ गई, बोली—“अच्छा मुखर्जी साहब, आप भी तो कम जिद्दी नहीं हैं!”

“क्यों?”

“आपने तो जबरदस्ती हम लोगोंको गाड़ीमें चढ़ा लिया, और वे लोग थे मुतवाले,—अगर वे न उतरकर मारपीट कर बैठते?”

विप्रदासने कहा—“तो उनकी नौकरी चली जाती!”

वन्दनाने कहा—“लेकिन हम लोगोंका क्या जाता? देहकी हड्डी-पसली? नौकरोंसे वह भी तो कोई तुच्छ वस्तु नहीं?”

विप्रदास और बन्दना दोनों ही हँसने लगे। दूसरी महिलाने भी सहसा ज़रा हँसकर मुँह फेर लिया। सिर्फ़ उसके पति पंजाबके नवीन वैरिस्टर मुँह गम्भीर बनाये बैठे रहे।

बन्दनाके पिताने अब तक इधर विशेष ध्यान नहीं दिया था, बातचीतके अन्तिम शब्द कानमें पड़ते ही वे सीधे होकर बैठ गये और बोले—“नहीं नहीं, हँसीकी बात नहीं, ऐसी वारदातें ट्रेनमें अक्सर हुआ ही करती है, अख-बारोंमें देखता हूँ। इसीसे जोर-ज़बरदस्ती करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी,—रातकी गाड़ीसे आते तो सब तरहसे ठीक रहता।”

बन्दनाने कहा—“रातकी गाड़ीमें भी अगर मतवाले साहब होते तो ?”

पिताने कहा—“सो क्या सचमुच ही होते बेटी ? तब तो फिर शरीफ़ लोगोंको आना-जाना ही बंद कर देना पड़े।” इतना कहकर वे एक मोटी चुरट सुल्लानेमें लग गये।

बन्दनाने आहिस्ते-से कहा—“मुखर्जी साहब, ‘शरीफ’ शब्दपर चापूजीमें जिरह मत करने लगिएगा।”

विप्रदासने गरदन हिलाकर हँसते हुए कहा—“नहीं। सो मैं समझ गया।”

“अच्छा मुखर्जी साहब, बचपनमें आपने कभी किलेके मैदानमें इन माहबोंके साथ मारपीट की है ? सच कहिएगा ?”

“नहीं, ऐसा सौभाग्य कभी नहीं हुआ।”

बन्दनाने कहा—“लोग कहते हैं कि अपने देशवालोंके लिए आप एक ‘टेरर’ (terror=आतंक) हैं। सुनती हूँ, घरके सब आपसे शेरकी तरह डरते हैं। क्या यह सच है ?”

“लेकिन तुमने सुना किससे ?”

बन्दनाने धीमे कण्ठसे कहा—“जीजीसे।”

“क्या कहा उन्होंने ?”

“कहती थीं, डरके मारे देहका खून पानी हो जाता है।”

“कैसा पानी ? मतवाले फिरंगियोंको देखकर जैसा हम लोगोंका हो ज़रूरत है,—वैसा ?”

बन्दना हँसती और सिर हिलाती हुई बोली—“हाँ, क़रीब-क़रीब वैसा ही।”
विप्रदास बोले—“उसकी ज़रूरत है। नहीं तो म्त्रियोंको शामनमें नहीं

रखा जा सकता। तुम्हारी शादी हो जानेपर यह विद्या मैं भैयाजीको सिखा आऊँगा। ”

बन्दनाने कहा—“ ज़रूर। मगर सब विद्याएँ सबके लिए मौजूद नहीं होतीं, यह भी जान रखिएगा। जीजी मेरी शुरूसे ही भली मानस है, अगर मैं होती तो और सबोंको मुझ ही से डरकर चलना पड़ता। ”

विप्रदासने कहा—“ अर्थात्, डरसे घर-भरके लोगोंका खून पानी हो जाता ? कोई ज्यादा आश्चर्यकी बात नहीं। कारण, थोड़े ही समयमें जो नमूना दिखा आई हो, उससे विश्वास करनेको ही जी चाहता है। कमसे कम मा तो जल्दी नहीं भूल सकेंगी।

बन्दना मन-ही-मन ज़रा उत्तेजित हो उठी, बोली—“ आपकी माने क्या किया है जानते हैं ? मैं दोक देने लगी तो वे पीछे हट गई ? ”

विप्रदासने ज़रा भी आश्चर्य प्रकट न किया, कहा—“ मेरी माका सिर्फ इतना ही देख आई हो, और कुछ देखनेका मौका नहीं मिला। मिलता तो समझती कि इस ज़रा-सी बातपर गुस्सा होकर बगैर खाये-पीये चले आनेके बराबर भूल और कुछ हो ही नहीं सकती। ”

बन्दनाने कहा—“ मनुष्यके आत्म-सम्मान नामकी भी तो कोई चीज़ होती है ? ”

विप्रदासने ज़रा हँसकर कहा—“ यह आत्म-सम्मानकी धारणा पाई कहाँसे ? स्कूल-कॉलेजकी मोटी-मोटी किताबें ही पढ़के तो ? मगर मा तो अँगरेजी नहीं जानती, किताबें भी नहीं पढ़ती। उनके जाननेके साथ तुम्हारी धारणा मेल कैसे खा सकती है ? ”

बन्दनाने कहा—“ पर मैं तो सिर्फ अपनी ही धारणाको लेकर चल सकती हूँ। ”

विप्रदासने कहा—“ चलनेसे अधिकांश क्षेत्रोंमें गलती होगी, जैसे कि आज तुमसे हुई है। विदेशकी किताबोंसे जो सीखा है उसीको एकान्त रूपसे मान लेनेके कारण ही घरसे इस तरह चली आ सकीं; नहीं तो नहीं आ सकतीं। बड़े-बूढ़ोंका अकारण असम्मान करनेमें संकोच होता। आत्म-मर्यादा और आत्म-अभिमानमें क्या फर्क है सो समझ जातीं। ”

बन्दनाने फर्कको भले ही न समझा हो, पर यह समझ गई कि उसके आजके आवृष्टिने विप्रदासके हृदयमें चोट पहुँचाई है। और वह अपने लिए नहीं बल्कि अपनी माके लिए।

दो-तीन मिनट चुप रहकर बन्दना सहसा पूछ उठी—“ माकी तरह आप खुद भी बहुत कट्टर हिन्दू हैं, नहीं ? ”

विप्रदासने कहा—“ हाँ । ”

“ उतना ही छुआ-छूतका विचार करके चलते हैं ? ”

“ हाँ, चलता हूँ । ”

“ कोई ढोक देकर प्रणाम करने लगे तो उन्हींकी तरह पीछे हट जाते हैं ? ”

“ हाँ, हट जाता हूँ । हम लोगोंको समय-असमयका हिसाब मानकर चलना पड़ता है । ”

“ मेरी जीजीको भी शायद इसी तरह अन्धी बना डाला होगा ? ”

“ सो तुम अपनी जीजीसे ही पूछना । हाँ, पारिवारिक नियम उनको भी मानकर चलना पड़ता है । ”

बन्दना हँसके बोली—“ यानी, शेरसे डरे बगैर चलनेका और कोई रास्ता ही नहीं । ”

विप्रदास भी हँसा, और बोला—“ नहीं, कोई नहीं । जैसे दिनकी गाड़ीमें शेरका डर हो तो आदमीको रातकी गाड़ीसे जाना पड़ता है,—यह प्राण-धर्मका स्वाभाविक नियम है । ”

बन्दनाने कहा—“ जीजी स्त्री हैं, स्वभावतः दुर्बल हैं,—उनपर सभी नियम लागू किये जा सकते हैं, मगर द्विजू बाबू भी तो, सुना है, पारिवारिक नियम मानकर नहीं चलते, उस विषयमें शेर-महाशयका क्या अभिमत है ? ”

यह प्रश्न बन्दनाने चुटकी लेनेके लिए ही किया था; और वह चुभ जायगा, ऐसी ही उसे आशा थी; किन्तु विप्रदासके चेहरेपर इसका कोई चिह्न ही नहीं नज़र आया, उन्होंने वैसे ही हँसते हुए उत्तर दिया—“ ये सब गूढ़ तथ्य हैं और इनका अधिकारीके सिवा अन्य किसीको बताना निषिद्ध है । ”

“ द्विजू बाबू खुद तो जान सकेंगे ? ”

विप्रदासने गरदन हिलाते हुए कहा—“ समय आनेपर जान सकेगा । वह जानता है कि रक्त-मांसके विषयमें शेरको किसी तरहका पक्षपात नहीं है । ”

क्षण-भरके लिए बन्दनाका चेहरा फक पड़ गया । इसके बाद वह क्या पूछे कुछ सोच न सकी ।

उसका यह परिवर्तन विप्रदासकी तीक्ष्ण दृष्टिसे छिपा न रहा ।

इतनेमें बन्दनाके पिताने पुकारा—“बिटिया, मुझे ज़रा पानी तो दे, पीनेको ।”

बन्दना उठी और सुराहीसे पानी देकर वापस अपनी जगहपर बैठ गई। इसके बाद फिर द्विजदासकी बात छेड़नेमें उसे डर मालूम हुआ। अन्य प्रसंग छेड़ते हुए उसने कहा—“जीजीकी सासुके लिए नहीं, पर स्वयं जीजीको अगर मेरे बगैर खाये-पीये चले आनेसे दुःख हुआ हो, तो मुझे भी दुःख होगा। मैं अब यही बात सोच रही हूँ।”

विप्रदासने कहा—“तुम्हारी जीजीको दुःख होगा—यह तो हुई बड़ी बात, और मेरी मा जो लज्जित हाँगी, वेदना अनुभव करेंगी—वह हो गई तुच्छ बात। इसके मानी हुए, आदमी असल चीज़को नहीं पहचान सकनेपर कैसी उलटी चिन्ता करने लगता है !”

बन्दनाने कहा—“इसे उलटी चिन्ता क्यों कहते हैं ? बल्कि यही तो स्वाभाविक है।”

विप्रदास चुप हो रहे। उनके क्षुण्ण मनका चेहरा बन्दनाने देख लिया।

बाहर अँधेरा होता आ रहा था, कुछ भी दीख नहीं पड़ता, फिर भी खिड़कीके बाहर देखती हुई बन्दना बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही। और दिन इस समय गाड़ी हवड़ा पहुँच जाया करती थी, किन्तु आज अब भी तीन घंटेकी देर है। उसने मुँह फेरकर देखा कि विप्रदास जेबमेंसे एक छोटी-सी पॉकेट-बुक निकालकर उसमें कुछ लिख रहे हैं। पृच्छा—“अच्छा मुखर्जी साहब, एक बातका जवाब दीजिएगा ?”

“कौनसी बातका ?”

“आप कह रहे थे न, हम लोगोंका आत्म-सम्मान-ज्ञान सिर्फ स्कूल-कॉलेजोंकी किताबोंसे पाई हुई धारणा है। मगर आपकी मा तो स्कूल-कॉलेजमें नहीं पढ़ीं, उनकी धारणा कहाँकी शिक्षा है ?”

विप्रदास विस्मित हो गया, पर कुछ बोला नहीं।

बन्दनाने फिर कहा—“उनके सम्बन्धमें अपने कुतूहलको मैं अपने मनमें दबा नहीं पा रही हूँ। वे गुरुजन हैं, मैं इन्कार नहीं करती, पर संसारमें वही बात क्या सब बातोंसे बड़ी है ?”

विप्रदास पूर्ववत् स्थिर बैठा रहा।

बन्दना कहने लगी—“आब हम लोग थे उनके घरपर बिन-बुलाये

मेहमान। यह तो मेरी किताबोंमें पढ़ी विदेशी शिक्षा नहीं है ? फिर भी,— यह सब कुछ नहीं,—सिर्फ उमरमें छोटी होनेसे ही मेरे अपमानको आप लोग अग्राह्य कर देंगे ? ”

अब भी विप्रदास कुछ नहीं बोला,—वैसे ही चुप रहा ।

बन्दना कहने लगी—“ फिर भी उनसे मैं क्षमा माँगती हूँ । मेरे आचरणके लिए जीजी दुःख ना पायें । ” फिर ज़रा ठहरकर बोली—“ मेरे मा-बाप विलायत गये थे इसलिए उन लोगोंको मेम और साहबके सिवा वे और कुछ सोच ही नहीं सकते । सुना है कि इसी वजहसे शायद आज तक जीजीकी ल्वाञ्छनाकी समाप्ति नहीं हुई है । उनकी धारणासे मेरी धारणा मेल नहीं खायेगी, फिर भी उनसे कहिएगा कि मैं कुछ भी क्यों न होऊँ, अपमान सिवा अपमानके और कुछ नहीं हो सकता । जीजीकी सामु करं तो भी नहीं । ”—कहते-कहते उसकी आँखोंकी कोरें आँसुओंसे भर आई ।

विप्रदासने धीरेसे कहा —“ मगर उन्होंने तो तुम्हारा अपमान किया नहीं । ”

बन्दनाने ज़ोर देकर कहा—“ ज़रूर किया है । ”

विप्रदाससे उसी क्षण जवाब नहीं दिया, कई क्षण चुप रहकर कहा—“ नहीं, अपमान तुम्हारा माने नहीं किया । मगर, खुद उनके सिवा यह बात तुम्हें और कोई समझा भी नहीं सकेगा । बहस करके नहीं, उनके पास रहकर ही तुम्हें यह बात समझनी होगी । ”

बन्दना खिड़कीके बाहर देखती रही ।

विप्रदास कहने लगे—“ एक दिन पिताजीके साथ माका झगड़ा हो गया था । कारण तुच्छ था, किन्तु वह हो उठा बहुत बड़ा । तुमसे सब बातें कहीं नहीं जा सकतीं, मगर उसी दिन मैंने समझा था कि मेरी इस बिना पढ़ी-लिखी माका आत्म-सम्मानका ज्ञान कितना गहरा है । ”

बन्दनाने सहसा मुड़कर देखा कि अपरिसीम मातृ-गर्वसे विप्रदासका चेहरा मानो उद्भासित हो उठा है । परन्तु वह कुछ भी बोली नहीं और खिड़कीके बाहर ही देखती रही ।

विप्रदास कहने लगा—“ बहुत दिनों बाद किसी एक बातके सिलसिलेमें एक दिन यही बात मासे मैंने पूछी थी—मा, इतना जबरदस्त आत्म-सम्मानका ज्ञान तुमने पाया कहाँसे ? ”

बन्दनाने मुँह बगैर फेरे ही कहा—“ क्या कहा उन्होंने ? ”

विप्रदासने कहा—“ जानती होगी शायद कि मैं माका अपना लड़का नहीं हूँ। उनकी अपनी दो सन्तानें हैं—द्विजू और कल्याणी। माने कहा,—‘तुम तीनोंको एक साथ एक बिछौनेपर जिन्होंने आदमी बनानेका भार सौंपा था, उन्होंने यह विद्या मुझे दी थी बेटा, और किसीने नहीं’। उसी दिनसे जानता हूँ कि माके इस गंभीर आत्म-सम्मान-ज्ञानने ही किसीको एक दिनके लिए भी यह जानने नहीं दिया कि वे मेरी जननी नहीं हैं, विमाता हैं। समझ सकती हो इसका अर्थ ? ”

क्षण-भर चुप रहकर फिर वे कहने लगे—“ अभिवादनके उत्तरमें किसने कितना हाथ उठाया, कौन कितना पीछे हट गया, नमस्कारके प्रति-नमस्कारमें किसने कितना सिर नचाया—इस बातको लेकर मर्यादाकी लड़ाई सभी देशोंमें है; अहंकारके नशेकी खुराक तुम्हें अपनी पाठ्य-पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें मिलेगी, किन्तु मा न होकर भी पराये लड़केकी मा होकर जिस दिन माने हमारे बड़े परिवारमें प्रवेश किया था, उस दिन आश्रित आत्मीय-परिजनोंके प्रत्येक गलेमेंसे विषकी पैली मानो बाहर निकली पड़ती थी। परन्तु जिस चीज़से उन्होंने सारे विषको अमृतमें पारणत कर दिया, वह गृहस्वामिनीका अभिमान नहीं था, गृहिणी-पनेकी जबरदस्ती नहीं थी, बल्कि माकी स्वकीय मर्यादा थी। वह इतनी ऊँची है कि उसे कोई लंघन नहीं कर सका। परन्तु यह तत्त्व है सिर्फ हमारे ही देशमें। विदेशी तो इस बातकी खबर ही नहीं रखते, वे अखबारोंकी खबरें देखकर ही इन लोगोंको ‘दासी’ कह दिया करते हैं, अन्तःपुरकी चेड़ी पड़ी बाँदी बताते हैं। बाहरसे शायद ऐसा ही दीख पड़ता हो—उन्हें मैं दोष नहीं देता—किन्तु घरकी दास-दामियोंकी भी सेवाके नीचे अन्नपूर्णाकी राज्येश्वरी मूर्तिपर यदि उन लोगोंकी दृष्टि नहीं पड़ती तो न सही, पर क्या तुम लोगोंकी भी नहीं पड़ेगी ? ”

बन्दना अभिभूत दृष्टिसे विप्रदासके मुँहकी ओर देखती रह गई।

बैरिट्टर साहब अकस्मात् जोर-से बोल उठे—“ट्रेन हवड़ा-प्लाटफॉर्ममें ‘इन’ कर रही है।”

बन्दनाके पिताको शायद तन्द्रा आगई थी, वे चौंककर बोले—“जान बची।”

बन्दनाने मृदु कण्ठसे चुपकेसे कहा—“मुझे कलकत्ते उतरनेमें अब अच्छा नहीं लग रहा है, मुखर्जी साहब ! इच्छा होती है कि आपकी माके पास लौट

जाऊँ और जाकर कहूँ कि, 'मैंने अच्छ नहीं किया, मुझे क्षमा करो'।”

विप्रदास सिर्फ़ हँस दिये, कुछ बोले नहीं। स्टेशनपर उतरकर पूछ—
“आप कहाँ जायेंगे ?”

राय-साहबने कहा—“मैं ग्रैण्ड-होटलमें ठहरा करता हूँ, उन लोगोंको तार भी कर दिया है,—वहीं जाऊँगा।”

इस आदमीके सामने ‘ग्रैण्ड-होटल’ की बातसे वन्दनाको मानो कुछ लज्जा-सी मालूम होने लगी।

पंजाबके वैरिस्टर साहब गाड़ीके अत्यन्त लेट होनेपर हृदसे ज्यादा क्रोध प्रकट करते हुआ बार-बार जताने लगे कि उन्हें बी० एन० आर० की लाइनसे जाना है, लिहाजा वेस्टिंगरूमके सिवा अब और कोई चारा नहीं।

विप्रदास चुपचाप खड़े हैं; रायसाहब खुद भी मानो कुछ लज्जित होकर बोले—“लेकिन विप्रदास, तुम-तुम भी जान पड़ता है हम लोगोंके साथ—”

“ग्रैण्ड-होटलमें ?”—कहकर विप्रदास हँस दिया, बोला—“मेरे लिए चिन्ता न कीजिए। बहूबाजारमें द्विजूका एक मकान है,—यहाँ अक्सर आना-जाना पड़ता है—वहाँ नौकर-चाकर सभी हैं,—अच्छ, आज वहीं क्यों न चले चलिए।”

वन्दना पुलकित हो उठी, बोली—“चलिए, सब वहीं चलें।”

उसके सिरसे मानो एक बोझ-सा उतर गया। आनन्दके प्राबल्यसे अन्य दोनों सहायत्रियोंको उसाने सादर आह्वान किया; और फिर सबके सब मोटरमें जा बैठे।

९

वन्दनाने सुबह उठके देखा कि इस मकानके संबंधमें उसने जैसा सोचा था, वैसा नहीं है। समझा था कि मरदोंके रहनेका बासा सरोखा होगा; शायद कोने कोनेमें कूड़ा-करकट, सीढ़ियोंपर थूक, दीवारोंपर पानकी पीक, टूटा-फूटा असवाब, मैले-कुचैले बिछौने, छतकी शहतीर-कड़ियोंमें धुएँकी कालिख, मकड़ियोंके जाले—इस तरह सर्वत्र विशृंखलताका राज्य होगा। कल रातको मामूली रोशनीमें थोड़ेसे समयमें कुछ देख नहीं पाया था, किन्तु आज उसे ~~मकान~~की नशृंखलता और स्वच्छतापर सचमुच ही आश्चर्य हुआ। भरी मकान है, बहुते

कमरे हैं, कई बरामदे हैं, सब-कुछ साफ-सुथरा चमक रहा है। दरवाजेके बाहर एक अर्धेड़ उमरकी विधवा स्त्री खड़ी थी; देखनेमें शरीफ-घरानेकी-सी लगती है; उसके गलेमें आँचल डालकर* प्रणाम करते ही बन्दना मारे संकोचके चंचल हो उठी।

उसने कहा—“जीजी-बाई, आपके लिए ही खड़ी हूँ, चलिए, नहान-घर दिखा दूँ। मैं इस घरकी दासी हूँ।”

बन्दनाने पूछा—“बापूजी उठ गये ?”

“नहीं, कल उन्हें सोनेमें देर हो गई थी, शायद उठनेमें भी देर हो।”

“हम लोगोंके साथ और भी दो जने जो आये थे वे ?”

“नहीं, वे भी अभी नहीं उठे।”

“तुम्हारे बड़े बाबू साहब ? वे भी सो रहे हैं ?”

दासीने हँसकर कहा—“नहीं, वे गंगास्नान संध्या-पूजासे निवृत्त होकर आफिसमें चले गये हैं। उन्हें खबर भेजूँ क्या ?”

बन्दनाने कहा—“नहीं, उसकी ज़रूरत नहीं।”

नहान-घर वहाँसे कुछ दूर है, एक छोटेसे बरामदेको पार करके जाना पड़ता है। बन्दनाने जाते-जाते कहा—“तुम्हारे यहाँ ‘ब्राथरूम’ सोनेके कमरेके पास नहीं रह सकता, क्यों ?”

दासीने कहा—“नहीं। मा साँच कभी-कभी कालीजीके दर्शनके लिए कलकत्ते आती हैं तो वे इसी मकानमें रहती हैं न, इसीसे वैसा यहाँ नहीं हो सकता।”

बन्दनाने मन-ही-मन कहा, यहाँ भी वही प्रबल-प्रतापी मा ! आचार-अनाचारका कठोर शासन ! वह वापस जाकर धोती-अंगौछा कुड़ती वगैरह ले आई; फिर बोली—“यहाँ दो-चार रोज रहना पड़ा तो तुम्हें क्या कहकर बुलाया करूँ ? यहाँ तुम्हारे सिवा शायद और कोई दासी नहीं है ?”

उसने कहा—“है, पर उसे बहुत काम रहता है। ऊपर आनेका समय ही नहीं मिलता। जो भी कुछ ज़रूरत हो मुझहीसे कहिएगा, जीजी-बाई, मेरा नाम अन्नदा है। लेकिन मैं गँवई-गाँवकी हूँ, सम्भव है, मुझसे गलतियाँ हो जायें, कुछ खयाल न कीजिएगा।”

● अँगालमें स्त्रियाँ देवी-देवता और ब्राह्मण या पूजनीय जनोको इसी तरह नमस्कार करती हैं।

उसके विनय-वचनसे बन्दनाने मन-ही-मन खुश होकर पूछा—“ तुम्हारा घर कहाँ है अन्नदा ? घरपर तुम्हारे कौन-कौन हैं ? ”

अन्नदाने कहा—“ घर मेरा इन्हींके गाँवमें है, बलरामपुरमें । एक लड़का है, उसे इन्हीं लोगोंने पढ़ा-लिखाकर काम दे दिया है, बहूको लेकर वह वहीं देशमें ही रहता है । मजेमें है, जीजी-बाई । ”

बन्दनाने कुतहली होकर पूछा—“ तो फिर तुम खुद क्यों नौकरी कर रही हो, चाहो तो बहू-बेटाके साथ घरपर ही रह सकती हो ? ”

अन्नदाने कहा—“ चाहती तो बहुत हूँ जीजी-बाई, लेकिन बनता नहीं । तकलीफके दिनोंमें बाबू लोगोंको जवान दी थी कि मेरा लड़का अगर आदमी बन जाय तो मैं दूसरोंके लड़कोंको आदमी बनानेका भार लूँगी । उस भारको माथेसे उतारते नहीं बनता । देशके बहुतसे लड़के यहाँ परदेसमें पढ़ते हैं । मैं न देखूँ, तो उन्हें देखनेवाला और कोई नहीं है । ”

“ वे शायद इसी मकानमें रहते हैं ? ”

“ हाँ, इसी मकानमें रहकर कालेजोंमें पढ़ते हैं । पर आपको देर हुई जा रही है, मैं बाहर ही हूँ, बुलाते ही आ जाऊँगी । ”

बन्दनाने बाथरूममें जाकर देखा कि भीतर तरह-तरहकी व्यवस्था है । पास-ही-पास तीन कमरे हैं, छुआछूतसे बचनेके लिए जितनी तरहकी तरकीबें आदमीके दिमागमें आ सकती है उनमेंसे कोई भी छूटी नहीं है । समझ गई कि यह सब माके व्यवहारके लिए है । संगमरमरका फर्श, संगमरमरकी महानेकी चौकी और संगमरमरका परिण्डा है; एक तरफ तीन-चार तॉबेके हण्डे—शायद गंगाजल रखनेके लिए,—रोज मौजने-घसनेसे चमक रहे हैं । मा यहाँ कब आई थीं और फिर कब आयेंगी निश्चित किसीको नहीं मालूम, फिर भी, लापरवाहीका चिह्न तक कहीं नज़र नहीं आ सकता । ऐसे जतनके साथ सतर्क व्यवस्था है कि मालूम होता है जैसे वे यहीं मौजूद हों । ऐसी व्यवस्था सिर्फ़ हुकम चलाकर या शासन करके नहीं कराई जा सकती; देखते ही बन्दनाने इस बातको महसूस किया कि उससे भी कोई बड़ी बात सब-कुछ नियंत्रण कर रही है । और यह मा,—यह स्त्री—इस गृहस्थीमें सर्व साधारणसे कितने ऊँचे स्थान पर है, इस बातको वह बहुत देर तक अपने मनमें स्तब्ध होकर खड़ी-खड़ी सोचती रही । कहानी, निबन्ध और पुस्तकोंमें भारतीय नारी-जातिके अनेक दुःखोंकी बात उसने पढ़ी है, उनकी हीनताको लज्जाके मारे स्वयं नारी होकर

वह मन-ही-मन मर-मर गई है—यह शूठ भी नहीं है, पर इस घरमें अकेली खड़ी होकर उन सब बातोंको सत्य मान लेनेमें भी आज उसे संकोच होने लगा।

उसके बाहर आनेपर अन्नदाने हँसते हुए कहा—“बहुत देर हो गई जीजी-बाई, करीब दो घंटे हुए—सब नीचे रसोईघरमें आपकी बाट देख रहे हैं। चलिए।”

“तुम्हारे बड़े बाबू ऑफिससे आ गये ?”

“हाँ, वे भी नीचे आ गये हैं।”

“शायद हम लोगोंके साथ नहीं खायेंगे ?”

अन्नदा हँसती हुई बोली—“खायेंगे, तो भी वही दोपहर बाद, जीजी और आज सो भी नहीं। एकादशी है,—शामके बाद शायद कुछ फल-फलहरी खायेंगे।”

बन्दना किसी तरह मानो समझ गई थी कि यह स्त्री इस घरमें ठीक दासी जैसी नहीं है; उसने कहा—“वे तो कोई ब्राह्मणके घरकी विधवा नहीं हैं, फिर एकादशीका उपवास भला क्यों करने लगे ? कल रेलमें एकादशीका न सही, दशमीका उपास तो उनका यों ही हो चुका है।”

अन्नदाने कहा—सो होने हो, उपाससे उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती। मा कहा करती हैं कि पहले जनममें तपस्या करके विपिनने इस जनममें उपवास-सिद्धि का वर पाया है। उनका खाना देखकर दंग रह जाना पड़ता है।”

बन्दनाने नीचे जाकर देखा कि उन लोगोंके अभ्यासके अनुसार वहाँ चाय, पावरोटी, अण्डे आदि सब चीजें टेबिलपर सजी हुई हैं; और पिता तथा सख्तीक त्रैस्टर सा० भूखसे चंचल हो रहे हैं। अधैर्य उन लोगोंका लगभग शेष सीमा तक पहुँच चुका है। बन्दनाको देखते ही अखबार एक तरफ फेककर पिताने शिकायतके स्वरमें कहा—“अह—इतनी देर कर ली बेटी, इस जून तो अब कोई काम होता नहीं दीखता।”

विप्रदास पास ही बैठे थे, बन्दनाने पूछा—“मुखर्जी साहब, आप नहीं पीयेंगे ?”

विप्रदास बातको समझ गये, हँसके बोले—“चाय मैं नहीं पीता, सिर्फ दाल-भात खाया करता हूँ। उसका अभी वक्त नहीं हुआ,—मेरे लिए चिन्ता मत करो, तुम बैठ जाओ।”

बन्दनाने इसका उत्तर नहीं दिया, पिता और अन्य दोनों अतिथियोंको

लक्ष्य करके कहा—“ मुझसे गलती हो गई है; मुझे कहला भोजना चाहिए था, मगर भूल गई। मेरी चाय पीनेकी इच्छा नहीं है, आप लोग अब देर न कीजिए,—शुरू कर दीजिए। मैं बल्कि आप लोगोंकी चाय तैयार किये देती हूँ। ”—इतना कहकर वह उसी क्षण काममें लग गई।

सब-कोई व्यस्त हो उठे। नौकर एक तरफ खड़ा हुआ था, वह मारे संकोचके सिकुड़-सा गया; पिताने उद्वेगके साथ पूछा—“ तुम्हारी तबीयत तो खराब नहीं है बेटी ? ” सस्त्रीक बैरिस्टर साहब क्या कहें कुछ सोच ही न सके।

बन्दनाने चाय बनाते बनाते कहा—“ नहीं बापूजी, तबीयत खराब नहीं है, ऐसे ही खानेकी रुचि नहीं है। ”

“ तो रहने दो। कल ज्यादा रात पड़े खाया था, शायद अच्छी तरह हजम नहीं हुआ होगा। इसके सिवा काफी दिन चढ़ चुका, पित्त भी चढ़ गया होगा। ”

“ शायद यही बात होगी। दोपहर होनेपर मुखर्जी साहबके साथ बैठके दाल-भात खाऊँगी, इस घरमें उसे शायद हजम कर सकूँगी। ”

उसकी बातपर और किसीने उतना खयाल नहीं किया, पर विप्रदासके चेहरेके सामनेसे क्षणभरके लिए एक काली छाया-सी तैर गई।

नौकर न-जाने क्या सोचकर कह बैठा—“ आज एकादशी है, बाबू साहब तो उस जून फल-फलहरीके सिवा और कुछ खायेंगे नहीं। ”

बन्दना अभी अभी यह बात सुन आई थी कि आज एकादशी है, फिर भी अनजान बनकर बोली—“ सिर्फ फल-फलहरी ? बहुत हल्की खुराक है। वही मेरे लिए अच्छी रहेगी। क्यों, मुखर्जी साहब ? ”

विप्रदासने हँसते हुए गरदन तो हिलाई; पर कोई उनका इस तरह स्वच्छन्दतासे उपहास कर सकता है, यह बात आज ही उन्हें पहले-पहल मालूम हुई और उससे मानो वे मन-ही-मन दंग रह गये। और, उनके चेहरेकी तरफ देखकर बन्दनाने भी शायद यह बात महसूस की।

बाहरका काम-काज निवटाकर जब बन्दना पिताके साथ घर लौटी तब तीसरा पहर बीत चुका था। सस्त्रीक बैरिस्टर साहब जादूघर, चिड़ियाखाना, किलेका मैदान, विकटोरिया-मेमोरियल वगैरह कलकत्तेकी देखनेलायक म्हारी चीजें देखकर अब तक नहीं लौटे थे। रातकी गाड़ीसे ही उन लोगोंके जानेकी बात थी, किन्तु प्रोग्राम बदलकर फिलहाल जाना उन लोगोंने स्थगित कर दिया है।

रायसाहब कपड़े बदलनेके लिए अपने कमरेमें चले गये। बन्दनाकी अपने कमरेके सामने अन्नदासे भेंट हो गई। अन्नदाने हँसमुख हो शिकायतके स्वरमें उससे कहा—“जीजीबाई, सारा दिन तो बिना खाये-पीये बिता दिया,—अब जरा जल्दीसे हाथ-मुँह धो लीजिए, आपके लिए फल-फलहरी सब आ गई है, तब तक मैं उसे तैयार कर रखती हूँ। क्यों ठीक है न ?”

“मगर बड़े बाबू—मुखर्जी साहब ? वे ?”

अन्नदाने कहा—“उनके लिए ब्याकुल होनेकी ज़रूरत नहीं जीजी-बाई, यह तो उनका रोजका हाल है। खानेकी बनिस्वत न-खाना ही उनका नियम है।”

“मगर वे हैं कहाँ ?”

“दक्षिणेश्वर कालीजीके दर्शन करने गये हैं। आते ही होंगे।”

बन्दनाने कहा—“अच्छा तो ठीक है, उनके आनेपर तैयारी करना। लेकिन और सब लोग ? उनका क्या इन्तजाम हुआ ? अच्छा, चलो तो अन्नदा, तुम लोगोंका रसोईघर देख आऊँ।”

अन्नदाने कहा—“चलिए, लेकिन इस जून उन लोगोंके खाने-पीनेका इन्तजाम रसोई-घरमें नहीं हुआ, जीजीबाई, होटलसे इन्तजाम किया गया है,—वहींसे सब सामान आयेगा।”

बन्दना चकित रह गई; बोली—“यह कैसी बात ? यह सलाह तुम लोगोंको किसने दी ?”

“बड़े बाबू खुद ही हुकम दे गये हैं।”

“मगर वहाँका अखाद्य-कुखाद्य ये लोग खायेंगे कहाँ ? इसी मकानमें ? तुम लोगोंकी मा सुनेंगी तो क्या कहेंगी ?”

अन्नदा सकपका-सी गई, बोली—“नहीं, वे नहीं सुन पायेंगी। नीचेके एक कमरेमें इन्तजाम किया गया है। वासन-बरतन होटलवाले ही तो आयेंगे, कोई दिक्कत न होगी।”

बन्दनाने कहा—“हुकम तो दे गये हैं, पर उसे तामील किसने किया ? उसके पास एक बार मुझे ले जा सकती हो ?”

“चलिए।”

मुखर्जीयोंका एक बड़ा-भारी तिजारती कारोबार कलकत्तेमें चालू है। नीचेके मंजिलके तीन-चार कमरोंमें उसका दफ्तर है; मुनीम-गुमारते, क्लर्क, दरबान,

मैनेजर वगैरह, कारोबारमें जितने तरहके कर्मचारियोंकी ज़रूरत होती है; सब वहाँ काम करते हैं। बन्दनाके पहुँचते ही सब उठके खड़े हो गये। उमर और ओहदेके लक्षणोंसे मैनेजरको उसने सहजमें ही पहचान लिया; और इशारेसे बुलाकर कहा—“ होटलमें क्या आप खुद जाकर हुकम दे आये हैं ? ”

मैनेजरके गरदन हिलाकर स्वीकार करनेपर उसने कहा—“ तो फिर और एक दफे जाइए, उन लोगोंको मना कर आइए । ”

मैनेजर अचम्भेमें पड़ गया, बगलें झँकता हुआ बोला—“ बड़े बाबूके बगैर लौटे—”

बन्दनाने कहा—“ तब तो शायद मना करनेका समय न रहेगा। मुखर्जी साहब नाराज होंगे तो मुझपर हो लेंगे। आपको कोई डर नहीं। जाइए, देर न कीजिए । ”—इतना कहकर वह बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही चलनेको उद्यत हुई।

हतबुद्धि मैनेजरने सोचा, यह खूब रही ! विप्रदासका हुकम न मानना कठिन बात है, यहाँ तक कि उसे असम्भव भी कहा जा सकता है किन्तु इस अपरिचित लड़कीके सुनिश्चित संशयहीन शासनकी अवहेलना करना भी कम कठिन नहीं। लगभग वैसा ही असम्भव है। क्षण-भर विमूढ़की भाँति स्तब्ध रहकर वह दुविधाके स्वरमें बोला—“ जी, जाऊँ तो फिर,—मना कर आऊँ ? कुछ पेशगी भी दिया जा चुका है—”

“ सो जाने दीजिए, आप देर न कीजिए । ”—कहकर बन्दना ऊपर लौट आई।

शामके बाद लौटनेपर विप्रदासने यह बात सुनी। वह कुछ सोच ही न सके कि उन्हें खुश होना चाहिए या नाराज। रसोई-घरमें जाकर देखा कि तैयारियों क़रीब-क़रीब पूरी हो चुकी हैं, बन्दना छोटे-से स्टूलपर बैठी हुई रसोइया-महाराजके साथ काम करानेमें व्यस्त है। वह उठकर खड़ी हो गई और कृत्रिम विनयके स्वरमें बोली—“ गुस्सेमें आकर मैनेजर-बाबूको बरखास्त तो नहीं कर आये मुखर्जी साहब ? ”

विप्रदासने कहा—“ मुखर्जी साहब ऐसे गुस्सेल हैं, यह खबर तुम्हें किसने दी ? ”

बन्दनाने कहा—“ लोग कहते हैं कि शेरकी गन्ध एक योजन दूरसे आ जाती है । ”

विप्रदासने हँसकर कहा, “ मेहमानोंके लिए क्या इन्तजाम होगा ?—उम्मीद सबको जो रातको डिनरका अभ्यास है,—उसका क्या ? ”

बन्दनाने कहा—“ जिनका बिना डिनरके काम ही नहीं चल सकता उन्हें किसीके साथ होटल भिजवा दीजिएगा । बिलके रुपये मैं दूँगी । ”

“ मजाक नहीं है बन्दना, शायद यह अच्छा नहीं हुआ । ”

“ शायद अच्छा तब होता जब उन सब चीजोंको घर मेंगाया जाता ? मा मुनतीं तो क्या कहतीं—बताइए तो ? ”

विप्रदासने यह बात सोची नहीं हो, सो बात नहीं; पर वह कुछ तय नहीं कर पाये थे, बोले—“ वे जान नहीं पातीं । ”

बन्दनाने सिर हिलाकर कहा—“ जान जातीं । मैं चिट्ठी लिखके जता देती । ”
“ क्यों ? ”

“ क्यों ? जो बात कभी नहीं की, दो दिन इन बाहरके लोगोंको खुश करनेके लिए क्यों आप करें ? हरगिज नहीं । ”

मुनकर विप्रदास सिर्फ खुश ही नहीं हुआ, आश्चर्यान्वित भी हुआ ।

कुछ देर चुप रहकर वह बोला—“ मगर तुमने जो कल सुबहसे कुछ नहीं खाया बन्दना ? गुस्सा क्या नहीं उतरेगा ? ” उसके कंठ-स्वरमें अबकी बार कुछ स्नेहका पुट लगा हुआ था ।

बन्दनाने मृदु कण्ठसे जवाब दिया—“ गुस्सा दिलाया क्यों था ? लेकिन मुनिए, आपके खानेकी फल-फलहरी सब आ चुकी है, तब तक आप, संध्या-पूजा कर लीजिए, इतनेमें मैं बनार-बुनूरकर तैयार कर देती हूँ । लेकिन यदि और किसीने किया तो मैं आज भी नहीं खाऊँगी, कहे देती हूँ । ”

“ अच्छा, मैं आया । ”—रहकर विप्रदास ऊपर चला गया ।

लगाभग घंटे-भर बाद बन्दना एक सफेद संगमरमरके थालमें फल-फलहरी और कुछ मिठाई लेकर विप्रदासके कमरेमें जा खड़ी हुई । अन्नदाके हाथमें आसन और पानीका गिलास था । उसने पानी छिड़ककर और सावधानीसे पोंछके आसन बिछा दिया ।

विप्रदासने बन्दनाकी ओर देखकर विस्मयके साथ कहा—“ तुम क्या फिर अभी नहाई हो ? ”

“ आप खाने तो बैठिए । ”—कहकर उसने थाल सामने रख दिया ।

१०

विप्रदासने आसनपर बैठकर फिर वही सवाल किया—“ सचमुच ही फिरसे नहा आई क्या ? यदि तबीयत खराब हो गई ? ”

“ भले ही हो जाय, पर मेरे हाथसे न-खानेकी वहानेबाजी या छल अब मैं आपको नहीं करने दूँगी । यह मेरा प्रण है । साफ-साफ कहना पड़ेगा कि तुम्हारा छुआ नहीं खाऊँगा, तुम स्लेच्छ-घरकी लड़की हो ! ”

विप्रदासने हँसकर कहा,—“ किताबोंमें नहीं पढ़ा कि दुरात्माओंके लिए छल-छन्दोंका अभाव नहीं होता ? ”

बन्दनाने कहा—“ पढ़ा है, पर आप न तो दुरात्मा हैं, और न भयानक ही हैं,—हमारे जैसे ही गुण-दोषोंसे युक्त आदमी हैं । ऐसा नहीं होता तो मैं सचमुच ही उन बेचारोंकी डिनर बन्द करने न जाती । ”

“ मगर सच्चा कारण क्या है ? ”

“ सच्चा कारण ही आपको बता रही हूँ । आपके परिवारमें उसका चलन नहीं है । न देशके घरमें, न यहाँ । फिर किसलिए आप वैसा काम करें ? ”

“ पर तुम तो जानती हो, वे सभी विलायत-फिरता हैं,—ऐसा खाना ग्यानेके ही वे आदी हैं । ”

बन्दनाने कहा—“ आदी चाहे जिस बातके हों, पर वे हैं तो भारतीय ही । भारतीय अतिथि डिनर बगैर खाये मर गये हों, ऐसी तो कोई नजीर नहीं है । लिहाजा, यह वजह अग्राह्य है । यह आपकी फिज़ूलकी बात है । ”

विप्रदासने कहा—“ तो कामकी बात क्या है सो बताओ ? ”

बन्दनाने कहा—“ सो मैं ठीक नहीं जानती । पर शायद यह बात ठीक है कि जो आप मुँहसे कहते हैं, उसे भीतरसे आप पूर्णरूपसे नहीं मानते । नहीं तो मासे छिपाकर इस तरहकी व्यवस्था करनेको हरगिज राजी न होते । लोग आपसे फिज़ूल ही इतना डरते हैं । जिनसे डरना चाहिए, वह आप नहीं, आपकी मा है । ”

सुनकर विप्रदास जरा भी नाराज नहीं हुआ, बल्कि हँसकर बोला—“ तुमने दोनों जनोंको पहचान लिया । पर वह इन्तजाम मासे छिपाकर किया जा रहा था, यह बात तुमने किससे सुनी ? ”

बन्दनाने नाम नहीं बताया, सिर्फ इतना ही कहा—“ मैंने दरियाफ्त करके

जान लिया है। यह इतनी बड़ी दुर्घटना होती कि जीजी मुझे कभी भी क्षमा नहीं करती, हमेशा अभिसम्पात करती रहती कि बन्दनाके लिए ही ऐसा हुआ। इसीसे ऐसा काम मैं आपको हरगिज नहीं करने दे सकती थी।”

विप्रदासने कहा—“तुम परम आत्मीय हो, रिश्तेदारोंमें सबसे बड़ी हो। यह तुम्हारे लायक बात है। पर, दुबकाचोरी बगैर किये तुम्हारे हाथका मैं खा सकता हूँ कि नहीं, यह बात उस आदमीसे पूछी थी क्या ? नहीं तो अब जाकर मालूम कर आओ, तब तक मैं इन्तजार करूँगा।” इतना कहकर उसने हँसते हुए सामनेके थालको जरा अलग हटा दिया।

बन्दनाका चेहरा पहले तो मारे शर्मके सुर्ख हो उठा; फिर अपनेको सम्हालकर उसने कहा—“नहीं, यह बात मैं उससे पूछने नहीं जा सकती, आपको खानेकी ज़रूरत नहीं।”

विप्रदासने कहा—“पर मुश्किल तो यह है कि अपने घरमें मैं तुम्हें उपासी भी तो नहीं रख सकता।” यह कहते हुए उन्होंने खाना शुरू कर दिया।

बन्दनाने क्षण-भर चुप रहकर पूछा—“लेकिन इसके बाद क्या कीजिएगा ?”

“घर जाकर गोबर खाके प्रायश्चित्त करूँगा।”—कहकर वे हँस दिये। परन्तु उनके हँसनेपर भी बन्दना यह समझ न सकनेके कारण कि सच है या परिहास, स्तब्ध रह गई।

विप्रदासने कहा—“माके साथ तो समझौता कुछ न कुछ होगा ही, पर तुम्हारी जीजीकी सजासे जो छुटकारा पाऊँगा, वह उससे भी बड़ी बात होगी।”—इतना कहकर फिर हँसकर कहा, “क्यों, विश्वास नहीं हुआ ? अच्छा, पहले ब्याह हो जाने दो, तब तुम मुखर्जी साहबकी बात समझ जाओगी।”—कहते हुए वे भोजनका थाल बिलकुल सफा करके उठ खड़े हुए।

उधर डिनर तो रद्द हुई, पर अन्यान्य रुचिकर खाद्योंके आयोजनमें अवहेला नहीं की गई। लिहाजा, परितृप्तिके लिहाजसे कुछ भी कमी नहीं रही। परन्तु सब कामोंसे छुट्टी पाकर बन्दना जब बिस्तरपर लेटी तब सोचने लगी, उसके सम्बन्धमें विप्रदासका आचरण अप्रत्याशित भी नहीं था और शायद उसे तेज़ा भी नहीं कहा जा सकता; और न निकट-आत्मीय या अपना होनेपर भी जिस वजहसे अबतक उनसे घनिष्ठता और परिचय नहीं था वह भी इतने दिनोंकी पुरानी कहानी है कि उससे नये प्रकारसे आघात अनुभव करना बाहुल्य नहीं बल्कि विडम्बना है। बन्दनाके ढोक देते वक्त विप्रदासकी मा जो

छू जानेके विचारसे पीछे हट गई थी, उसके प्रतिवादमें बन्दना बगैर खाये-पीये वहाँसे चली आई है। एक शिक्षा-विहीन नारीके उद्धत धर्मज्ञानने उसे आघात न पहुँचाया हो सो बात नहीं, तथापि उस मूढ़ताको भी किसी दिन भूल जाना आसान है; किन्तु विप्रदासने जो कुछ किया उसके प्रतिवादमें उसे क्या करना उचित है, यह उसकी समझमें न आया। विप्रदासने उसके हाथका छुआ फल-मूल और मिठाई खाई तो सही, पर अपनी तबीयतसे नहीं, संकटमें पड़कर इस डरसे कि बलरामपुरकी तरह कहीं यहाँ भी वैसी बेहूदा बारदात न हो जाय। यह एक तरहसे पागलके हाथसे आत्म-रक्षा करनेका-सा हुआ। परन्तु यह अनाचार विप्रदाससे जो हो गया है सो घर जाकर वह प्रायश्चित्त करेगा—इस बातको न जाने कैसे उसने निश्चित सत्य समझ लिया और उससे उसकी आँखोंकी नींद जाती रही। और साथ ही यह बात भी उसने बहुत सोची कि बात ऐसी महत्वपूर्ण भी क्या है? हमारा उनका चलनेका मार्ग तो एक नहीं है,—संसारमें दोनोंके लिए ही काफी प्रशस्त स्थान पड़ा हुआ है। दैवसे संघर्ष अगर हो ही गया है तो हो जाने दो। इस प्रश्नके हलके लिए सामना करनेका आह्वान इस जीवनमें उसे कौन दे रहा है? इस तरहसे वह अपने आपको शान्त करनेकी बहुत कोशिश करती रही, किन्तु फिर भी इस आदमीकी नीरव अवस्थाको वह किसी भी तरह मनसे निकाल बाहर नहीं कर सकी।

सोचते-सोचते कब वह सो गई, उसे पता नहीं; किन्तु अस्वस्थ वाधाग्रस्त निद्रा अकस्मात् उचट गई। अभी तक भोर नहीं हुआ था, असमाप्त निद्राकी अवसन्न जड़तासे दोनों आँखें आच्छन्न हो रही थीं, किन्तु उससे बिस्तरपर भी पड़ा नहीं रहा गया, बाहर निकलकर बरामदेकी रेलिंगपर कोहनी टेककर खड़ी हो गई; देखा कि काला आकाश निशान्तके अन्धकारमें और भी गाढ़ा हो गया है, दूर बड़ी सड़कपर बीच-बीचमें गाड़ियोंकी अस्पष्ट आवाज सुनाई दे रही है, लोगोंका आना-जाना शुरू होनेमें अब भी कुछ देर है, साराका सारा मकान बिलकुल नीरव है। सहसा वह क्या देखती है कि दूसरी मंजिलपर माके पूजाके कमरेमें बत्ती जल रही है, और उसीके प्रकाशकी एक बारीक रेखा खिड़कीकी सैंधमेंसे निकलकर सामनेके खम्भेपर पड़ रही है। पहले तो उसे ऐसा लगा कि शायद नौकर बत्ती बुताना भूल गया है, पर दूसरे ही क्षण ख्याल अर्थात् शायद विप्रदास हैं और पूजा करने बैठे हैं।

उसका कुतूहल अदम्य हो उठा। उसने समझा कि सहसा भेंट हो जानेसे मारे शर्मके वह मर मिटेगी, इतनी रातमें कमरेमेंसे निकलकर नीचे आनेका कोई कारण हीं नहीं समझाया जा सकेगा; मगर फिर भी वह अपने आग्रहको न दबा सकी।

ध्यानकी बात बन्दनाने पुस्तकोंमें पढ़ी है, तसवीरोंमें देखी है, किन्तु इसके पहले कभी उसने अपनी आँखोंसे किसीको ध्यानस्थ नहीं देखा। निःशब्द रात्रिके निःसंग अंधकारमें वही दृश्य आज उसके दृष्टिगोचर हुआ। विप्रदासकी दोनों आँखें मुँदी हुई हैं, उसका बलिष्ठ दीर्घ शरीर आसनपर स्तब्ध होकर विराज रहा है, ऊपरकी बत्तीका प्रकाश उसके मुँह और ललाटपर पड़कर प्रतिफलित हो रहा है,—कोई खास बात नहीं थी। शायद और किसी वस्तु देखनेसे बन्दनाको हँसी आ जाती, किन्तु तन्द्रा-जड़ित आँखोंसे आज इस मूर्तिने उसे मुग्ध कर दिया। इस तरह वह कितनी देर तक खड़ी रही, उसं होश नहीं; किन्तु सहसा जब चैतन्य हुआ तब पूर्वका आकाश अरुण हो गया था, और नौकर-चाकर जागने ही वाले थे। तकदीर अच्छी थी जो इस बीचमें कोई जगकर उसके सामने नहीं आ पड़ा। अब वह नहीं टहरी, धीरे-धीरे ऊपर जाकर अपने कमरमें जा बिस्तरपर पड़ रही और पड़ते ही गहरी नींद आनेमें उसे ज़रा भी देर न लगी।

दरवाजेपर हाथ टोककर अन्नदाने पुकारा—“जीजी-बाई, बहुत दिन चढ़ गया है, उठोगी नहीं ?”

बन्दना व्यस्तताके साथ दरवाजा खोलकर बाहर आ खड़ी हुई; देखा कि वास्तवमें बहुत अचेर हो चुकी है, लज्जित होकर उसने पूछा—“वे सब शायद आज भी मेरी बाट देखते होंगे ? जरा सबेरे मुझे जगा क्यों नहीं दिया ? नहा-धोकर घंटेभरसे पहले तो तैयार न हो सकूँगी अन्नदा ?”

उसके विपन्न चेहरेकी तरफ देखकर अन्नदाने हँसते हुए कहा—“डरनेकी कोई बात नहीं जीजी-बाई, आज वे लोग सब्र नहीं कर सके, सब्र खतम कर चुके हैं,—अब जब तक चाहो नहाओ-धोओ, कोई टोकेगा नहीं।”

* सुनकर बन्दनाके जीमें जी आया। वह हँसमुख हो बोली—“सचमुच ही तुम लोगोंकी बहुत-सी बातें मुझे पसन्द नहीं, पर यह पसन्द है। सब दल बाँधके धनीका काँटा मिलाकर निगलने नहीं बैठ जाते, इससे बड़ा आराम मिलता है।”

अन्नदाने कहा—“पर सबेरे क्या आपको भूख नहीं लगती जीजी-बाई ?”

बन्दनाने कहा—“कभी नहीं। मगर फिर भी बचपनहीसे रोजमर्रा खाती-पीती रही हूँ। अच्छा, जाती हूँ, अब ढेर नहीं करूँगी।”—यह कहकर वह चली गई।

करीब दो घंटे बाद नीचे विप्रदाससे उसकी भेंट हुई। वे आफिसका काम खतम करके निकल रहे थे। वन्दनाने नमस्कार किया।

“चाय पी ली ?”

“हाँ।”

“वे लोग ठहर नहीं सके: लेकिन तुम्हें भी—”

बन्दना रोककर बीचहीमें बोल उठी—“ उसके लिए तो मैं शिकायत नहीं कर रही हूँ मुखर्जी साहब । ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ तुम्हारे मिजाजमें बहादुरी है, इस बातसे मैं इन्कार नहीं कर सकता, परन्तु दोनों ब्रह्मोंमें उतना ही फर्क है जितना चन्द्र और सूर्यमें । सुना है कि तुम जल्दी ही विलयत जा रही हो—शिधाको पक्की करनेके लिए । जाओ,—वापस आनेपर ख़बर देना, जाकर एक बार मूर्ति देख आऊँगा । ”

चन्दना यह सुनकर हँस दी, कुछ बोली नहीं।

विप्रदासने कहा—“ सुना है कि उस देशमें लोगोंको दिनके बारह बजे तक सोना पड़ता है। बड़ी कठोर साधना है। लेकिन तुम्हें उस साधनाके लिए वहाँ कष्ट नहीं करना पड़ेगा—इस देशसे ही तुमने उसकी साधना शुरू कर दी है। ”

चन्दना अन्नकी भी हंस दी, और उसी तरह चुपचाप विप्रदासके चेहरेकी तरफ देखती रही। निहायत सीधे-सादे ढंगका भद्र चेहरा है। हास्य-परिहासमें स्नेहशील, उन्हींमेंका एक आदमी। फिर भी, रात्रिकी नीरवतामें निर्जन कमरेकी उस स्तब्ध-मौन मूर्तिको कैसा रहस्यमय समझा था, उस बातको याद करके उसके कृतहलकी सीमा न रही।

बन्दनाने पूछा—“मुखर्जी साहब, ये लोग कहाँ हैं ? किसीको देग्य नहीं रही हैं ?”

विप्रदासने कहा—“ इसके मानी हैं कि वे हैं नहीं । अर्थात् साहजी साहब और सखीक बैरिस्टर साहब, तीनों जने हवड़ा, ~~वेस्त प्राय~~ ^{वेस्त प्राय} ~~UNIV~~ ^{UNIV} ~~सी~~ ^{सी} रिजर्व कराने । ”

बन्दनाने विस्मयके साथ पूछा—“सब्लीक बैरिस्टर साहब सीट रिजर्व करा सकते हैं, पर बापूजी क्यों कराने लगे ? उनकी छुट्टियाँ खतम होनेमें अभी तो आठ-दस दिन बाकी हैं। इसके सिवा मुझे बिना बताये ?”

विप्रदासने कहा—“कहनेका समय नहीं मिला, शायद वापस आकर बतायेंगे। सबरे बम्बईके ऑफिससे ज़रूरी तार आया था,—चेहरेका भाव देखकर तो यही मालूम होता था कि बगैर गये काम नहीं चल सकता।”

“लेकिन मैं ? इतनी जल्दी मैं क्यों जाने लगी ?”

विप्रदासने भी उसके स्वरमें स्वर मिलाकर कहा—“ज़रूर, तुम क्यों जाने लगीं ? मैं भी ठीक यही कहता हूँ।”

बन्दना कुछ समझ न सकनेके कारण जिज्ञासु दृष्टिसे मुँहकी ओर देखती रह गई।

विप्रदासने कहा—“बहनको एक तार कर दो न,—देवरको साथ लेकर यहाँ आ जायँ। तुम लोगोंकी पटरी भी खूब बैठ जायगी, और अतिथि-सत्कारके दायित्वसे छुटकारा पाकर मेरी भी जान बच जायगी।”

बन्दना डरते हुए व्यग्र स्वरसे पूछ उठी—“ऐसा क्या संभव हो सकता है मुखर्जी साहब ? मा क्या इस प्रस्तावपर कभी राजी हो सकती हैं ? मैं तो उन्हें देखे नहीं सुहाती।”

विप्रदासने कहा—“एक बार कोशिश कर देखो न। कहो तो तारका एक फार्म भेज दूँ,—क्या कहती हो ?”

बन्दना उत्सुक दृष्टिसे क्षण-भर चुपचाप देखती रही, फिर न जाने क्या सोचकर बोली—“रहने दीजिए मुखर्जी साहब,—यह मुझसे न होगा।”

“तो रहने दो।”

“मैं बल्कि पिताजीके साथ चली ही जाऊँ।”

“सो ही ठीक है।”—कहकर विप्रदास चले गये।

खानेकी टेबिलपर पिताके नाम आया हुआ टेलिग्राफ पड़ा हुआ था; बन्दनाने उसे खोलकर देखा कि सचमुच ही बंबई-आफिसका तार है। बहुत ज़रूरी,—देर नहीं की जा सकती।

बन्दना अपने कमरेमें जाकर फिर एक बार अपना सामान सजानेमें लग गई।

पिता अभी तक वापस नहीं आये थे। कई घण्टे बाद अन्नदाने कमरेमें आकर कहा—“आपके नाम एक तार आया है जीजी-बाई, यह लीजिए।”

“मेरे नाम टेलिग्राम ?”—आश्चर्यके साथ उसे हाथमें लेकर खोलके देखा कि बलरामपुरसे माने उसीको तार भेजा है। बड़े आग्रहके साथ अनुरोध किया है कि पिताके साथ वह हर्गिज वापस न जाय; बड़ी बहू द्विजदासके साथ रातकी गाड़ीसे कलकत्ते आ रही है।

११

रातकी गाड़ीसे जीजी आ रही हैं और उनके साथ है द्विजदास। बन्दना खुशीसे फूली नहीं समाई। जीजीकी सुसरालके अपने उस दिनके आचरणके लिए वह मन ही मन बड़ी लज्जित थी, परन्तु उसके प्रतिकारका कोई उपाय वह नहीं पा रही थी। आज अत्यन्त अनिच्छा होनेपर भी पिताके साथ उसे बम्बई लौट जाना पड़ता, किन्तु अकस्मात् एक बिन-सोचे रास्तेसे उस समस्याका हल हो गया। टेलिग्रामको बन्दनाने बहुत बार हिलाया-डुलाया, अन्नदाको पढ़कर सुनाया और उत्सुक भावसे पिताके आनेकी इसलिए राह देखने लगी कि उनके हाथमें यह छोटा-सा कागज रख दे। विप्रदास घरपर नहीं हैं, पुछवानेपर मालूम हुआ कि कुछ देर पहले वे बाहर चले गये हैं। यह व्यवस्था उन्हींने की है, लिहाजा उन्हें जतानेकी कोई ज़रूरत नहीं,—फिर भी एक बार कहना ही पड़ेगा। और उसके भीतरका हाल यह कि उनसे कहनेकी भाषा वह मन-ही-मन ढूँढ़ने लगी तो देखा कि कोई बात ही उसे पसन्द नहीं आ रही है। आनन्द प्रकट करनेका स्वाभाविक रास्ता मानो कभीका बन्द हो गया है। बहु-निन्दित जमींदार-श्रेणीका यह कड़ा और कट्टर आदमी उसे शुरूसे ही बुरा लगा था, अब भी वह उसके लिए काफी दुर्बोध्य है, फिर भी धीरे धीरे उसके मनमें एक परिवर्तन हो रहा था। वह देख रही थी कि इस आदमीका आचरण परिमित है, बातें यह कम करता है, व्यवहार भद्र और मीठा है, फिर भी न जाने कैसा एक व्यवधान उसके प्रत्येक पदक्षेपमें प्रतिक्षण अनुभूत होता है। सबके बीच रहता हुआ भी यह सबसे दूर रहता है। आश्रित लोग, दास-दासियाँ, कर्मचारी सभी इसपर श्रद्धा करते हैं, परन्तु उससे भी ज्यादा करते हैं भय। उन लोगोंके मनका भाव मानो कुछ इस तरहका है: बड़े बाबू अन्नदाता है, बड़े बाबू रक्षाकर्ता हैं, बड़े बाबू बुरे दिनोंके अवलम्बन हैं, किन्तु बड़े बाबू किसीके आत्मीय नहीं हैं। पितृ-वियोग होनेपर उनसे अपनी विपदा

कही जा सकती है, किन्तु पुत्रके विवाहोत्सवमें जीमनेका निमंत्रण नहीं दिया जा सकता। इस घनिष्ठ संबंधकी बात वे सोच ही नहीं सकते।

कल बन्दनाने रसोईघरकी दासीको सरल और कुछ निर्बोध समझकर बातों ही बातोंमें उससे इसका कारण दरियाफ्त करना चाहा था, मगर बहुत जिरह करनेके बाद भी वह सिर्फ़ इतनी ही बात निकाल सकी कि वह इसका कारण नहीं जानती, सब-कोई डरते हैं इसलिए वह भी डरती है, और अन्य किसीसे पूछने पर भी शायद यही उत्तर मिलता। मुखर्जी-परिवारमें मानों यह एक संक्रामक व्याधि है। उस दिन रेलमें, उस आकस्मिक छोटी-सी घटनाको आश्रय करके विप्रदासकी जो बलिष्ठ प्रकृति उसे क्षण-भरके लिए दिखाई दी थी, उसने तुरन्त ही अपनेको सम्पूर्ण रूपसे छिपा लिया था। गाड़ीमें उस दिन पास बैठकर हास्य-परिहासकी कितनी ही बातें हो गईं,—किन्तु आज मालूम ही नहीं होता कि वही आदमी इस मकानका बड़ा-बाबू है।

सहसा नीचेसे एक शोर उठा, किसी आदमीने दौड़कर खबर दी कि उसके पिता राय-साहब स्टेशनसे लैंगड़े होकर लौटे हैं। बन्दनाने जंगलेमेंसे झाँककर देखा कि पंजाबके वैरिस्टर और उनकी पत्नी उसके पिताकी दोनों बाँहें पकड़कर उन्हें मोटरसे नीचे उतार रहे हैं। उनके एक पैरका जूता-जुराब खुल हुआ है और उसपर दो-तीन भीगे-हुए रुमाल लिपटे हैं। प्लेटफॉर्मपर भीड़की धकापेलमें किसीने उनके पाँवपर एक भारी बकस पटक दिया, जिससे यह हाल हुआ। लोगोंने पकड़-पकड़ाके उन्हें ऊपर लाकर बिस्तरपर लिटा दिया,—दरवान डाक्टर बुलाने दौड़ा। डाक्टरने आकर ब्रेण्डेज बाँधा और दवा दी,—विशेष कोई बात नहीं, पर कुछ दिनके लिए घूमना-फिरना बन्द हो गया।

दूसरे दिन तीसरे पहर सती आ पहुँची। बन्दना कलरवके साथ उसकी अभ्यर्थना करनेके लिए नीचे पहुँची तो टिठकके खड़ी हो गई, देखा कि मोटरसे सिर्फ़ उसकी जीजी ही नहीं उतर रहीं, साथमें सासु भी हैं—दयामयी। बन्दनाका उच्छ्वसित आनन्द-कलरव बुझ-सा गया, वह जड़की तरह किसी प्रकार प्रणाम करके एक तरफ़ हटके खड़ी हो रही थी, पर दयामयीने पास आकर आज उसकी ठोड़ी छूकर चूमी और हँसते हुए पूछा—“अच्छी तरह तो हो बेटी ?”

बन्दनाने सिर हिलाके हामी भरी—“अच्छी हूँ मा, अम्मानक आप कैसे चली आई ?”

दयामयीने कहा—“आती नहीं तो क्या करती बताओ ? एक पगली लड़की नाराज होकर बगैर ग्वाये-पीये चली आई हैं, उसे शान्त करके जब तक घर वापस नहीं ले जाती तब तक मुझे शान्ति कहाँ बेटी ? ”

बन्दना कुण्ठित हँसी हँसके बोली—“कैसे जाना कि मैं नाराज होकर चली आई हूँ ? ”

दयामयीने कहा—“पहले लड़क-वाले हाँ, मेरी तरह उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करो, तब अपने आप ही समझ जाओगी कि लड़कीके नाराज होनेपर मा कैसे जान जाती है । ”

यह बात उन्होंने ऐसी मिठासके साथ कही कि बन्दनाने फिर कोई जवाब न देकर झुकके उनके पाँव धू लिये । फिर ग्यंठे होकर कहा—“बापूजीकी तबीयत खराब हो गई मा । ”

“तबीयत खराब ? क्यों क्या हुआ उन्हें ? ”

“पाँवमें चोट लग जानेसे कलसे खाटपर पड़े हैं, उठ नहीं सकत । ”—
यह कहते हुए उसने दुर्घटनाका कारण कह सुनाया ।

दयामयी व्यस्त हो उठी—“इलाजमें किसी तरहकी त्रुटि तो नहीं हुई ? चलो तो ज़रा, किस कमरेमें तुम्हारा पिताजी हैं, मुझे ले चलो वहाँ । पहले उन्हें देख आऊँ, पीछे दृसग काम । ”—इतना कहकर वे सतीके साथ बन्दनाके पीछे-पीछे ऊपर जाकर राय-साहबके कमरेमें पहुँचीं । आज उनके पाँवमें विशेष दर्द न था, इन लोगोंको देखकर बिस्तरपर उठ बैठे और नमस्कारादि किया । दयामयीने हाथ उठाकर प्रतिनमस्कार किया और हँसते हुए कहा—“ब्याड्जी सा'ब, टाँग कैसे तुड़वा ली, कहाँ घुस पड़े थे ? ”

सती और बन्दना दोनोंने दूसरी तरफ मुँह फेर लिये । राय-साहब निरीह आदमी ठहरे, प्रतिवादके स्वरमें समझाने लगे कि कहीं घुस पड़नेके कारण नहीं, बल्कि स्टेशनके प्लेटफॉर्मपर गिलाकसूर यह दुर्गति हुई है ।

दयामयीने हँसते हुए कहा—“जो होना था सो हो चुका, अब रहिए कुछ दिन लड़कियोंके जुम्मे घरमें बन्द । एक लड़कीसे शासन करते शायद न बने, इसलिए मैं दूसरीको भी घसीट लाई हूँ ब्याई सा'ब ! दोनों जनीं पक्की-दारीसे कुछ दिन सेवा करेंगी । ”

राय-साहबने इसीपर विश्वास कर लिया; और इस अनुग्रह और सहानुभूतिके लिए बहुत धन्यवाद दिया।

“फिर मिलूँगी,—जाऊँ अब ज़रा हाथ-पैर धोऊँ जाकर।”—कहकर दयामयी उनसे विदा होके अपने कमरेमें चली गई।

दूसरी मोटरमें आ पहुँचा द्विजदास और उसका भतीजा वासुदेव। सतीके लड़केको बन्दना उस दिन देख नहीं पाई थी। वह था पाठशालामें और उसकी छुट्टी होनेसे पहले ही बन्दना वहाँसे चली आई थी। दादीको छोड़के वासू रहता नहीं, इसीसे साथ आया है और उन्हींके साथ वह घर चला जायगा।

काकाके परिचय करा देनेपर वासुदेवने बन्दनाको पालागन किया। बन्दनाके पाँवोंमें जूते देखकर वह मन-ही-मन विस्मित तो हुआ, पर कुछ बोला नहीं। दायट नौ सालका लड़का है, पर जानता सब है।

बन्दनाने उसे स्नेहके साथ छातीसे लगा लिया और कहा—“मुझे पहचान नहीं सके बासू ?”

“पहचान तो लिया मौसीजी।”

“पर तुम तो तब पाँच-छै सालके थे बेटा,—याद कैसे रख सके ?”

“फिर भी याद है मौसीजी,—तुम्हें देखते ही पहचान गया था। हमारे यहाँसे तुम गुस्सा होकर चली आई, मैं पाठशालासे घर, लौटा, तो तुम वहाँ थी नहीं।”

“गुस्सा होके चली आई, यह तुमने किससे सुना ?”

“चाचाजी कह रहे थे दादीजीसे।”

बन्दनाने द्विजदासकी ओर देखकर पूछा—“गुस्सा होनेकी बात आपने भी कैसे जानी ?”

द्विजदासने कहा—“सिर्फ मैं ही नहीं, घर-भरके जानते हैं। और फिर, आपने छिपानेकी विशेष चेष्टा भी नहीं की।”

बन्दनाने कहा—“सब मेरे गुस्सा होनेकी ही बात जानते हैं, उसका कारण क्या, सो भी कोई जानता है ?”

द्विजदासने कहा—“सब न जानें, पर मैं जानता हूँ। राय-साहबको अलगा टेबिलपर बिमाया गया था इसलिए।”

बन्दनाने कहा—“कारण यदि यही हो, तो मेरे गुस्सा होनेको आप उचित समझते हैं ?”

द्विजदासने कहा—“हाँ, समझता हूँ। यद्यपि उन लोगोंके लिए भी और कोई उपाय नहीं था।”

“आप मेरे पिताजीके साथ बैठके खा सकते हैं ?

“खा सकता हूँ। पर भाई-साहबके मना कर देनेपर नहीं खा सकता।”

“नहीं खा सकते ? मगर क्या आप समझते हैं कि आपको मना करनेका अधिकार भाई साहबको है ?”

द्विजदासने कहा—यह उनकी बात है, मेरी नहीं। मेरे लिए भाई साहबकी आज्ञा न मानना, अनुचित है।

बन्दनाने कहा—“जिसे आप कर्तव्य समझते हैं क्या उसे पालन करनेका साहस आपमें नहीं है ?”

द्विजदास क्षण-भर चुप रहकर कहने लगा—“देखिए, यह ठीक साहस-असाहसका विषय नहीं। स्वभावतः मैं डरपोक आदमी नहीं हूँ, किन्तु भाई साहबके प्रकट निषेधकी अवज्ञा करनेकी बात मैं सोच नहीं सकता। बचपनमें पिताजीकी बहुतेरी बातें मैंने नहीं सुनीं, दण्ड भी न पाया हो सो बात नहीं, पर भाई-साहब अन्य प्रकृतिके आदमी हैं;—उनकी कोई कभी उपेक्षा नहीं करता।”

“उपेक्षा करनेसे क्या होता है ?”

“क्या होता है सो मैं नहीं जानता; पर हमारे परिवारमें यह प्रश्न आज तक नहीं उठा।”

बन्दनाने कहा—“जीजीकी चिट्ठियोंसे मुझे मालूम हुआ है कि देशके लिए आप बहुत-कुछ किया करते हैं, जो कि भाई साहबकी इच्छाके विरुद्ध होता है। सो सब कैसे करते हैं ?”

द्विजदासने कहा—“उनकी इच्छाके विरुद्ध होनेपर भी उनके निषेधके विरुद्ध नहीं है वह। यदि होता, तो फिर मुझसे नहीं होता।”

बन्दना दो तीन मिनट चुप रही, फिर बोली—“जीजीकी चिट्ठियोंपरसे जैसा आपको समझा था वैसे आप नहीं हैं। अब उन्हें मैं भरोसा दे सकती हूँ कि उन लोगोंके लिए डरकी कोई बात नहीं। आपके स्वदेश-सेवाके अभिनयसे मुखर्जी-खानदानकी विपुल सम्पत्तिमेंसे एक कण भी कभी नुकसान नहीं होनेका। इससे जीजी निश्चिन्त हो सकेंगी।”

द्विजदासने हँसते हुए कहा—“ जीजीका नुकसान होता रहे, यही चाहती हैं क्या आप ? ”

बन्दना संकटमें पड़कर बोली—“ वाह,—सो क्यों चाहने लगी ? मैं चाहती हूँ इन लोगोंका डर मिट जाय,—सब निर्भय हो जायें । ”

द्विजदासने कहा—“ आप चिन्ता न कीजिए, वे सब निर्भय ही हैं। कमसे कम भाई-साहबके संबंधमें यह बात बेधड़क कही जा सकती है कि वे डर-भय नामकी किसी चीजको आज तक जानते ही नहीं। यह उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है । ”

बन्दनाने हँसते हुए कहा —“ इसके मानी यह कि भय-वस्तुको सम्पूर्ण रूपसे आप ही लोगोंने बाँट लिया है, उनके हिस्सेमें वह ज़रा भी नहीं पड़ी, यही तो ? ”

मुनकर द्विजदास भी हँस दिया, बोला—“ है तो बहुत-कुछ ऐसा ही; मगर फिर भी आपको वंचित नहीं रखा जायगा, मामूली जो कुछ बचा-खुचा है, उतना आपको भी मिल जायगा। तीन-चार दिनसे एक साथ रह रही हैं, अभी तक उन्हें पहचान न मकीं ? ”

बन्दनाने कहा—“ नहीं। आपके जरिये उन्हें पहचानना मीख लूँगी, इसी उम्मीदमें हूँ । ”

द्विजदासने कहा—“ तो पहला पाठ लीजिए। इन जूतोंको खोल डालिए । ”

इतनेमें नौकरने आकर कहा—“ मा आप लोगोंको ऊपर बुला रही हैं । ”

चलते चलते बन्दनाने पूछा—“ अचानक मा क्यों चली आई ? ”

द्विजदासने कहा—“ पहली बात, कैलास-यात्राके बारेमें मामियोंसे सलाह करना; दूसरी बात, आपको बलरामपुर वापस ले जाना। देखिए, कहीं ‘ ना ’ न कह बैठिएगा । ”

बन्दनाने कहा—“ अच्छा, वही होगा । ”

द्विजदासने कहा—“ माके सामने आपको ‘ मिस राय ’ नहीं कहा जा सकेगा। आप मुझसे उमरमें छोटी हैं और भाभीकी छोटी बहन भी है, लिहाजा आपका मैं नाम लिया करूँगा। कहीं नाराज होकर फिर कोई दूसरा उपद्रव न कर बैठिएगा । ”

बन्दनाने हँसके कहा—“ नहीं, नाराज क्यों होने लगी। आप मेरा नाम लेकर पुकारा करें। पर मैं आपको क्या कहा करूँ ? ”

द्विजदासने कहा—“ मुझे दिज्जू बाबू ही कहा करें। पर भाई साहबको आपका

‘मुखर्जी-साहब’ कहना नहीं सोहता। आप उन्हें बड़े-बाबू या जीजा-साहब कहा कीजिए। यह हुआ आपका दूसरा पाठ।”

“क्यों ?”

द्विजदासने कहा—“तर्क करनेसे सीखा नहीं जा सकता, मान लेना पड़ता है। पाठ याद हो जानेपर इसका कारण बता दूँगा, पर अभी नहीं।”

बन्दनाने कहा—“इससे मुखर्जी-साहब लेकिन खुद हैरान होंगे !”

द्विजदासने कहा—“हां, उससे कोई नुकसान नहीं। पर मा और भाभी वगैरह बहुत खुश होंगी। वास्तवमें इसकी ज़रूरत है।”

“अच्छा, ऐसा ही होगा।”

जीनाके पक्क किनारे जूते उतारकर बन्दना दयामयीके कमरेमें जा पहुँची। पीछे-पीछे गये द्विजदास और वासुदेव। दयामयी ट्रंक खोलकर कुछ कर रही थीं और पास खड़ी हुई अन्नदा शायद घर-गृहस्थीका विवरण दे रही थी। दयामयीने बन्दनाकी तरफ मुँह उठाकर देखा और बिना किसी भूमिकाके स्वाभाविक स्वरमें पूछा—“तुम नहा-धो लीं बेटी ?”

“हाँ मा, नहा ली।”

“तो एक बार रसोईमें जाओ बेटी। इतने आदमियोंके लिए महाराजने क्या इन्तजाम किया होगा मालूम नहीं,—मैं भी संध्या-पूजा करके आ रही हूँ।”

बन्दना चुप हो उनकी तरफ देखती रही, पर उन्होंने उसकी तरफ देखा तक नहीं, बोली—“द्विजकी तबीयत ठीक नहीं है, सबेरे वह कुछ खा-पीकर नहीं आया है। उसका खाना जरा जल्दी हो जाना चाहिए बेटी।” इतना कहकर वे अन्नदाको साथ ले पूजा-घरकी ओर चल दीं, बन्दनाके उत्तरके लिए ठहरीं भी नहीं।

बन्दनाने द्विजदाससे पूछा—“क्या तबीयत खराब है ?”

द्विजदासने कहा—“मामूली जरा हारारत-सी है।”

“क्या खायेंगे इस वक्त ?”

द्विजदासने कहा—“साबू-बालीके सिवा जो भी कुछ दें, सो।”

बन्दनाने पूछा—“रसोईघरमें जाऊँ तो सही, पर पीछे कोई गड़बड़ी तो न होगी ?”

द्विजदासने कहा—“नहीं। अन्नदा-दीदीने शायद ऐसा ही परिचय दिया

है आपका। उनकी बात मा हरगिज नहीं टाल सकती,—बहुत चाहती हैं उन्हें। ‘म्लेच्छ’ का अपवाद शायद मिट गया।”

बन्दना कुछ देर चुप रही, फिर बोली—“बड़े आश्चर्यकी बात है।”

द्विजदासने स्वीकार करते हुए कहा—“हाँ। इस दरमियान आपने क्या किया है, अन्नदा-दीदीने मासे क्या क्या कहा है, मुझे नहीं मालूम; किन्तु आश्चर्य आपसे ज्यादा हुआ है खुद मुझको। लेकिन अब देर मत कीजिए, जाइए खाने-पीनेका इन्तजाम कीजिए। फिर भेंट होगी।” और, इसके बाद दोनों माके कमरेसे बाहर हो गये।

१२

कैलास-यात्राके विषयमें रास्तेकी दुर्गमताका हाल सुनकर मामियाँ पीछे हट गईं, स्वयं दयामयीको भी विशेष उत्साह नहीं रह गया; फिर भी, कलकत्तेमें उनके पॉच-छः दिन कट गये—दक्षिणेश्वर, कालीघाट और गंगास्नान करनेमें। कामके आदमीपर ही कामका भार पड़ता है; इस घरका प्रायः साराका सारा दायित्व आ पड़ा है बन्दनाके ऊपर। सती कुछ भी नहीं करती, सब कामोंमें बहनको आगे बढ़ा देती है, और खुद, सासुके साथ घूमती रहती है। फिर भी कहीं बाहर जानेको होती है तो उसे पुकारकर कहती है, “बन्दना, आ न बहन हम लोगोंके साथ; तेरे साथ रहनेसे किसीसे कोई बात पूछनी नहीं पड़ती।”

विप्रदासका भी आज-कल करते-करते घर जाना नहीं हो रहा है; मा बार-बार यही कह दिया करती हैं कि विपिनके चले जानेसे उन्हें घर कौन ले जायेगा? उस दिन शामको वे ‘विक्टोरिया-मेमोरियल’ देखके वापस आईं तो विप्रदासको बुलाकर उत्तेजनाके साथ उन्होंने कहा—“विपिन, तू कुछ भी क्यों न कह, पद्मी-लिखी लड़कियोंका दंग-ढाँचा ही अलहदा है।”

विप्रदास समझ गया कि यह बन्दनाकी बात है। उसने पूछा—“क्या हुआ मा?”

दयामयीने कहा—“क्या हुआ है? आज एक बड़े-भारी लाल-मुँहके सर्जण्टने आकर गाड़ी रोक दी। भाग्यसे बन्दना साथ थी, उसने अँग्रेजीमें दो-चार बातें समझाकर कहीं तो साहबने उसी वक्त गाड़ी छोड़ दी। नहीं तो क्या होता बता तो? या तो आसानीसे छोड़ता नहीं, नहीं तो थाने तक खींच ले

जाता,—कैसी मुसीबत होती ! तेरा नया पंजाबी ड्रायवर है बिलकुल जानवर।” विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ क्या किया था तुम लोगोंने,—गाड़ी किसीसे टकरा गई थी क्या ? ”

बन्दना आकर खड़ी हो गई। दयामयीने गरदन हिलाकर उसका समर्थन करते हुए उच्छ्वसित कण्ठसे कहा—“—तुम्हारी ही बात मैं विपिनसे कह रही थी बेटे;—पद्मी-लिखी लड़कियोंका दंग-ढाँचा ही कुछ और होता है। तुम साथ न रहती तो सबके सब कैसी आफतमें पड़ते ! पर सारा दोष था उसी मेमका। चलाना जानती नहीं, फिर भी चलायेगी। जानती नहीं—तो भी बहादुरी दिखायेगी। ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ पद्मी-लिखी लड़कियोंका दंग ही ऐसा होता है मा। मेम-साहब ज़रूर पद्मी-लिखी होगी। ”

मा और बन्दना दोनों ही हँस दीं। बन्दनाने कहा—“ मुखर्जी साहब, वह मेम-साहबका दोष था, पढ़ाई-लिखाईका नहीं। मा, मैं रसोईघरमें ज़रा चक्कर लगा आऊँ। कल द्विजूशबूके लिए मोटे आटेकी रोटी महाराजने ज़रा कढ़ी कर डाली थी, वे ठीकसे खा नहीं सके थे। ”—इतना कहकर वह चली गई।

दयामयी स्नेहकी दृष्टिसे उधरकी तरफ क्षण-भर देखती रहीं, फिर बोली—“ सब तरफ निगाह है। लड़की सिर्फ पद्मी-लिखी ही नहीं विपिन, ऐसा काम नहीं जो यह न जानती हो। और बातचीत भी उतनी ही मीठी। काम सौंपकर निश्चिन्त हो जाओ,—घर-गिरस्तीका फिर कुछ भी देखनेकी ज़रूरत नहीं। ”

विप्रदासने कहा—“ म्लेच्छ समझके अब घृणा तो नहीं करती मा ? ”

दयामयीने कहा—“ तेरी तो बही एक बात ! भला म्लेच्छ क्यों होने लगी,—उसकी मा एक बार विलायत गई थी, इससे लोगोंने मेम-साहब कहकर उसकी बदनामी उड़ा दी। नहीं तो हमारी ही तरह बंगाली-घरकी लड़की है। बन्दना जूते पहनती है,—सो पहनने दो। विदेशमें ऐसे तो सभी पहना करती हैं। लोगोंके सामने निकलती है,—सो इसमें ऐसा क्या दोष है ? बम्बईमें तो कूँघट निकालनेका रिवाज़ ही नहीं है,—इसीसे, बचपनसे जैसा सीखा है वैसा ही करती है। जैसी मेरी बहू है, वैसी ही यह है। बापके साथ चली जानेको कहती है—सो सुनके जी न जाने कैसा हो रहा है बेटा। ”

विप्रदासने कहा—“ न जाने कैसा जी करनेसे कैसे काम चलेगा मा ? बन्दना रहने तो आई नहीं,—आखिर दो-चार दिन बाद तो उसे जाना ही पड़ेगा। ”

दयामयीने कहा—“जायगी सही, पर छोड़नेको जी नहीं चाहता,—इच्छा होती है कि हमेशाके लिए पकड़के रख लूँ।”

विप्रदास क्षण-भर मौन रहकर बोला—“सो तो वास्तवमें होनेका नहीं मा,—पराई लड़कीको इतना मत जकड़ो। दो-चार दिनके लिए आई है, चली जायगी—यही अच्छा।” इतना कहकर वह कुछ अन्यमनस्ककी भाँति बाहर चला गया।

बात दयामयीको ज्यादा पसन्द नहीं आई। परन्तु वह तो सिर्फ़ क्षण-भरकी बात थी। बलरामपुर लौटनेका कोई नाम नहीं लेता, उनके दिन उत्सवकी भाँति आनन्दसे बीतने लगे,—हँसने-खेलने, गपशप करने और चारों तरफ घूमने-फिरनेमें इसके पहले सबके साथ हास्य-परिहास करनेमें दयामयीको इतना हल्ला होते किसीने भी नहीं देखा,—उनके अन्तःकरणमें मानो कहींपर एक आनन्दका सोता निरन्तर बह रहा है और वह उनकी उमर और प्रकृति-सिद्ध गाम्भीर्यको बीच-बीचमें बहा देना चाहता है। सतीके साथ आभास और इशारेमें अकसर उनकी क्या-क्या बातें होती रहती हैं उसका अर्थ सिर्फ़ सासु-बहू ही जानें; और भी एक जनी कुछ-कुछ अनुमान करती रहती है, वह है अन्नदा। सखीक बैरिस्टर साहब इतने दिन रहकर कल अपने घर चले गये हैं, उन दोनों ही का नाम वसन्त है, इस बातपर दयामयीने चलते वस्तु हँसीकी थी; और उनसे वचन ले लिया था कि वापस पंजाब जाते समय वे उनके घर होते जायेंगे—चाहे बलरामपुर हो चाहे कलकत्ता। राय साहबका पैर अच्छा हो गया है, आगामी सप्ताह वे बम्बई चले जायेंगे। दयामयीने खुद दरबारमें हाजिर होकर बन्दनाकी कुछ दिनके लिए छुट्टी मंजूर करा ली है; यानी बन्दना बम्बईके बदले बलरामपुर जाकर कमसे कम और भी एक महीने जीजीके पास रह सकेगी—इसकी व्यवस्था पक्की हो गई है।

मुखर्जियोंके मामले-मुकदमे हार्ड-कोर्टमें लगे ही रहते हैं। एक बड़े मुकदमेकी तारीख पास ही थी, इससे विप्रदासने तय किया कि इस बीचमें घर न जाकर उस तारीख तक ठहरा जाय और फिर सबको साथ लेकर एक साथ घर चला जाय। नाना कार्योंसे उसे द्रव्य बाहर ही बाहर रहना पड़ता है। आज था रेविवार; दयामयीने आकर हँसते हुए कहा—“एक मजेकी बात सुनी है विपिन ?”

विप्रदास अदालतके कागजात देख रहा था, कुरसी छोड़ उठके खड़ा हो गया और बोला—“कौनसी बात मा ?”

दयामयीने कहा—“द्विजूके किसी एक झगड़ेकी मीटिंग थी आज, पुलिस उसे होने नहीं देना चाहती थी और वे लोग उसे करना ही चाहते थे। लठालठी खिर-फुटौवल होता ही उसमें, मैं तो डरके मारे मरी—”

“वह गया है क्या वहाँ ?”

“नहीं। वही बात तो कहने आई हूँ तुझे। किसीकी भी मनाही सुन नहीं रहा था, यहाँ तक कि अपनी भाभीकी भी नहीं—अन्तमें बन्दनाकी बात उसे माननी पड़ी।”

खबर चाहे कितनी ही मजेदार क्यों न हो, उसने माकी सुपरिचित मर्यादामें मानो कहीं ज़रा चोट पहुँचाई। विप्रदासने, मन-ही-मन विस्मित होनेपर भी, मुँहसे कहा—“क्या सचमुच ?”

दयामयीने हँसकर जवाब दिया—“देखनेमें तो यही आया। कब न-जाने उन दोनोंमें शर्त हुई थी कि यहाँ रहकर एक जनी तो जूते नहीं पहनेगी, चाल-चलनमें इस घरके नियम नहीं तोड़ेगी और उसके बदले दूसरे एक जनेको उसका अनुरोध मानकर चलना पड़ेगा। बन्दनाने द्विजूके कमरेमें जाकर सिर्फ़ इतना कहा कि ‘द्विजुआबू, शर्त याद है न ? आप आज हरगिज नहीं जा सकेंगे’। द्विजुने मंजूर करते हुए कहा,—‘अच्छी बात है, न जाऊँगा’। सुनके मेरी तो चिन्ता दूर हो गई विपिन। क्या करके आता, किस फसादमें फँसता,—तुम्हारे बापूजी हैं नहीं, कितना डर-डरके उसे लेकर रहती हूँ सो कह नहीं सकती।”

विप्रदास चुप रहा। मा कहने लगीं—“पहले तो उसके स्कूल-कालेज था, पढ़ना-लिखना और इम्तिहान पास करना था, पर अब तो कुछ बला ही रही नहीं; हाथमें कोई काम न रहनेसे बाहरका कौन-सा संश्लष्ट कब घर तक खींच लाएगा, कोई नहीं कह सकता। इसीसे सोचा करती हूँ, अन्तमें जाकर इतने बड़े वंशका वह एक कलंक न बन बैठे।”

विप्रदासने हँसते हुए गरदन हिलाई, बोला—“नहीं मा, ऐसा डर मत करो। द्विजू कलंकका काम हरगिज नहीं करेगा।”

माने कहा—“मान लो, अगर अचानक जेल ही हो गई तो ? क्या उसकी आशंका नहीं है ?”

विप्रदासने कहा—“आशंका है, सो तो मालूम है। पर जेल जानेमें तो कलंक नहीं है मा, कलंक है काममें। वैसा काम वह नहीं करेगा। मान लो अगर मुझे ही कभी जेल हो जाय,—हो भी तो सकती है,—तब क्या मेरे लिए तुम लज्जित होगी मा ? कहोगी कि विपिन हमारे वंशका कलंक है ?”

इस बातने दयामयीके शूल-सा छेद दिया। क्या मालूम, कोई अन्तर्निहित इशारा तो नहीं है ? इस लड़केको उन्होंने छातीसे लगाकर इतना बड़ा किया है, और अच्छी तरह जानती थीं कि सत्यके लिए—धर्मके लिए ऐसा कोई काम नहीं जो विप्रदास न कर सकता हो। अन्यायका प्रतिवाद करनेमें किसी विपत्ति या किसी फलाफलकी वह परवाह नहीं करता। जब उसकी सिर्फ अठारह सालकी उमर थी तब एक मुसलमान परिवारका पक्ष लेकर वह अकेला ही ऐसा काण्ड कर बैठा था कि कैसे प्राण बचाकर वापस आ सका, यह आज तक दयामयीके लिए रहस्यका व्यापार बना हुआ है। बन्दनाके मुँहसे उस दिनकी रेलकी घटना सुनकर वे मारे शंकाके एक बारगी दंग रह गई थीं। द्विजूके लिए उन्हें उद्वेग रहता है, यह सच है; किन्तु भीतर-ही-भीतर बहुत ज्यादा डर है उन्हें इस बड़े लड़केके लिए। मन-ही-मन यही बात सोच रही थीं। विप्रदासने कहा—“क्यों मा, कलंककी दुश्चिन्ता तो मिट गई न ? जेल तो अचानक किसी दिन मुझे भी हो सकती है।”

दयामयी सहसा व्याकुल होकर बोल उठी—“बलैयाँ लूँ अपनेकी,—भगवान बचाएँ, ऐसी कुलच्छिनी बात न निकाल मुँहसे बेटा।” उसके बाद ही कहने लगीं—“जेल होगी तुझे और मेरे जीते-जी ? तो फिर इतनी उमर तक देवी-देवताओंकी पूजा क्या की मैंने ? इतनी सम्पत्ति है किसलिए ? सारीकी सारी जायदाद बेच दूँगी तो भी ऐसा नहीं होने दूँगी विपिन।”

विप्रदासने झुककर उनकी पदधूलि ली; दयामयीने सहसा उसे अपनी छातीके पास खींचकर कहा—“द्विजूका जो हो सो होता रहे, पर तू कभी मेरे आँखोंसे ओझल हुआ तो मैं गंगाजीमें डूब मरूँगी विपिन। यह मुझसे न सहा जायगा, सो जान रखना।—” कहते-कहते उनकी आँखोंसे कई बूँद आँसू टुलक पड़े।

“मा, इस वक्त क्या.....” कहते-कहते बन्दना वहाँ आ पहुँची। दयामयीने बेटेको छोड़कर आँखें पोंछ डाली; और बन्दनाके विस्मित चेहरेकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—“लड़केको बहुत दिनोंसे छातीसे नहीं लगाया था, इससे ज़रा साध हुई कि लगा लूँ।”

बन्दनाने कहा—“ लेकिन मैं कह दूँगी सबसे कि बूढ़ा लड़का है । ”

दयामयीने प्रतिवाद करते हुए कहा—“ सो कह देना, पर बूढ़ा शब्द मुँहसे न निकालना बेटी । अभी उस दिनकी तो बात ही है, मैं ब्याही हुई आई और मैं आँगनमें खड़ी ही हुई थी, मेरी फफुआ-सास तब जीती थी, विपिनको उन्होंने मेरी गोदमें डालते हुए कहा था,—‘यह लो, अपने बड़े बेटेको बहू । काम-काजकी भीड़में बहुत देरसे कुछ खाया-पीया नहीं है इसने,—पहले इसे खिला-पिलाकर सुला दो, उसके बाद दूसरा काम होता रहेगा ’ । उन्होंने शायद देखना चाहा होगा कि मुझसे हो सकेगा या नहीं,—मालूम नहीं हो सका या नहीं । ” —इतना कहकर वे फिर हँसने लगीं ।

बन्दनाने पूछा—“ आपने फिर क्या किया मा ? ”

दयामयीने कहा—“ घूँघटके भीतरसे देखा कि सोनेसे गढ़ा-हुआ ज्वीयत खिलौना है, बड़ी-बड़ी आँखोंसे आश्चर्यके साथ मेरी ओर देख रहा है । छातीसे चुपटाकर मैं वहाँसे भाग खड़ी हुई । आचार-अनुष्ठान होना तब भी बहुत-सा बाकी था, सब हैं-हैं करके शोर मचा उठे, पर मैंने एक न सुनी । कहाँ घर है, कहाँ द्वार, कुछ जानती न थी,—जो दासी साथ दौड़ी आई थी उसने घर दिखा दिया; उसीसे मैंने कहा, ‘ ला तो महरी, मेरे लल्लाकी दूधकी कटोरी, इसे बिना खिलाये-पिलाये मैं एक कदम भी नहीं हिलनेकी ’ । उस दिन मुहल्ले-पड़ोसकी औरतोंमेंसे किसीने कहा—बेहया है, किसीने कुछ, लेकिन मैंने किसीकी बात कान ही न धरी । मन ही मन कहा, कहने दं । जिस रतनको गोदमें पाया है उसे तो और कोई छीन नहीं सकता । मेरे उसी लड़केको तुम कहती हो कि बूढ़ा है ! ”

तीस साल पहलेकी घटना याद आ जानेसे आँसू और हँसीने मिलकर उनका चेहरा बन्दनाकी दृष्टिमें अपूर्व बना दिया, अकृत्रिम स्नेहका सुगभीर तात्पर्य इस तरह अनुभव करनेका सौभाग्य उसे और कभी नहीं हुआ । अभिभूत दृष्टिसे वह कुछ देर देखती रही और फिर अपनेको सँभालकर उसने हँसते-हँसते कहा—“ मा, आप अपने लड़कोंमेंसे किसे ज्यादा प्यार करती हैं, सच-सच बताइए ? ”

सुनकर दयामयी भी हँस दी, बोली—“ असम्भव सच होनेपर भी कहना नहीं चाहिए बेटी, शास्त्रोंमें उसकी मनाई है । ”

बन्दना बाहरकी लड़की है, हाल ही उससे परिचय हुआ है, उसके सामने इन सब पहलेकी बातोंकी आलोचना विप्रदासको अच्छी नहीं मालूम हो रही

थी; उसने कहा—“ बतानेसे भी तुम समझोगी नहीं बन्दना। तुम्हारी कालेजकी अँग्रेजी पोथियोंमें ये सब तत्त्व नहीं हैं। उनके साथ मिलाकर जाँच करने बैठोगी तो माकी बात तुम्हें बड़ी अद्भुत-सी मालूम देगी। इस आलोचनाको रहने दो। ”

सुनकर बन्दना खुश न हुई, बोली—“ अँग्रेजी पोथियाँ आपने भी तो कम नहीं पढ़ीं मुखर्जी-साहब, फिर आप कैसे समझ जाते हैं ? ”

विप्रदासने कहा—“ कौन कहता है कि माको मैं समझता हूँ बन्दना,—नहीं समझता। ये सब बातें सिर्फ मेरी माकी पोथीमें ही लिखी हैं,—उसकी भाषा अलग है, अक्षर अलग हैं, व्याकरण भी दूसरा है। उसे केवल मा ही समझती हैं—और कोई नहीं। ऐं मा, जो तुम कहने आई थीं सो तो अभी तक कहा ही नहीं ? ”

बन्दना समझ गई कि यह इशारा उसीके लिए है। बोली—“ मा, इस छोक़ क्या रसोई बनेगी, यही मैं पूछने आई थी,—अब मैं जाती हूँ, पर आप भी ज़रा जल्दी आना। सब भूल-भालकर फिर कहीं लड़केको गोदमें लिये न बैठी रहना। ”—इतना कहकर वह विप्रदासकी ओर ज़रा कटाक्ष करती हुई चली गई।

उसके चले जानेपर दयामयीके चेहरेपर दुश्चिन्ताकी छाया आ पड़ी, क्षण-भर इधर-उधर करके दुबिधाके स्वरमें उन्होंने कहा—“ विपिन, तू तो खूब घर्मात्मा है, जानता है पिता-माताको कभी धोखा न देना चाहिए—”

विप्रदास बीच ही में बोल उठा—“ मा, दुहाई है तुम्हारी, इस तरह तुम भूमिका मत बाँधो। क्या पूछना चाहती हो सो पूछो। ”

दयामयीने कहा—“ तैने अचानक आज यह बात क्यों कही कि तुझे भी जेल हो सकती है ? कैलास जानेका संकल्प अभी तक मैंने छोड़ा नहीं सो ठीक, पर अब तो मैं एक कदम भी नहीं हिल सकती विपिन। ”

विप्रदास हँस पड़ा, बोला—“ कैलास भेजनेको मैं भी उद्विग्न नहीं मा, पर उसका दोष अन्तमें मेरे ही सिर न मढ़ देना। मैंने तो सिर्फ एक दृष्टान्त दिया था,—द्विज्यूकी बात तुम्हें समझानी चाही थी कि सिर्फ जेल जानेसे ही किसीके वंशमें कलंक नहीं लग सकता। ”

दयामयीने सिर हिलाते हुए कहा—“ इन बातोंसे तू मुझे भुलावा नहीं दे सकता विपिन। इधर-उधरकी फालतू बात कहनेवाला तू नहीं है,—या तो कुछ

कर गुजरा है, या फिर कुछ करनेकी सोच रहा है। मुझे सच-सच बता दे।”

विप्रदासने कहा—“तुमसे मैं सच-सच ही कह रहा हूँ, मैंने कुछ नहीं किया। पर मनुष्यके मनमें कितने तरहके विचार आते-जाते हैं उनका क्या कोई ठीक-ठीक निर्देश दिया जा सकता है मा ?”

दयामयीने पूर्ववत् सिर हिलाते हुए कहा—“नहीं, यह बात भी नहीं। नहीं तो, बात क्या है जो आजकल तुझ देखते ही मेरा मन ऐसा सोचने लगता है ? तुझे मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया है, मेरे जीते-जी ही अन्तमें जाकर इतनी बड़ी नमकहरामी करेगा बेटा ?”—कहते-कहते उनकी दोनों आँखें भर आई।

विप्रदास बड़ी मुसीबतमें पड़ गया, बोला—“अमंगलकी कल्पना करके अगर तुम झूठमूठको डरने लग जाओ मा, तो मैं उसका क्या प्रतीकार कर सकता हूँ बताओ ? तुम तो जानती हो कि तुम्हारी बिना अनुमतिके मैं कभी कोई काम ही नहीं करता।”

दयामयीने कहा—“नहीं करता सो तो ठीक है, पर कल द्विजूको बुलाकर—यह क्यों कहा कि वह सब काम-काज सम्हाल ले ?”

“बड़ा हो गया, अब वह मुझे सहायता न देगा ?”

दयामयीने नाराज होकर कहा—“उसमें शक्ति ही कितनी है ? मुझे भुलावा मत दे विपिन,—तू आज इतना थक गया है कि तुझे सहायता देने-वाला चाहिए ? तेरे मनमें क्या है सो मुझे तू साफ-साफ बता दे।”

विप्रदास चुप रहा, उसने यह बात भी नहीं कही कि वे स्वयं ही उससे अभी अभी द्विजदासके भविष्यके सम्बन्धमें सोचनेको कह रही थीं। परन्तु इसका आभास उनकी बादकी बातमें मिला। वे कहने लगीं—“हमारी यह पुण्यकी गृहस्थी है, धर्मका परिवार है, यहाँ अनाचार नहीं सहन होगा। हमारा घर नियमोंकी कड़ियोंमें बँधा है। मैंने तेरा ब्याह सत्रह वर्षकी उमरमें किया था,—सो तेरी राय लेकर नहीं,—हम लोगोंकी साध हुई थी इसलिए। पर द्विजू कहता है, वह ब्याह नहीं करेगा। उसने एम० ए० पास किया है, उसमें बुराई-भलाई समझनेकी शक्ति आ गई है, उसपर किसीका ज़ोर नहीं चल सकता। वह अगर गृहस्थ नहीं होता तो उसपर मेरा विश्वास नहीं; वह मेरे ससुरकी सम्पत्तिमें हाथ न लगाने आवे।”

विप्रदासने पूछा—“द्विजूने कब कहा कि वह ब्याह न करेगा ?”

“ अक्सर तो कहा करता है । कहता है, ब्याह करनेवाले और भी बहुतसे आदमी हैं, वे करें । वह सिर्फ देशका काम करेगा । तुम लोग सोचते हो कि मैं यहाँ आकर खूब घूमा-फिरा करती हूँ, बड़े आनन्दमें हूँ । पर मैं आनन्दमें नहीं हूँ । इसपर तैने दे डाला जेलका दृष्टान्त—जैसे मुझे समझानेके लिए और कोई दृष्टान्त ही तेरे पास न था । एक दिन लेकिन तुझे पता लगा जायगा विपिन । ”

विप्रदासने कहा — “ उसकी भाभीको हुकम देनेको कहो न मा । ”

“ उसकी बात भी वह न सुनेगा । ”

“ सुनेगा मा, सुनेगा । समय होते ही सुनेगा । ”—फिर ज़रा हँसके बोला—

“ और अगर मुझे आज्ञा दो तो मैं भी उसके लिए पात्री ढूँद सकता हूँ । ”

इतनेमें बन्दना कमरेके अन्दर चली आई और शिकायतके स्वरमें बोली—

“ कहाँ, आई तो नहीं माँ ! मैं कबसे बैठी हूँ । ”

“ चलो बेटी, मैं आ रही हूँ । ”

विप्रदासने कहा—“ अपने अक्षय-बाबूकी उस लड़कीकी तुम्हें याद है मा ? अब वह बड़ी हो गई है । जैसा उसका रूप है, गुणमें भी वह वैसी ही है । हम लोगोंके लिए अपना ही घर है, कहो तो लड़की देख आऊँ, बातचीत करूँ ? मेरा तो विश्वास है द्विजूको वह नापसन्द न होगी । ”

“ नहीं नहीं, अभी रहने दे । ”—कहकर दयामयीने पल-भरके लिए एक बार बन्दनाके मुँहकी ओर देखा, फिर बोली—“ सतीकी इच्छा है,—नहीं,—नहीं विपिन, बहूसे पूछे बगैर तुझे अभी कुछ करने-धरनेकी ज़रूरत नहीं । ”

अब बन्दनाने बात की । अपनी सुन्दर और शान्त दृष्टिसे दोनोंकी तरफ देखकर बोली—“ इसमें हर्ज ही क्या है मा ? यहीं तो है कलकत्तेमें, चलिए न जीजीको लेकर, हम लोग चलके देख आवें । ”

सुनकर दयामयी मुसीबतमें पड़ गई; क्या जवाब दें, उन्हें कुछ ढूँदें न मिला ।

विप्रदासने कहा—“ यह अच्छा प्रस्ताव है मा । अक्षय बाबू स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मणपण्डित हैं, संस्कृतके अध्यापक हैं । लड़कीको उन्होंने स्कूल-कालेजमें पढ़ाकर तो पास नहीं करवाया, पर जतनसे उसे सिखाया बहुत-कुछ है । एक दिन उन लोगोंके यहाँ मेरा निमंत्रण था । उस दिन मैंने उस लड़कीसे बहुत-सी बातें गूछी थीं । ऐसा लगा कि बापने जो मनकी साधसे लड़कीका नाम रखा था मैत्रेयी, सो असार्थक नहीं हुआ । जाओ न मा, जाकर एक बार उसे देख

आओ,—तुम्हारी बड़ी बहू कमसे कम मनमें तो स्वीकार करेंगी कि उनके सिवा भी संसारमें रूपवती लड़कियाँ हैं । ”

माने हँसना चाहा, पर हँसी आई नहीं, और न मुँहसे कोई बात ही निकली । बन्दनाने फिरसे अनुरोध किया—“ चलिए न मा, हम लोग चल्के मैत्रेयीको देख आवें एक बार ! ज्यादा दूर भी तो नहीं है । ”

दयामयीने बन्दनाकी ओर गौरसे देखा, देखा कि उसके चेहरेपर पहलेका-सा वह लावण्य नहीं रहा—मानो किसी छायाने आकर उसे ढक दिया है । अब, इतनी देर बाद उन्हें जवाब ढूँढ़े मिल गया, बोली—“ नहीं बेटी, दूर ज्यादा नहीं है सो तो मालूम है, पर, उतना समय भी मेरे पास नहीं है । चलो, हम लोग चलें, इस छाक क्या क्या रसोई बनेगी सो देखें चल्के । ”—इतना कहकर बन्दनाका हाथ पकड़के वे कमरेस बाहर चली गई ।

१३

संध्या-चन्दन समाप्त करके विप्रदास अभी-अभी अपनी लाइब्रेरीमें आकर बैठा है । सवेरेकी डाकसे जो दस्तावेज वगैरह अदालती कागजात घरसे आये हैं उनका देखना ज़रूरी है । इतनेमें माने आकर कहा—“ क्यों रे विपिन, तू क्या हरएक बातको बढ़ाकर ही कह सकता है ? ”

विप्रदास झुरसीसे उठके खड़ा हो गया, बोला—“ कौन-सी बात मा ? ”

“ अक्षयबाबूकी लड़की मैत्रेयीको हम लोग देख आई हैं । ”

“ लड़की क्या बुरी है ? ”

दयामयी ज़रा इतस्ततः करके बोली—“ नहीं, बुरी मैं नहीं बताती,—साधारणतः ऐसी लड़की देखनेमें नहीं आती, यह ठीक है;—लेकिन तैने क्या समझकर मेरी बड़ी बहूसे उसकी तुलना की, बता तो ! खैर, बहूकी बात भी जाने दे, रूपमें क्या बन्दनाके आगे भी वह टिक सकती है ? ”

विप्रदास आश्चर्यमें आकर बोला—“ तब शायद तुम लोग और किसीको देख आई होगी । वह मैत्रेयी नहीं होगी । ”

दयामयीने हँसते हुए कहा—“ सो तो है ही । हम लोगोंके साथ साथ उसकी कितनी बातें हुई, कैसे-कैसे जतनसे उसने बहू वगैरहको खिलावा-पिलावा, —उसके बाद कितनी किताबें, कितनी पढ़ाई-लिखाईकी बातें बन्दनाके साथ

उसकी होती रहीं,—और तू कहता है कि हम लोग और किसीको देख आई हैं ! ”

विप्रदासने कहा—“ बन्दनाके सब सवालोंनेका वह शायद जवाब न दे सकी होगी, परन्तु मा, यह भी तो सोचो कि पढ़ाई-लिखाईमें बन्दनाने स्कूल-कॉलेजमें कितनी कितने पढ़के कितनी परीक्षाएँ पास की हैं; और उसने सिर्फ बापसे ही सब-कुछ सीखा है । ऐसा समझो जैसे मेरे साथ तुम्हारे छोटे बेटेमें फर्क है । ”

सुनके दयामयीकी दोनों आँखें मारे कौतुकके नाच उठीं, बोलीं—“ चुप रह विपिन, तू चुप रह । द्विजू बगलके कमरेमें है, सुन लेगा तो मारे शर्मके घर छोड़के भाग जायगा । ”—फिर ज़रा रुककर कहने लगीं—“ तेरी मा मूरख है सो क्या इतनी मूरख है कि कॉलेजमें पास करनेको ही चतुर्वर्ग मान बैठेगी ? सो बात नहीं है रे, बल्कि छोटे-छोटे शब्दोंमें मीठे तौरसे उसने बन्दनाकी सभी बातोंका जवाब दिया था । गाड़ीमें आते हुए बन्दनाने उसकी कितनी तारीफ की थी । पर मेरा कहना है कि हमारे जैसे गृहस्थ-घरानेमें ज़रूरत क्या है बेटा, इतनी पढ़ी-लिखीकी ? मेरी एक बहू जैसी आई है, दूसरी बैसी ही आ जावे तो काम चल जायगा । नहीं तो विद्याके घमण्डमें आकर यदि कहीं बड़े-बूढ़ोंको तुच्छ समझने लगे ! यह नहीं होनेका । ”

विप्रदास समझ गया कि जिरहका जवाब मासे बन नहीं रहा है, गड़बड़ हुआ जा रहा है; उसने हँसते हुए कहा—“ इसका डर मत करो मा । विद्या जिनमें कम होती है उन्हींमें ज्यादा घमण्ड होता है; उसने बापसे अगर सबमुच ही कुछ सीखा हो तो आचार-आचरणमें सबकी विनय करके ही चलेगी, यह तुम देख लेना । ”

इस युक्तिको मा अस्वीकार न कर सकीं, बोलीं—“ यह बात तेरी सच है, पर पहलेसे मालूम कैसे पड़े बता ? इसके सिवा हमारे गँवई-गाँवमें विद्याकी कमी-वेशी कोई जाँचने नहीं आता, पर बहू देखकर किसीने नाक चढ़ाकर कह दिया कि बूढ़ी-खुगाईके क्या आँखें न थीं जो ऐसी बहूके पास ऐसी बहू लाने खड़ी कर दी, तो वह मुझसे न सहा जायगा बेटा । ”

विप्रदास कुछ देर मौन रहकर बोला—“ पर अक्षयबाबूको तो कुछ-न-कुछ जवाब देना पड़ेगा मा । उस दिन उन्हें भरोसा दे आया था कि मेरी मा शायद नापसन्द न करेंगी ? ”

सुनके दयामयी चंचल हो उठीं, बोलीं—“ यह बात न कहता तो ठीक-

रहता विपिन । खैर, कुछ भी हो, बहूकी क्या राय है, पहले सुन लूँ, उसके बाद उन्हें कह देना जो कुछ कहना हो । ”

विप्रदासने कहा—“ अक्षयबाबू हमारे कोई ऐसे गैर नहीं हैं । इतने दिनोंसे परिचय नहीं था, इसीसे बात प्रकाशमें नहीं आई है । लेकिन मैं आत्मीयताके लिए भी नहीं कहता,—तुमने अपने और एक लड़केका जव ब्याह किया था, अपनी ही इच्छाके माफिक किया था, और किसीसे पृच्छने नहीं गई थीं । और इस ब्याहके लिए ही क्यों इतनी रायें जाननेकी ज़रूरत पड़ गई मा ? ”

दयामयी तर्कमें हारकर हँसती हुई बोली—“ पर अब जो बूढ़ी हो गई हूँ बेटा, अब और कितने दिन जीऊँगी बता ? फिर हमेशा जिसे साथ रहकर घर-गिरस्ती करनी है उसकी बगैर राय लिये कैसे ब्याह कर दूँ बेटा ? नहीं नहीं, दो-चार रोज़ तू हम लोगोंको विचारनेका समय दे । ”—इतना कहकर वे बाहर चली गई । बाहर जाकर दयामयी अपने कमरेकी ओर न जाकर समधीके कमरेकी तरफ़ चल दीं । इन कई दिनोंकी घनिष्ठतासे बन्दनाके पितासे उनका संकोच बहुत-कुछ दूर हो गया था । वे प्रायः खुद आ-आकर उनकी खबर ले जाया करती हैं । शाम बीत चुकी थी, संभ्या-पूजामें बैठ जानेसे फिर जल्दी उठ न सकेंगी—यह सोचकर वे उनके कमरेमें पहुँचीं—“ कैसी तबीयत है —”

उनकी बात पूरी न हो सकी । कमरेके एक तरफ़ एक सुदर्शन युवक बन्दनाके साथ बैठा हुआ गुपचुप बातें कर रहा था; निर्दोष अँग्रेजी पोशाक पहने हुए इस अपरिचित आदमीके सामने अचानक आ पड़नेसे दयामयी लज्जासे पीछे हटना ही चाहती थीं कि राय साहब कह उठे—“ कहाँ भागी जा रही हैं ब्यानजी, यह तो अपना सुधीर है । इसकी क्या शर्म ? इसे तो विप्रदास द्विजदासकी तरह अपने लड़कोंमें ही समझो । मेरी बीमारीकी खबर सुनके मद्राससे मिलने आया है । सुधीर, ये बन्दनाकी जीजीकी सासु हैं, विप्रदासकी मा, इन्हें प्रणाम करो । ”

सुधीरको प्रणाम करनेकी शायद आदत नहीं है, और इस पोशाकसे करना कठिन भी है; उसने पास आकर सिर झुकाके किसी कदर आज्ञाका पालन कर दिया ।

इस लड़केके साथ दयामयीका सन्तान-सम्बन्ध किस सूत्रसे हुआ, इस बातको समझानेके लिए राय साहब कहने लगे—“ इसके बाप और मैं दोनों एक साथ विलायतमें पढ़ते थे, तभीसे हम दोनोंमें खूब मित्रता हो गई थी । सुधीरने खुद

भी विलायतमें रहकर बहुत-सी डिग्रियों हासिल की हैं और अब मद्रासमें शिक्षा-विभागमें अच्छी नौकरी कर रहा है। बात हो गई है कि बन्दनाके साथ ब्याह हो जानेपर कुछ दिनकी छुट्टी लेकर उसके साथ यह फिर विलायत जायगा। वहाँ बन्दना चाहे तो कॉलेज में भरती हो जायगी, नहीं तो सिर्फ देखकर ही दोनों साथ लौट आयेंगे। देखो सुधीर, तुम लोग अगर इसी अगस्त-सेप्टेम्बरमें ही जानेकी तय कर सको तो मैं भी न-हो-तो तीनेक महीनेकी छुट्टी लेकर घूम आऊँगा। क्या कहती है री बिन्दो,—ठीक है न ?

बन्दनान वहींसे बैठे-बैठे धीरेसे कहा—“ ठीक क्यों न होगा बापूजी, तुम साथ रहोगे तो अच्छा ही रहेगा। ”

राय साहबने उत्साहके साथ कहा—“ उससे एक और सुभीता यह होगा कि तुम लोगोंके ब्याहके बाद भी महीने-भरका समय मिल जायगा, किसी तरहकी जल्दबाजी न करनी पड़ेगी। समझ गये न सुधीर ? ”

इसका सुधी और बन्दना दोनोंने सिर हिलाकर समर्थन किया। दयामयीने अब समझ लिया कि यह लड़का राय साहबका भावी जमाई है। अतएव, वह भी पुत्र-स्थानीय है। दयामयीके हृदयमें सहसा एक भारी उथल-पुथल हो गई: पर वे विप्रदासकी मा ठहरीं, बलरामपुरके ख्यातिप्राप्त मुखर्जी-परिवारकी स्वामिनी, उन्होंने अपनेको सम्हाल लिया; और उस लड़केसे पूछा—“ सुधीर, तुम्हारा देश कहाँ है ? ”

सुधीरने कहा—“ अभी तो बम्बई समाक्षिप्त। लेकिन फादरके मुँहसे सुना था कि दुर्गापुरक रहनेवाले थे हम लोग; पर अब वहाँ शायद हम लोगोंका कुछ भी नहीं है। ”

“ कौनसा दुर्गापुर ? वर्धमान जिलेका ? ”

सुधीरने कहा—“ हाँ, पिताजीसे तो ऐसा ही सुना है। कालनाके पास एक कोई छोटा-सा गाँव है, अब तो मुनते हैं कि मैलेरियासे वह बिलकुल ध्वंस हो चुका है। ”

दयामयीने क्षण-भर मौन रहकर पूछा—“ तुम्हारे पिताजीका नाम क्या है ? ”

सुधीरने कहा—“ पिताजीका नाम श्रीरामचन्द्र वसु है। ”

दयामयीने चौंक उठीं, बोलीं—“ तुम्हारे बापका नाम क्या था, हरिहर वसु ? ”

प्रश्न सुनकर राय साहब तक आश्चर्यान्वित हो गये, बोले—“ आप उन लोगोंको जानती हैं क्या ? ”

“ हाँ, जानती हूँ दुर्गापुरमें मेरी ननसाल है। बचपनमें मैं अपनी नानीके

पास ही रहा करती थी, इसलिए वहाँके प्रायः सबोंको पहचानती हूँ। इन लोगोंका घर हमारे मुहल्ले ही में था। पर, अभी तो बात करनेका समय नहीं सुधीर, संध्या-पूजाको देर हुई जा रही है। मगर कुछ खाये-पीये बगैर तुम चले मत जाना,—मैं अभी सब ठीक कर देनेके लिए कहे देती हूँ !”

सुधीर हँसता हुआ बोला —“ अब तक बाकी थोड़े ही है,—विप्रदास बाबूने पहलेही से काम निवटवा दिया है।”

“ निवटवा दिया ? अच्छा तो मैं अब जाती हूँ। ”—कहकर दयामयी वहाँसे चल दी। वन्दनाकी तरफ एक बार देखा तक नहीं, एक बात तक नहीं की।

दूसरे दिन सवेरे स्नान-आह्निक आदिसे निवटकर विप्रदास प्रतिदिनके अभ्यासके अनुसार माकी पदधूलि लेने उनके कमरेमें पहुँचा तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा; देखा कि उनकी जानकी तैयारी हो रही है, चीज-वस्तु बाँधी जा रही है।

“ यह क्या मा, कहीं जा रही हो क्या ? ”

दयामयीने कहा—“ तू मिला नहीं, इससे दत्तजीसे पुछवाकर मालूम किया कि साढ़े-नौ बजेकी गाड़ीसे जानेसे शामसे पहल ही घर पहुँचा जा सकता है। लेकिन परसों तेरे मुकदमेकी तागील है, तू तो संग जा नहीं सकेगा, द्विजूको कह दे, वह मुझे पहुँचा आयेगा। ”

विप्रदासने माके चेहरेकी तरफ देखा तो मालूम हुआ, उनकी आँखें लाल हो रही हैं, मुख सूख गया है; देखनेसे मालूम होता है कि उनके ऊपरसे मानो एक आँधी-सी बह गई है।

. विप्रदासने डरते-डरते पूछा—“ अचानक क्या कोई ज़रूरी काम आ पड़ा मा ? ”

माने कहा—“ दो दिनके लिए आई थी, आठ-दस दिन बीत गये; वहाँ ठाकुरजीकी सेवाका क्या हो रहा होगा—मालूम नहीं। पाँच-छै गायें ब्रियाने-वाली थीं, उनकी भी कुछ खबर नहीं मिली कि क्या हुआ। वासूकी पढ़ाई भी ब्रूट रही है,—इसलिए अब देर करना ठीक नहीं विपिन। ”

यह सच है कि ये सब बातें दयामयीके लिए तुच्छ न थीं, किन्तु फिर भी असल कारण उन्होंने प्रकट नहीं किया, विप्रदास इस बातको ताड़ गया और बोला—“ तो भी क्या आज बगैर गये काम न चलेगा मा ? ”

“ नहीं बेटा, तू मुझे रोके मत । द्विजूको साथ जानेके लिए कह दे; न हो तो और कोई हम लोगोंको पहुँचा आवे । ”

“ ऐसा ही होगा मा । ”—कहके विप्रदासने उनके पाँवोंकी घूल सिरसे लगाई और वहाँसे चला आया । अपने सोनेके कमरेमें आकर देखा कि सती अत्यन्त व्यस्त है और पास बैठी हुई अन्नदा ‘ सन्देश ’ फल-मूल और लड़केकी दूधकी घंटी (छोटी लुटिया) सम्हालकर टोकनीमें रख रही है ।

सती माथेपर घूँघट खींचकर उठके खड़ी हो गई । विप्रदासने कहा—
“ अन्नदा-दीदी, बात क्या है मालूम है ? ”

“ नहीं भइया, कुछ भी नहीं मालूम । सबरे माने मुझे बुलाकर कहा, बच्चे और बहूको खाने-पीनेकी तकलीफ न हो, वे नौ बजेकी गाड़ीसे घर जा रही हैं । ”

विप्रदासने सतीसे कारण पूछा तो उसने भी सिर हिलाकर जताया कि वह भी कुछ नहीं जानती ।

सुनकर विप्रदास स्तब्ध रह गया । अन्नदा न भी जानती हो, पर सासुकी बात बहू न जाने, इससे ज्यादा आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है ? वह कुछ क्षण चुपचाप खड़ा रहा, फिर नीचे चला गया; और उद्वेगके साथ यही सोचता हुआ गया कि यह तो माके बिलकुल स्वभाव-विरुद्ध बात है । क्या मालूम कि कौनसा गहरा दुःख उनके इस विपरीत आचरणके पीछे छिपा रह गया, जिसे किसी पर भी उन्होंने प्रकट नहीं किया ।

दयामयी तैयार होकर जब नीचे उतरती तब भी ट्रेन छूटनेमें बहुत वक्त था, परन्तु आज उन्हें किसी भी कदर देर नहीं मुहाती, मानो किसी तरह खाना हो जायें तो उनके जीमें जी आवे । सामने मोटर तैयार है, और एक दूसरी मोटरमें चीज-वस्तु लादकर नौकर वगैरह सवार हो चुके हैं; बैग हाथमें लिये विप्रदासको आते देख उन्होंने आश्चर्यके स्वरमें पूछा—“ द्विजू कहाँ है ? ”

विप्रदासने कहा—“ वह नहीं जायगा मा, मैं ही तुम्हें पहुँचाये आता हूँ । ”

“ क्यों, वह जानेको राजी नहीं हुआ शायद ? ”

विप्रदासने विनयके साथ कहा—“ उसके लिए ऐसी बात तुम्हें न कहनी चाहिए मा । तुम्हारे हुकम देनेपर कब उसने हुकम उदूली की है बताओ तो ? ”

“ तो हो क्या गया ? जाता क्यों नहीं ? ”

“ मैंने ही जानेको नहीं कहा मा । ”—इतना कहकर विप्रदास हँसता हुआ बोले—“ जिस बातके लिए तुम इतनी उद्विग्न हो उठी हो, अपने ठाकुरजी,

अपनी गायें,—उनकी सचमुच क्या हालत हुई, अपनी आँखोंसे देख आनेके लिए ही मैं जा रहा हूँ। और कोई बात नहीं मा। ”

और कोई समय होता तो शायद दयामयी खुद भी हँसकर लड़केसे कितनी ही बातें कहतीं, पर इस समय वे चुप रहीं।

अन्नदा बन्दनाको बुलाने गई थी; वह अभी अभी नहा-धोकर पिताके कमरेमें जा रही थी, अन्नदाके पुकारनेपर जल्दी जल्दी नीचे उतर आई और वहाँका दृश्य देखकर हतबुद्धि-सी हो गई। दयामयीने कहा—“ आज हमलोग घर जा रहे हैं बन्दना। ”

“ घर ? वहाँ क्या हुआ मा ? ”

“ नहीं, हुआ कुछ भी नहीं। पर दो दिनके लिए आई थी, दस-बारह दिन चीत गये, अब तो नहीं रहा जा सकता। तुम्हारे पिताजीके साथ भेंट न हो सकी—तब तक वे उठे नहीं थे—कह देना, मेरी, चुटि ब्याई सा'ब माफ कर दें। यहाँ द्विजू रह गया, अन्नदा है ही, तुम भी हो, देखना उनकी देख-रेखमें कोई कमी न रहे। चलो बहू, अब देर मत करो। ”—इतना कहकर बे गाड़ीमें जा बैठी।

सती पीछे थी, वह पास आकर बहनका हाथ पकड़ते ही रो दी, बोली—“ हम लोग जा रही हैं बन्दना। ”—इससे ज्यादा उसके मुँहसे और कुछ निकला ही नहीं। आँखें पोंछती हुई वह गाड़ीमें जा अपनी सासुके पास बैठ गई।

बन्दना स्तब्ध-विस्मयसे निर्वाक् खड़ी रह गई,—जैसे पत्थरकी मूर्ति हो,—अकस्मात् यह हो क्या गया !

वासुने आकर जब उसके पाँवोंके पास प्रणाम करके कहा—“ मैं जा रहा हूँ मौसीजी। ” तब उसे चैतन्य हुआ कि उसने तो अभी तक किसीको प्रणाम ही नहीं किया। झटपट वासुके माथेको चूमकर वह गाड़ीके दरवाजेके पास पहुँची और हाथ बढ़ाकर दयामयी और जीजीके पाँव छुए। सतीने चुपचाप उसकी ठोड़ी छुई और माने अस्फुट स्वरमें आशीर्वाद दिया, पर क्या कहा सो समझमें न आया। मोटर चल दी।

अन्नदाने कहा—“ चलो जीजी-बाई, ऊपर चलें। ”

उसके स्नेहपूर्ण स्वरसे बन्दना लज्जित हो उठी, क्षण-भरमें बिह्वलताको जोरसे झाड़-झुड़कर बोली—“ तुम जाओ अन्नदा, मैं रसोईका काम खतम करवाकर आती हूँ। ”—कहकर वह उसी तरफ चली गई।

कल शामको ही बात हुई थी कि राय साहबके बम्बई रवाना हो जानेपर सब एक साथ बलरामपुर चलेंगे। किन्तु आज उसका जिक्र तक नहीं, सुदूर भविष्यमें किसी दिनके लिए मौखिक आह्वान तक नहीं।

बंटे-भर बाद अपने हाथमें चायका सामान लेकर बन्दना अपने पिताके कमरेमें पहुँची तो वे अत्यन्त पश्चात्तापके साथ कहने लगे—“ब्यानजी वगैरह चली गई, सधरे उठ न सका बेटी, छि छि, न जाने उन्होंने क्या समझा होगा मनमें।”

बन्दनाने कहा—“बापूजी, अपन बम्बई कब चलेंगे ?”

पिताने कहा—“तुम्हारी तो बलरामपुर जानेकी बात थी बेटी, तुम नहीं गई ?”

लड़कीने कहा—“तुम्हें अकेला छोड़कर कैसे जाती बापूजी, तुम जो अभी तक अच्छे नहीं हो सके।”

“अच्छा तो मैं हो गया बेटी। ब्यानजीको वचन दिया था कि तुम जाओगी; न-हो-तो, जाते वक्त मैं तुम्हें बलरामपुर छोड़ता जाऊँगा। क्यों बेटी ?”

“नहीं बापूजी, सो नहीं होगा। तुम्हें इतनी दूरका सफर मैं अकेले नहीं करने दूँगी।”

लड़कीकी बात सुनकर पिता पुलकित चित्तसे उसका तिरस्कार करते हुए बोले—“चल पगली, मुलाकात होनेपर ब्यानजी तेरी हैंसी उड़ाती हुई कहेंगी, बूढ़े बापको यह लड़की अपनी आँखोंके ओझल नहीं कर सकती। छि-छि—”

“तुम घाय पीओ बापूजी, मैं अभी आई।”—कहकर बन्दना वहाँसे चल दी।

१४

संध्या बीत चली थी। बन्दनाने आके द्विजदासके कमरेके सामने खड़े होकर आवाज दी—“एक बार भीतर आ सकती हूँ द्विजू बाबू ?” भीतरसे जवाब आया—“आ सकती हैं। एक बार नहीं, शत सहस्र असंख्य बार आ सकती हैं।”

बन्दनाने दोनों किचनको हृद तक खोलकर भीतर प्रवेश किया और वह कमरेकी सबकी सब बस्तियाँ जलाकर खुले हुए जंगलेके पास एक कुरसी खींचकर बैठ गई।

द्विजदासने हाथकी किताब एक तरफ औंधी करके रख दी और वह बिस्तर-पर उठके बैठ गया; बोला—“ क्या हुक्म है ? ”

“ क्या पढ़ रहे थे ? ”

“ भूतोंकी कहानी । ”

“ अतिथि बड़े हैं या भूतोंकी कहानी ? ”

“ भूतोंकी कहानी । ”

बन्दना नाखुश होकर बोली—“ हर वक्त हँसी-मजाक अच्छी नहीं होती । हम लोग आपके घर ठहरे हुए हैं, इस बातका होश आपको है ? ”

द्विजदासने कहा—“ तुम लोग मेरे भाई-साहबके घर अतिथि हो, इस बातका ज्ञान मुझे पूर्णरूपसे है । और, घरके मालिक आदेश दे गये हैं कि तुम लोगोंकी खातिर-तबज्जहमें ज़रा भी खामी न रहने पावे । अवश्य ही खामी ज़रा भी न आने पाती, मगर इस भूतोंकी कहानीने मुझे आत्मविस्मृत कर दिया जिससे किंचित् शैथिल्य हो गया । लिहाजा अतिथिसे क्षमा चाहता हूँ । ”

“ सारा दिन मेरा कितनी मुशकिलसे बीता है—जानते हैं ? ”

“ ज़रूर जानता हूँ । ”

“ ज़रूर जानते हैं ? और फिर भी प्रतीकारके लिए आपने कोई उपाय न किया ? ”

द्विजदासने कहा—“ न करने का प्रथम कारण पहले ही निवेदन कर चुका हूँ । दूसरा कारण यह है कि उसका प्रतीकार करना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है । ”

“ क्यों ? ”

“ सो मुझे नहीं कहना चाहिए । ”

बन्दनाने पूछा—“ मा और जीजी इस तरह अचानक देश क्यों चली गईं ? ”

“ जीजी आपकी गई हैं प्रबल-पराक्रान्त सासुजीके आदेशानुसार; अन्यथा वे निर्दोष हैं । ”

“ लेकिन मा क्यों गईं ? ”

“ मा ही जानें । ”

“ आप नहीं जानते ? ”

द्विजदासने कहा—“ बिल्कुल ही नहीं जानता, कहना तो झूठ होगा । ”

कारण, भाभीने किंचित् अनुमान कर लिया है। और उसका यत्किंचित् अंश मुझे भी प्राप्त हुआ है।”

बन्दनाने कहा—“वह यत्किंचित् अंश ही आपको मुझे बताना पड़ेगा।”

द्विजदास क्षण-भर मौन रहकर बोला—“तब तो तुमने मुझे धर्म-संकटमें डाल दिया बन्दना। क्या उसे सुने बगैर तुम्हारा काम नहीं चल सकता?”

“नहीं, सो नहीं हो सकता, आपको कहना ही पड़ेगा।”

“न सुनो तो क्या है?”

बन्दनाने कहा—“देखिए द्विजू बाबू, हम लोगोंमें शर्त हुई थी कि इस घरमें आपकी सब बातें मैं सुनूँगी और मेरी सब बातें आप सुनेंगे। आप जानते हैं कि आपकी एक भी आज्ञा मैंने उल्लंघन नहीं की?—कहते-कहते उसकी आँखें भरी आ रही थीं कि उसने दूसरी ओर देखकर किसी तरह अपनेको सम्हाल लिया।

द्विजदासने व्यथित होकर कहा—“बिलकुल ही व्यर्थकी बात है, इसलिए मेरी कहनेकी इच्छा नहीं थी। मा तुमपर ही नाराज होकर चली गई हैं, यह ठीक है, मगर इसमें तुम्हारा ज़रा भी दोष नहीं। सारा दोष माका अपना ही है। भाभीका भी थोड़ा-सा है, कारण मुझे सन्देह है कि प्रत्यक्षमें न होनेपर भी परोक्षके षड्यंत्रमें उन्होंने भी साथ दिया है। परन्तु सबसे ज्यादा निरपराध है बेचारा द्विजदास खुद।”

बन्दना अधीर हो उठी, बोली—“बताइए न जल्दी, षड्यंत्र काहेका था?”

द्विजदासने कहा—“षड्यंत्र शब्दका प्रयोग शायद उचित न होगा। बात यह है कि माने मन-ही-मन किया था सोनेकी लंकाका बँटवारा; परन्तु हिसाबकी गलतीसे जब भाग्यमें आया शून्य, तब उन्हें सारे संसारपर गुस्सा आ गया। ‘गुस्सा’ भी ठीक नहीं कहा जा सकता, बल्कि आशा टूट जानेका क्षुब्ध-अभिमान कहना चाहिए।”

बन्दना चुपचाप उसकी तरफ देखती रही, द्विजदास कहने लगा—“तुम तो जानती ही हो कि एक दिन तुमपर उनकी जितनी ही ज्यादा नफरत या अरुचि थी, बादमें और एक दिन तुमपर उनका उतना ही गहरा स्नेह हो गया। रूप-गुणमें, विद्या-बुद्धिमें, काम-काज और दया-मायामें सिर्फ एक भाभीके सुिवा माकी दृष्टिमें कोई भी तुम्हारी जोड़का नहीं रहा। किसकी मजाल कि तुम्हें कोई स्नेह कह दे? उसी वक्त मा कमर बाँधकर प्रमाणित करने बैठ

जातीं कि इतनी बड़ी निष्ठावती ब्राह्मणतनया सारा भारतवर्ष ढूँढ़ मारनेपर भी न मिलेगी।”—कहते कहते द्विजदास अपने मज़ाकके आनन्दमें ठठाकर हँस उठा।

उसकी यह हँसी बन्दनाको बहुत ही बुरी लगी, फिर भी वह खुद भी हँस दी।

द्विजदासने कहा—“हँसती क्या हो बन्दना, असलमें यही तो हो गई सबके लिए आफत।”

बन्दनाने कहा—“इसमें आफतकी क्या बात है?”

द्विजदासने कहा—“तो ध्यानपूर्वक श्रवण करो। दयामयीके दो पुत्र हैं—ज्येष्ठ और कनिष्ठ। ज्येष्ठके प्रति जितनी अगाध आशा और भरोसा है, कनिष्ठके प्रति उतना ही अपरिसीम सन्देह और भय है। उनकी धारणा है कि अकर्मण्यतामें संसारमें कोई कनिष्ठका मुकाबिला नहीं कर सकता। पर, आखिर हैं तो मा ही, अपने गर्भमें धारण करके सन्तानको सहजमें जलाञ्जलि नहीं दे सकती थीं,—लिहाजा मन-ही-मन पुत्रकी सद्गतिका उपाय निर्धारण किया कि बन्दनाके कन्धोंपर उसे सुप्रतिष्ठित कर देनेके बाद वे संसार-मरुभूमिको निर्भयताके साथ पार कर सकेंगी। परन्तु विधाता विमुख थे, अकस्मात् कल सन्ध्या-समय पता लगा कि उसके कन्धोंपर स्थान नहीं है,—वह अत्यन्त छोटी नैया है,—भावार्थ यह कि दयामयीके समस्त संकल्प, समस्त स्वप्न-जालको ध्वस्त-विध्वस्त करके कोई सुधीरचन्द्र वहाँ पहलेसे ही समारूढ़ हैं। किसकी मजाल कि उन्हें टससे मस कर सके!”—कहते कहते वह फिर एक बार ठहाका मारके हँस पड़ा, जिससे सारा कमरा गूँज उठा।

बन्दना कुछ क्षण चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखती रही, फिर बोली—“आपके इस तरहकी विकट हँसी हँसनेका कारण क्या है? माको क्षोभ या निराशा हुई है इससे, या खुद आपको छुटकारा मिल गया इससे यह आनन्दोच्छ्वास है? कौन-सी बात है?”

द्विजदास मुसकराता हुआ बोला—“यद्यपि इनमेंसे कोई भी नहीं, फिर भी यह कुबूल करनेमें कोई हर्ज नहीं कि अकस्मात् पदस्खलनसे मा-जननीकी इस धराशायिनी मूर्तिको देखकर एक दर्शककी हैसियतसे मैंने किंचित् निर्मल आनन्द-रसका उपभोग किया है। मगर हाँ, हानि उनकी विशेष कुछ भी न

होगी अगर इससे उन्होंने कमसे कम इतनी नसीहत ली हो कि संसारमें बुद्धि नामकी चीज़ सिर्फ़ उनकी अपनी ही नहीं है, बल्कि उसपर औरोंका भी दावा हो सकता है। कारण, मुझे न सही, भाई साहबको भी अगर वे अपने षड्यंत्रका आभास दे देतीं तो, और कुछ हो या न हो, इस कर्मभोगसे उन्हें छुटकारा मिल सकता था। भाई साहब और मैं दोनों ही जानते थे कि तुम दूसरेकी वाग्दत्ता वधू हो, परस्पर प्रणय-जंजीरसे आबद्ध हो, लिहाजा उस व्यवस्थासे अन्यथा होना न सम्भव है और न वांछनीय ही।”

बन्दनाने पूछा—“आप लोगोंने किससे कब सुना ?”

द्विजदासने कहा—“तुम्हारे पिताजीसे। यहाँ हम लोगोंके आनेके दिन ही राय साहबने तुम लोगोंके प्रेम, वाग्दान और शीघ्र होनेवाले विवाहकी मनोश्रुति आलोचनासे हम दोनों भाइयोंके चारों कानोंमें सुधा-वर्षण किया था। नहीं नहीं, नाराज मत होओ बन्दना, पिताजी सीधे-सादे निरीह आदमी हैं, चित्तकी प्रफुल्लतामें उन्होंने इस सुसंवादको आत्मीयजनोंसे छिपा रखनेकी ज़रूरत ही नहीं महसूस की।”

बन्दनाने कुछ देर मौन रहकर पूछा—“इसीलिए क्या मुखर्जी साहबने मैत्रेयीको देखनेके लिए हम लोगोंको भेजा था ?”

द्विजदासने कहा—“सो मुझे ठीक नहीं मालूम। कारण भाई साहबके मनकी पूरी बात देवताओंके लिए भी अज्ञात है। सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि उनके मतसे मैत्रेयी देवी सर्वगुणसम्पन्ना कन्या हैं। बलरामपुरके धनी और महामाननीय मुखर्जी-परिवारके अयोग्या नहीं।

बन्दनाने पूछा—“मैत्रेयी देवीके सम्बन्धमें आपका क्या अभिमत है ?”

द्विजदासने कहा—“इस घरमें यह प्रश्न अवैध है। मैं तो तृतीय-पुरुष (यर्ड-परसन) हूँ। प्रथम और द्वितीय-पुरुष अर्थात् मा और भाई साहब किसी भी एक नारीके गलेमें मुझे बाँध देंगे और उसीके कण्ठलग्न होकर मैं परमानन्दसे लटकता रहूँगा। यही इस घरकी सनातन रीति है, इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता।”

उसके बोलनेके ढंगपर बन्दना हँस दी, बोली—“और मान लीजिए कि मैत्रेयीके बदले वे बन्दनाके गलेसे ही आपको बाँध दें तो ?”

द्विजदासने तकदीर हाथ ठोकते हुए कहा—“उसकी आशा वृथा है ! दुष्ट राहुने पूर्ण चन्द्रको भक्षण कर डाला है, न-जाने कहाँसे एक सुधीरचन्द्र

टपक पड़ा और उसने प्रासादमें आग लगा दी, द्विजदासकी स्वर्ण-लंका आँखोंके सामने देखते-देखते भस्म हो गई। इस प्रसंगको बन्द करो कल्याणि, इस अभागोका हृदय विदीर्ण हो जायगा।”

उसकी नाटकीय उक्तिसे बन्दना फिर एक बार हँस पड़ी, बोली—“सोनेकी लंकाका सबका सब तो भस्म हुआ नहीं था द्विज बाबू, अशोक कानन बच गया था। हृदय विदीर्ण नहीं भी हो सकता है।”

द्विजदासने सिर हिलाते हुए कहा—“यह वृथा आश्वासन है। श्रीराम-चन्द्रके भाग्यमें जोर था, किन्तु मैं तो सर्ववादिसम्मत हतभाग्य द्विजदास हूँ। मेरे दग्ध अट्टमें सारीकी सारी आशाएँ जलके खाक हो चुकी हैं,—कुछ भी बाकी नहीं बचा।”

“नहीं, नहीं हुई।”

“क्या नहीं हुई ?”

बन्दनाने जोर देकर कहा—“कोई भी आशा जलके खाक नहीं हुई। द्विजदास हतभाग्य है तो क्या, बन्दना तो हतभागिनी नहीं है। मेरे भाग्यको जलके खाक कर दे, ऐसी शक्ति सुधीरमें नहीं है। संसारमें किसीके भी नहीं है, आपकी माँके भी नहीं, भाई साहबके भी नहीं।”

उसके शान्त और दृढ़ कण्ठस्वरसे द्विजदास दंग होकर उसकी तरफ देखता रह गया।

“चुप रह गये जो ? मेरे मनकी बात आपको नहीं मालूम—आज क्या यही छल आप करना चाहते हैं ?”

“नहीं, मैं छल करना नहीं चाहता बन्दना। हाँ, इतना मानता हूँ कि अनुमान ज़रूर किया था, किन्तु सन्देह भी बहुत था।”

बन्दनाने कहा—“वह सन्देह अब भी बना रहे।”—फिर क्षण-भर उसके चेहरेकी ओर देखती रही और बोली—“मगर सन्देह मुझे तो न था। उस पहले दिनसे ही नहीं था। बलरामपुरसे गुस्सा होकर चली आई, आप अकेले ऊपरके कमरेमें खिड़कीके पास खड़े थे और वहींसे हाथ उठाकर इशारेसे मुझे विदा दी; सिर्फ एक छाकका परिचय था, तो भी क्या आप समझते हैं कि उसका अर्थ मेरे लिए अस्पष्ट रह गया है ?”

द्विजदास चुप हो उसकी ओर देख रहा है, यह देख बन्दनाने कहा—
“गया सन्देह ?”

द्विजदासने कहा—“ मालूम होता है और भी ज़रा खदेड़नेसे चला जायगा । पर मैं सोचता हूँ, मेरे संशय निवारणके लिए क्या यही पद्धति हमेशा काममें लाई जायगी ? ”

बन्दनाने कहा—“ हमेशाकी व्यवस्था पहले आये तो सही । लेकिन सब-कुछ जानकर भी जो इस तरहका अभिनय करता है उसे समझानेके लिए मेरे पास कोई रास्ता ही नहीं । ”

“ मगर वह मैं नहीं हूँ, मा है । उन्हें समझाओगी कैसे ? ”

बन्दनाने कहा—“ मा खुद ही समझ जायँगी । मुझे लड़कीकी तरह चाहती हैं । आज अचानक वे कितनी ही चंचल होके क्यों न चली गई हों, जो कुछ वे जानके गई हैं वह सच नहीं है—यह बात अगर माको ही नहीं समझा सकी तो मैं किस बातकी आशा रख सकती हूँ बताइए तो ? मुझे कुछ चिन्ता नहीं द्विजू बाबू, एक-न-एक दिन सारी बातें उन्हें मैं समझाऊँगी ही समझाऊँगी । ” —कहते कहते आखिरकी तरफ सहसा उसका गला रुँध आया और आँखोंमें आँसू भर आये ।

सच और झूठकी दुविधा द्विजदासकी मिट नहीं रही थी, परन्तु इन आँसुओं और कण्ठस्वरके निगूढ़ परिवर्तनने उसका सारा संशय मिटा दिया,—यह तो सिर्फ़ परिहास नहीं है । विस्मय और व्यथासे आलोड़ित होकर वह कह उठा—“ यह क्या बन्दना, तुम रो रही हो ? ”

प्रत्युत्तरमें बन्दना कुछ बोली नहीं, सिर्फ़ आँसू पोछकर दूसरी तरफ देखती रही ।

द्विजदास खुद भी बहुत देर तक चुप रहकर धीरे-धीरे बोला—“ सुधीरने तो तुम्हारे प्रति कोई भी दोष नहीं किया बन्दना । ”

बन्दनाने मुँह फेरकर इधर देखा नहीं, सिर्फ़ मुँहसे कहा—“ दोषका विचार किसलिए किया जाय बताइए तो ? मैं क्या उनके अपराधका बदला लेने बैठी हूँ ? ”

द्विजदासको इस बातका जवाब ढूँढ़े न मिला, उसने समझा कि यह प्रश्न बिल्कुल निरर्थक किया गया है । फिर कुछ देर चुप रहकर उसने कहा—“ मगर सुधीर तुम लोगोंके अपने समाजका है,—और इधर यह कि शिक्षा, संस्कार, अभ्यास, आचरण किसी भी बातमें मुखर्जी-परिवारके साथ तुम्हारा मेल नहीं खाता । तो फिर किसलिए तुम इन लोगोंके कारागारमें हमेशाके

लिए घुसने आओगी बन्दना ? मेरे लिए ? आज शायद न समझोगी, पर एक दिन जब तुम अपनी गलती समझ जाओगी तो तुम्हारे पश्चात्तापकी सीमा न रहेगी । मुझे तुमने किस रूपमें समझा है, नहीं जानता; मगर भाभी, मा, भाई साहब, हमारे देवता, हमारी अतिथिशाला, हमारे आत्मीय-स्वजन—आखिर इन्हींमेंसे मैं एक हूँ । इनसे अलग करके तो तुम कभी मुझे पा नहीं सकोगी । एक लम्बे समय तक यह सब क्या तुमसे सहा जायगा ? ”

बन्दनाने कहा—“ न सहे जानेपर आदमीके मरनेका रास्ता तो हमेशा खुला रहता है द्विजू बाबू, उसे तो कोई भी कैदखाना बन्द नहीं कर सकता । लेकिन मुझे भी आपने किस तरह समझा है, मैं नहीं जानती; परन्तु मेरी सासु, मेरी जेठानी, मेरे जेठ, हमारे ठाकुरजी और अतिथिशाला, हमारे आत्मीय-स्वजन-समाज—इन सबसे अलग करके अपने पतिको मैं एक दिनके लिए भी नहीं पाना चाहती । वे सबके साथ एक होकर ही मेरे बने रहें, बस । ”

द्विजदासने आश्चर्यमें आकर कहा—“ ये सब धारणाएँ तो तुम लोगोंके यहाँकी नहीं हैं, ये तुमने किससे सीखी बन्दना ? ”

बन्दनाने कहा —“ किसीने मुझे सिखाया नहीं द्विजू बाबू, पर माके पास रहकर, मुखर्जी साहबको देखकर—यह सब बातें मुझे अपने आप ही सूझी हैं । इस घरमें सब बातोंमें सबसे बड़ी मा हैं, उसके बाद मुखर्जी साहब, उसके बाद जीजी, उसके बाद आप;—यहाँ अन्नदाका भी एक विशेष स्थान है । इस घरमें अगर कभी जगह पा जाऊँ, तो इनसे छोटी होकर ही पा सकूँगी, परन्तु वह मुझे ज़रा भी असंगत न मालूम होगी । ”

यह सुनकर द्विजदासको जितना अच्छा मालूम हुआ, उतना ही उसका मन न्यथासे भर उठा । परन्तु बन्दनाके मनकी बात इस तरह जान लेना अन्याय है,—यह आलोचना बन्द हो जाना चाहिए । उसने जबरदस्ती अपनेको कठोर बनाते हुए कहा—“ मगर माको हमारी ये बातें जतानेसे कोई लाभ नहीं । यह मैं जानता हूँ कि वे तुम्हें लड़कीकी तरह चाहती हैं, इसीसे उनके मनकी यह प्रबल आशा थी कि तुम इस घरकी छोटी-बहू होओ; तुम दोनों बहनोंके हाथ अपने दोनों लड़कोंको सौंपकर वे चली जायँगी कैलास; लौटनेका अगर मौका न भी आये, तीर्थयात्राके उस दुर्गम मार्गमें ही अगर उनके लिए परलोककी पुकार आ पहुँचे,—तो भी इस बातको मनमें लिये हुए वे तब निश्चिन्त और निर्भय होकर यात्रा कर सकेंगी कि उनके बृहत् घर-संसारका दायित्व हस्तान्तरित

होनेमें किसी प्रकारका धोखा या पोल नहीं है। मगर वैसा होनेका नहीं, उनके मतसे वाग्दानका अर्थ ही है सम्प्रदान। प्रेम या प्यार करके जिसे सम्मति दे चुकी हो वही तुम्हारा पति है। विवाहके मंत्र नहीं पढ़े गये इसलिए उन्हें तुम त्याग भी सकती हो, पर उस सूने आसनपर दयामयीका लङ्का जाकर नहीं बैठ सकता।”

सुनकर मारे वेदनाके बन्दनाका चेहरा पीला पड़ गया, उसने पूछा—“मा क्या ये सब बातें कह गई हैं द्विजू बाबू ?”

द्विजदासने कहा—“कमसे कम, उनके ऐसा कहनेको मैं असम्भव नहीं समझता बन्दना। भाभी कह रही थीं कि माको सबसे ज्यादा इस बातकी चोट पहुँची है कि सुधीर अपमी जात-बिरादरीका नहीं है,—और तुम लोग जात-पाँत नहीं मानते। यह इतना बड़ा जबरदस्त भेद है कि इसे किसी भी तरह पाटकर एक नहीं किया जा सकता।”

“आपका भी क्या यही कहना है ?”

“मैं तो तृतीय-पुरुष हूँ बन्दना, मेरे कहने न-कहनेसे क्या बनता बिगड़ता है ?”

राय साहबके भोजनका समय हो चला था। बन्दना उठ खड़ी हुई कमरेसे बाहर निकलनेसे पहले उसने कहा—“बापूजीकी छुट्टी खतम हो चुकी, कल वे चले जायेंगे। मैं भी क्या उनके साथ चली जाऊँ द्विजू बाबू ?”

द्विजदासने कहा—“यह भी क्या मेरे कहनेकी बात है बन्दना ? अगर जाओ, तो मुझे गलत समझकर न चली जाना। तुम्हारे जानेके बाद, तुम्हारी तरफसे, मैं मासे तुम्हारी सारी बातें कहूँगा; शरमाऊँगा नहीं। उसके बाद, रह गई हमारी आजकी संध्याकी स्मृति, और रह गया हमारा वन्देमातरम्का मंत्र।”

बन्दनाने इसका कोई उत्तर नहीं दिया; चुपकेसे घरसे बाहर निकल आई।

१५

अपने कमरेमें लौट आनेके बाद बन्दनाको अत्यन्त ग्लानि होने लगी। उसने क्या नशा कर लिया है जो निर्लज्ज उपयाचिकाकी तरह वह इस तरह अपना दृश्य खोलकर अपनी सारी आत्म-मर्यादाको जलाञ्जलि दे आई ? उसपर मजा यह कि द्विजदास पुरुष होता हुआ भी जैसा रहस्यावृत था वैसा ही बना रहा।

उसके चेहरेके भावमें न आग्रह था, न उल्लास; उसने न तो आशा ही दी, न सान्त्वना। बल्कि, परिहासके बहाने बार-बार उसने यही बात जताई कि वह तृतीय-पुरुष है। उसकी इच्छा-अनिच्छा इस घरमें अवान्तर विषय है। सिर्फ़ क्या इतना ही? उसने माका नाम लेकर कहा, वाग्दानका अर्थ ही है सम्प्रदान; कहा, निरपराध सुधीरके सूने आसनपर दयामयीका लड़का जाकर नहीं बैठ सकता। परन्तु अपमानका घड़ा इससे भी नहीं भरा; उसकी आँखोंमें आँसू देखकर अन्तमें उसने दर्याद्र चित्तसे सिर्फ़ इतना ही वचन दिया कि बन्दनाकी यह बेहयापनकी कहानी वह मासे कह देगा।

और फिर, यहीं खतम थोड़े ही है। द्विजदासकी बातके जवाबमें उसने स्वतः प्रवृत्त होकर कहा था, इस परिवारमें जो भी जहाँ हैं उन सबसे छोटी होकर वह आना चाहती है! आगे उससे सोचा न गया, जहाँ बैठी थी वहीं स्तब्ध भावसे वैठी रही; और बार-बार उसे ऐसा लगने लगा कि वास्तवमें वह अत्यन्त छोटी हो गई है, इतनी छोटी कि आत्मघात करनेपर भी उस हीनताका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।

बाहरसे किसीने आकर कहा कि राय साहब चुला रहे हैं। उठके वह पिताके कमरेमें चली गई। वहाँ उसने बार-बार ज़िद करके पिताको राजी किया कि कल ही दोनों बम्बईके लिए रवाना हो जायेंगे। हालाँकि बात यह तय थी कि विप्रदासके लौट आनेपर रातकी गाड़ीसे वे रवाना होंगे। सहसा इस तरह चला जाना अच्छा न रहेगा, इसमें साहबको कोई सन्देह न था,—छुट्टी भी थी, आसानीसे रहा भी जा सकता था, मगर फिर भी, लड़कीके प्रस्तावपर उन्हें राजी होना पड़ा।

बिस्तरपर सोई तो बन्दनाकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। बादमें मालूम नहीं कब उसे नींद आगई। सबेरे उठकर उसने अपनी और पिताकी चीज़-वस्तु सब सम्हालकर तैयारियाँ कर लीं, फोन करके डब्बा रिजर्व करा लिया और बम्बईको तार भी भेज दिया। गाड़ी तो शामको जायगी, पर उसे किसी भी तरह देर नहीं सुहाती।

सबेरेके तब नौ बजे थे; अन्नदा कमरेके अन्दर पैर रखते ही ताज़ुबके साथ बोली—“यह क्या?”

बन्दना मैले कपड़ोंको सम्हालकर एक ट्रंकमें रख रही थी; बोली—“आज हम लोग जा रहे हैं।”

“ सो आजका दिन थोड़े ही है जीजी-बाई, कल जानेकी बात थी । ”

“ नहीं, आज ही जाना होगा । ”—कहकर बन्दना अपने काममें लगी ही रही, मुँह नहीं उठाया ।

अन्नदा एक क्षण चुप रहकर बोली—“ आप उठिए, मैं सम्हाले देती हूँ । आपको तकलीफ हो रही है । ”

“ तकलीफ देखनेकी ज़रूरत नहीं, अपने कामसे जाओ तुम । ”

इस घरके तमाम आदमियोंसे उसे घृणा-सी हो गई है ।

अन्नदाको कारण मालूम न होनेपर भी, इतना तो मालूम ही था कि कोई गुस्सा-गुस्सीकी बात चल रही है । अचानक मा चली गई; और आज बन्दना भी उसी तरह अकस्मात् चली जानेको तैयार है । परन्तु गुस्सेके बदले गुस्सा करना अन्नदाकी प्रकृति नहीं है, वह जितनी ही सहिष्णु है उतनी ही भद्र । कुछ देर चुप खड़ी रही, फिर कुण्ठित स्वरसे बोली—“ मेरा कसूर हो गया जीजी-बाई, आज ठीक वक्तपर मैं उठ न सकी । ”

बन्दनाने मुँह उठाकर उसकी ओर देखा, फिर बोली—“ मैं तो उसकी कैफियत नहीं चाहती अन्नदा, ज़रूरत हो तो अपने मालिकको देना । द्विजू बाबू अपने कमरेमें ही हैं, उनसे कहो जाकर । ”—इतना कहकर वह फिर अपने काममें लग गई । बन्दना अपने बापकी इकलौती सन्तान होनेसे ज़रा-कुछ ज्यादा लाड़-प्यारमें ही पली-पनपी है । सहनेकी शक्ति उसमें कम है । किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि कड़ुई बात कहनेकी कुशिक्षा भी उसे मिली हो; बल्कि यों कहना चाहिए कि शायद इतनी बड़ी कठोर बात भी उसने अपने जीवनमें कभी किसीसे नहीं कही । इसीलिए, बात कह चुकनेके बाद ही वह मन-ही-मन शायद लज्जित हो रही थी; इतनेमें अन्नदा ही सलज्ज मृदु-कण्ठसे कहने लगी—“ डाक्टर वगैरह चले गये थे, पौ फटनेको थी कि सोचा अब न सोऊँगी, सोई भी नहीं, पर दीवारका सहारा लेकर बैठते ही न मालूम कैसे आँख लग गई, कब दिन चढ़ गया कुछ पता ही न चला । आप मालिकोंकी बात कह रही हैं जीजीबाई, पर आप भी क्या मेरी मालिकिन नहीं हैं ? बत्ताइए भला, ऐसा कसूर क्या और कभी मुझसे हुआ है ? उठिए, मैं सब ठीक किये देती हूँ । ”

“ आखिरकी बात शायद बन्दनाके कानों तक नहीं पहुँची, अन्नदाके चेहरेकी तरफ देखते हुए उसने कहा—“ डॉक्टर वगैरह चले गये, मतलब ? ”

अन्नदाने कहा—“ कल रातको द्विजूकी तबीयत बहुत खराब हो गई थी । यहाँ आनेके दिनसे ही उसकी तबीयत खराब थी, पर उसे कुछ परवाह ही नहीं । कल मा बगैरहको पहुँचानेके लिए उसके साथ जानेकी बात चली तो उसने मुझे बुलाकर कहा कि ‘ भाई साहबसे कहकर मेरा जाना माफ़ करवा दो अनु-दीदी, पर माको मालूम न पड़ने पावे—आज मुझसे उठा नहीं जाता ऐसा कमजोर हो रहा हूँ ’ । ”

फिर कहने लगी—“ उसे मैंने अपनी गोदोंमें खिला-पिलाकर बड़ा किया है, उसकी सब बातें मुझसे ही होती हैं । मैं डर गई, बोली—‘ यह कैसी बात ? तबीयत खराब है तो छिपा क्यों रहे हो ? ’ उसका स्वभाव ही ठहरा—बातको हँसके उड़ा देना, फिर वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो । उसने वैसे ही हँसते हुए कहा—‘तुम उन लोगोंको विदा कर दो न दीदी, उसके बाद मैं अपने आप ही चंगा हो उठूँगा’ । मैंने सोचा, माके साथ उसकी बनती नहीं, उनके साथ वह कहीं जाना भी नहीं चाहता, इसलिए ऐसा बहाना कर रहा है । इससे मैंने फिर कुछ कहा नहीं । बड़े-बाबू सा’ब उन लोगोंको लेके चले गये । उसके बाद दिन-भर वह पड़ा सोता ही रहा, कुछ खाया-पीया भी नहीं । दोपहरको मैंने जाके पूछा, ‘ कैसी तबीयत है द्विजू ? ’ उसने कहा, ‘ अच्छी है । ’ मगर उसका चेहरा देखके ऐसा नहीं मालूम हुआ । मैंने डाक्टर बुलाना चाहा, पर उसने बुलाने ही न दिया; बोला, ‘ क्यों झूठमूठको भाई साहबको अर्थ-दण्ड दिलवाना चाहती हो दीदी, तुम्हारी इस फिजूल खर्चीसे गृहिणी नाराज होगी । ’ मासे ऐसा रूठा कि अब तक अभिमान बना ही हुआ है । दिन-भर खाया नहीं, बिस्तरपर ही पड़ा रहा । शामको जाके मैंने पूछा, ‘ द्विजू तबीयत अगर सचमुच खराब नहीं है तो सधेरेसे बिस्तरपर क्यों पड़ा है ? ’ उसने उसी तरह हँसते हुए कहा, ‘ अनु-दीदी, शास्त्रोंमें लिखा है कि सोते रहनेके समान पुण्य कार्य जगतमें दूसरा नहीं है, इससे कैवल्यकी प्राप्ति होती है । ज़रा-कुछ पार-लौकिक मंगलकी कोशिश कर रहा हूँ । तुम डरो मत । ’ सब बातोंमें उसको तो हँसी ही सूझा करती है, बातोंमें उससे कोई नहीं जीत सकता । मैं गुस्सा होकर चली तो आई, पर मनमें जो डर बैठा था वह दूर नहीं हुआ । उसने एक किताब उठाकर पढ़ना शुरू कर दिया । ”

अन्नदा ज़रा ठहरकर कहने लगी—“ रातके तब क़रीब बारह बजे होंगे, दरवाजेपर धक्के पड़ने लगे । मैंने पूछा, ‘ कौन है रे ? ’ बाहरसे जवाब आया—

‘मैं हूँ अनु-दीदी, दरवाजा खोलो ।’ इतनी रात पड़े द्विजू क्यों बुला रहा है, घबराहटके साथ चटसे उठके किन्नाड़ खोल बाहर पहुँची तो द्विजूकी वह कैसी मूर्ति ! आँखें भीतर घुस गई हैं, गलेका स्वर बैठ गया है, शरीर काँप रहा है,—मगर फिर भी हँस रहा है। बोला, ‘दीदी, तुम्हारी गोदमें खेला हूँ, इसीलिए तुमको जगाया है; अगर आँखें मूँदनी ही पड़ीं तो तुम्हारी ही गोदमें सिर रखके मूँदूँगा’ । ”—कहते-कहते अन्नदा झर-झर आँसू गिराती हुई रो उठी। उसका रोना मानो ठहरना ही नहीं चाहता, भीतरसे ऐसा ही अदम्य आवेग उमड़ रहा था।

अपनेको सम्हलनेमें उसे बहुत देर लगी। सम्हलनेके बाद फिर कहने लगी—“छातीसे लगाकर उसे कमरेमें ले गई, पर जैसी ही कै वैसा ही पेटमें दर्द,—ऐसा लगने लगा जैसे रात अब बीतेगी ही नहीं, न-जाने कब साँस बन्द हो जाय। डाक्टरोंको खबर दी गई, वे आ पहुँचे, सूईपर सूई देने लगे, गरम-पानीका सेक चलने लगा, नौकर-चाकर सब जागते रहे,—भोरके वक्त जाकर द्विजूको नींद आई और सो गया। डाक्टरोंने कहा कि अब डरनेकी कोई बात नहीं। लेकिन किस तरह रात बीती है जीजी-बाई, सोचती हूँ तो—दुःस्वप्न-सा मालूम होता है, सच्ची बात नहीं मालूम होती। ”—इतना कहकर अन्नदाने आँचलसे अपनी आँखें पोंछ डाली।

बन्दनाने आहिस्तेसे कहा—“मुझे कुछ भी नहीं मालूम, मुझे जगाया क्यों नहीं अन्नदा ? ”

अन्नदाने कहा—“सबेरे वह अशान्ति दूर हो गई, फिर तुम्हें परेशान नहीं किया जीजी-बाई। नहीं तो द्विजूने तो कहा था। ”

बन्दनाने इस प्रसंगको छोड़ दिया, बोली—“द्विजू बाबूकी इस वक्त तबीयत कैसी है ? ”

अन्नदाने कहा—“अच्छी है, सो रहा है। डाक्टर लोग कह गये हैं, शायद पहले शायद नींद न टूटेगी। बड़े-बाबू आ जायें तब जीमें जी आवे जीजी । ”

“उन्हें क्या खबर दी गई है ? ”

“नहीं। दत्तजीने कहा कि इसकी ज़रूरत नहीं, वे खुद ही आनेवाले हैं । ”

“बस कमरेमें आदमी हैं तो ”

“हाँ, दो आदमी बैठे हैं । ”

“ डाक्टर अब कब आयेंगे ? ”

“ शामसे पहले ही आयेंगे । कह गये हैं, अब डर नहीं है । ”

चिकित्सक-गण अभय दे गये हैं, इतनी ही बन्दनाके लिए सान्त्वना है । इसके सिवा, उसके लिए करनेको और है भी क्या !

बन्दनाने पिताको जाकर द्विजदासकी बीमारीका समाचार सुनाया, पर ज्यादा नहीं बोली । वे उतना ही सुनकर घबरा उठे, बोले—“ सो, सो,—मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ा ! ”

“ नहीं, हम लोगोंको जगाना किसीने उचित नहीं समझा । ”

“ मगर यह तो अच्छा नहीं हुआ । ”

बन्दना चुप रही; वे क्षण-भर बाद फिर बोले—“ टिकट लेने आदमी भेज दिया गया, डब्बा रिजर्व हो चुका,—हम लोगोंके जानेमें अब तो विघ्न होता दीखता है । ”

बन्दनाने कहा—“ क्यों, विघ्न क्यों होने लगा बापूजी, हम लोग रहकर ही कौन-सा उपकार कर सकेंगे ? ”

“ नहीं, उपकारकी बात नहीं, मगर फिर भी—”

• “ नहीं बापूजी, इस तरह बराबर देरी ही होती चली जा रही है, अब तुम अपना निश्चय मत बदलो । ”—इतना कहकर बन्दना उनके कमरेसे बाहर निकल आई ।

दिन ढलता जा रहा है । बन्दनाके कमरेमें आकर अन्नदा जमीनपर बैठ गई । उन लोगोंके खाना होनेमें अब भी लगभग दो घंटेकी देर है । बन्दनाने पूछा—“ द्विजू बाबूकी तबीयत ठीक है ? ”

“ हाँ जीजी-बाई, सो रहा है । ”

बन्दनाने कहा—“ जाते वक्त हम लोगोंकी किसीसे भेंट न हो सकी;—एक-की तो शायद तब तक नींद न खुलेगी और दूसरे जब यहाँ आके पहुँचेंगे तब तक हम लोग बहुत दूर पहुँच जायेंगे । ”

अन्नदाने उसकी बातका समर्थन करते हुए कहा—“ हाँ, बड़े बाबू तो क़रीब नौ बजे रात तक आयेंगे । ”—कुछ देर बाद फिर बोली—“ वे आ जायें तो सबकी जानमें जान आवे, सबोंका डर मिट जाय । ”

“ मगर डरकी तो कोई बात नहीं अन्नदा ? ”

अन्नदाने कहा—“ नहीं है सो तो ठीक है, पर बड़े बाबूका घरमें मौजूद

रहना कुछ और ही बात है जीजी-बाई । फिर और किसीपर जिम्मेदारी नहीं रहती, सब उन्हींपर रहती है । उनकी जैसी बुद्धि है वैसा ही विवेक, जैसी हिम्मत है वैसी ही गम्भीरता । सबको ऐसा लगाने लगता है जैसे बरगदके पेड़की छायामें बैठे हुए हैं । ”

वही पुरानी बात, वही विशेषणोंकी भरमार । अपने मालिकके विषयमें यह बात मानो इन लोगोंके नस-नसमें रम गई है । और कोई वक्त होता तो बन्दना चुटकी लेनेमें रियायत नहीं करती । लेकिन इस वक्त चुप रही । अन्नदा कहने लगी, “ और यह द्विज ! दोनों भाइयोंमें इतना फर्क जैसे कि जमीन और आसमान । ”

बन्दनाने आश्चर्यमें आकर पूछा—“ क्यों ? ”

अन्नदाने कहा—“ और नहीं तो क्या ? न तो जुम्मेदारी जानता है, न किसी झंझटमें फँसना चाहता है और न गम्भीरता ही है । उसकी भाभी कहती है कि वह तो शरद् ऋतुका बादल है, न उसमें बिजली है, न पानी है । उड़ता-उड़ता फिरता है, कोई भी बात चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसे वह हँस-खेलके ही उड़ा देगा । न तो संसारी है, न बैरागी, कितने किसान-कर्जदार उससे फारखती लिखवा ले गये हैं जिसका ठीक नहीं । ”

बन्दनाने कहा—“ मुखर्जी साहब नाराज नहीं होते ? ”

“ नहीं होते ? खूब होते हैं । खासकर मा तो और भी ज्यादा । पर तब वह दिखाई कहाँ देता है ? कुछ दिनके लिए ऐसा लापता हो जाता है कि भाभीजी रोना-पीटना शुरू कर देती हैं, तब फिर सब मिलके ढूँढ़-ढाँढ़के उसे पकड़ लाते हैं । पर, इसी तरह तो सारी जिन्दगी नहीं बिता सकता जीजी-बाई, उसका भी ब्याह होगा, बाल-बच्चे होंगे, तब तो फिर इस तरहकी कार्रवाई किसी दिन बिलकुल दिवालिया बना देगी । ”

बन्दनाने कहा—“ यह बात तुम लोग उनसे कहतीं क्यों नहीं ? ”

अन्नदाने कहा—“ बहुत कहा जा चुका है, पर वह कान ही नहीं देता । कह देता है, तुम लोगोंको फिकर क्यों है ? दिवालिया अगर हो भी जाऊँ तो भाभी तो मेरी दिवालिया नहीं होनेकी, तब सब मिलके उन्हींके सिर पड़ जायँगे । ”

बन्दनाने मुसकराते हुए कहा—“ जीजी क्या कहती हैं ? ”

अन्नदाने कहा—“ देवरपर उनके लाड़-प्यारकी हद नहीं । कहती हैं कि

हम लोग खायेंगे-पीयेंगे और द्विजू क्या उपासा रहा करेगा ? मेरी पाँच-सौ रुपये महीनेकी आमदनीको तो कोई मिटा नहीं सकता, हम लोगोंकी गरीबी चालसे उसीमें गुजर हो जायगी । बड़े बाबू अपने लाख-लाख रुपये लेकर सुखसे रहें, हम लोग उनसे माँगने न आयेंगे । ”

सुनके बन्दनाको ऐसा अच्छा लगा कि जिसकी हृद नहीं । जिसने कहा है वह है तो आग्निर उसीकी बहन । मन्ना यह कि जिस समाजमें, जिस आब-हवामें रहकर वह खुद इतनी बड़ी हुई है वहाँ ऐसी बात कोई नहीं कहता, शायद कोई सोचता भी न होगा । कहनेकी कभी ज़रूरत भी पड़ती होगी या नहीं, सो भी किसे मालूम ?

परन्तु अन्नदा जो कुछ कह रही थी वह मानो प्राचीन-कालकी कोई एक कहानी हो । इन लोगोंका संयुक्त परिवार है,—सिर्फ बाहरकी आकृतिमें ही नहीं, भीतरकी प्रकृतिमें भी । अन्नदा यहाँ सिर्फ दासी ही नहीं है, द्विजदासकी दीदी भी है । सिर्फ ज़बानी ही नहीं, उसकी सब बातें इसीके साथ होती हैं । अन्नदाका बाप इसी परिवारमें नौकरी करता हुआ मरा है, उसका लड़का भी यहीं पढ़ लिखकर जीविका अर्जन कर रहा है । अन्नदाको खाने-पहननेकी कमी नहीं, फिर भी मोह तोड़कर उससे जाते नहीं बनता । इस समृद्ध बड़े परिवारमें कितने ही कर्मचारियोंका ऐसा ही पुरुषानुक्रमिक इतिहास मिलता है । दयामयीका अनाशाकारी पुत्र द्विजदास भी कल कह रहा था कि उसकी मा, भाईसाहब, भाभी, गृहदेवता, अतिथिशाला इन सबके साथ उसका अस्तित्व है,—इनसे पृथक् करके बन्दना उसे कभी नहीं पा सकती । तब बन्दनाने यद्यपि उस बातसे इन्कार नहीं किया था, फिर भी उस बातका यथार्थ तात्पर्य आज उसकी समझमें आया ।

बात खतम नहीं हुई थी, बहुत-कुछ जाननेका आग्रह उसके अन्दर प्रबल हो उठा, पर बाधा आ गई । नौकरने आकर खबर दी कि राय-साहब जल्दी मचा रहे हैं, छै बज गये हैं । खाना होनेका समय घंटे-भरसे ज्यादा नहीं है । लिहाजा तैयार होनेके लिए बन्दनाको उठना पड़ेगा ।

यथासमय राय-साहब नीचे उतरे । उतरते-उतरते लड़कीका नाम लेकर पुकारा, बन्दनाने उसे सुन लिया । अन्याय चाहे जितना बढ़ा हो और अनिच्छा चाहे जितनी ही कठोर हो, उसे जाना ही पड़ेगा । बार-बार ज़िद करके जो ब्यवस्था खुद उसीने तय करवाई है उसमें रहोबदल नहीं हो सकता । जब वह घरसे

निकली तो उसके मनमें सबसे पहले यही बात आई कि भविष्यमें, जहाँ तक दृष्टि जाती है, किसी दिन किसी भी छलसे यहाँ फिर उसके आनेकी सम्भावना नहीं है, किन्तु फिर भी इस बातको वह कभी नहीं भूल सकेगी कि यह घर उसके अनेक सुख-स्वप्नोंसे परिपूर्ण रहा। उतरते समय बन्दना सीधा रास्ता छोड़कर द्विजदासके कमरेके सामनेवाले बरामदेसे, उसके कमरेके अन्दर एक निगाह फेरती हुई निकली, परन्तु जो खिड़की खुली हुई थी उसमेंसे द्विजदासको वह देख न सकी।

मोटरके पास दत्तजी खड़े थे; राय साहबने उन्हें अपने पास बुलाकर नौकरोंको इनाम देनेके लिए उनके हाथमें कुछ रुपये दिये; और अचानक जाना पड़ रहा है इसके लिए खेद प्रकट करते हुए अनुरोध किया कि द्विजदासकी खबर उन्हें तुरंत ही मिलनी चाहिए, नहीं तो बड़ी चिन्ता रहेगी।

गाड़ीमें बैठनेके पहले बन्दनाने अन्नदाको पास बुलाकर कहा—“द्विजू बाबूकी तुम दीदी हो, उन्हें तुमने गोदमें खिलाया है,—यह अँगूठी तुम द्विजू बाबूकी आनेवाली नई बहूको भेंट कर देना, कह देना वह इसे जरूर पहने।”—इतना कहकर उसने अँगूठी खोलकर उसके हाथमें दे दी और तुरत ही पिताके पास जा बैठी।

मोटर चल दी। इधर-उधर खड़े हुए कुछ नौकर-चाकर और दत्तजीने उन्हें नमस्कार किया।

बन्दना बगैर इरादेके यों ही ऊपरको देख उठी; परन्तु आज वहाँ, और-एक दिनकी भाँति सबके अगोचर खड़ा हुआ, चुपचाप संकेतसे विदा देनेके लिए द्विजदास नहीं था। आज वह बीमार है,—आज वह नींदमें बेहोश पड़ा सो रहा है।

१६

दयामयीके आचरणमें बन्दनाके प्रति जो प्रच्छन्न लाञ्छना और अन्यक्त तिरस्कारका भाव था, सतीको वह गहराई तक चुभ गया था। परन्तु सासुसे कुछ कहना-सुनना उसके लिए सहज नहीं था; इसलिए उसने एक चिट्ठी लिखकर बन्दनाको देनेके लिए पतिको अपने कमरेमें बुलवा भेजा। दोपहरकी गाड़ीसे विप्रदास कलकत्ते खाना होगा। इसी समय दयामयी उसके कमरेमें आ पहुँची।

ऐसा वे कभी नहीं करतीं;—इससे लड़का और बहू दोनोंको ही आश्चर्य हुआ। सती माथेपर घूँघट खींचकर कमरेसे बाहर निकलने लगी तो दयामयीने कहा—“नहीं बहू, मत जाओ। तुम्हारी गैर मौजूदगीमें तुम्हारी बहनकी निन्दा नहीं करूँगी, ज़रा ठहर जाओ। विपिन, जानता है तू, क्यों मैं इतनी जल्दी यहाँ चली आई ?”

विप्रदासने कहा—“ठीक नहीं जानता मा, पर कहीं कुछ गड़बड़ी हुई ज़रूर है, इतना अन्दाजा मैंने लगा लिया है।”

माने कहा—“गड़बड़ी हुई नहीं है, पर हो सकती थी। उससे मा दुर्गाने मुझे बचा दिया। कल ब्याईजी सा'ब बम्बई चले जायेंगे, और उसके बाद तय था कि बन्दना यहाँ आकर कुछ दिन रहेगी अपनी बहनके पास। लेकिन लड़कीके माथेमें अगर जरा भी बुद्धि होगी तो अब वह यहाँ नहीं आना चाहेगी, बापके साथ सीधी बम्बई चली जायगी। अगर न जाय तो तू जानेके लिए कह देना। बहू, तुम मनमें दुःख मत करना बेटी, ऐसी बहनको बचवास दिया जा सकता है, पर घरमें लाकर नहीं रखा जा सकता।”

विप्रदास निरुत्तर हो उनकी ओर देखता रहा, उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। दयामयी कहने लगीं—“मेरी फूटी तकदीर कि उसे प्यार करने लगी थी। सोचा था कि वह अपनी ही एक है। उसके चाल-चलनमें गलती है—सोचा कि यह सब स्कूल-कालेजमें पढ़नेका फल है, चाँदपर जैसे उड़ते हुए बादल आते और हट जाते हैं वैसे ही ये गलतियाँ भी समय पाकर हट जायेंगी। कुछ भी हो, आगिर है तो सतीकी ही बहन। मगर उसने अपने तँई पति चुन लिया कायस्थोंके घरसे, कौन जानता था विपिन, कि ब्राह्मणके घर जन्म लेकर उन लोगोंका इतना अधःपतन हो गया है।”

विप्रदासने कहा—“वस इतनी-सी बात है ! मगर वे लोग तो जात-पाँत मानते नहीं, और यह बात तुम सुन भी चुकी थीं मा।”

दयामयीने कहा—“सुना था, पर आँखोंसे देखा नहीं था, और शायद मनसे समझ भी न पाई थी। नानीकी कहानी जैसी गप्प मालूम हुई थी। पर आँखोंसे देखनेसे किसीपर किसीकी इतनी अरुचि और घृणा भी हो सकती है, सो मुझे सचमुच ही नहीं मालूम था बेटा।”—कहते कहते मारे घृणाके मानो उन्हें फुरफुरी-सी आ गई, बोलीं—“मरने दो। जो मनमें आवे सो करे, कौनसी मेरी वह—पर अब मेरे घर नहीं—”

विप्रदासको चुप देखकर कह उठीं—“जवाब क्यों नहीं देता ?”

“जवाब तो तुमने माँगा नहीं मा। हुकम दिया है कि बन्दना अब इस घरमें न आने पावे,—सो ही होगा।”

उसकी बात सुनकर दयामयी दुविधामें पड़ गई, बोलीं—“हुकम क्या बेजा दे रही हूँ तू समझता है ?”

“समझता क्यों नहीं मा। बन्दनाने अन्याय कुछ नहीं किया, सामाजिक आचार-व्यवहारमें उनका हमारा मेल नहीं खाता, वे लोग जात-पाँत नहीं मानते, यह जानकर ही तुमने उसे बुलाया था और प्यार भी करने लगी थीं। तुम्हारे मनमें शायद आशा थी कि ये लोग मुँहसे ही कहा करते हैं, अमल नहीं करते,—यही तुमसे गलती हो गई, और इसीलिए सदमा भी उठाया।”

दयामयीने कहा—“शायद यह बात ठीक हो, पर उसके ब्याहकी बात सुनके क्या तुझे घृणा नहीं होती विपिन ? बता तू क्या कहना चाहता है ?”

विप्रदास मुसकराता हुआ बोला—“उसका ब्याह अभी हुआ नहीं है, और हो जानेपर भी मुझे गुस्सा न करना चाहिए। बल्कि यह सोचकर मैं श्रद्धा ही करूँगा कि उन लोगोंका विश्वास सत्य कार्यमेंसे प्रकाशित हुआ, उन लोगोंने किसीको धोखा नहीं दिया। मगर मा, कलकत्तेमें मैंने बहूतोंको देखा है जो कोरी बातोंके घटाटोपमें मानते कुछ भी नहीं, जाति-भेदपर भी विश्वास नहीं करते, पुराने ग़यालातवालोंको जली-कट्टी भी खूब सुनाया करते हैं; पर काम पड़ते ही मालूम नहीं कहाँ जा छुपते हैं, उनका पता ही नहीं लगता। उन्हीं लोगोंपर मेरी सबसे ज्यादा अश्रद्धा है। नाराज मत होना मा, तुम्हारा द्विजू उसी जातका है।”

सुनकर दयामयी भीतरसे नाखुश हुई हों, सो बात नहीं। द्विजदासके सम्बन्धमें बोलीं—“वह इसी तरहका धोखेबाज है ! लेकिन बेटा, तू अगर बन्दनासे घृणा नहीं करता तो फिर उसका छुआ खाता क्यों नहीं ? उसको रसोईमें भेज दिया करती थी तो तैने वहाँ खाना ही छोड़ दिया, मेरे चौकेमें खाने लगी। और कोई समझे या न समझे, क्या मैं भी नहीं समझ सकती ?”

विप्रदासने कहा—“तुम न समझोगी तो ‘मा’ क्यों हुई थीं ? लेकिन मैं तो वास्तवमें जाति-भेद मानता हूँ, मैं तो उसके हाथका छुआ नहीं खा-पी

सकता। जिस दिन नहीं मानूँगा उस दिन सबके सामने ही उसके हाथका खाऊँगा, ज़रा भी दुबका चोरी नहीं करनेका।”

दयामयीने कहा—“तुझे नहीं मालूम विपिन, कि किस तरह मैं उससे यह बात छिपाये-ढके रखती थी। वह यहाँ आये या न आये, पर ध्यान रखना यह बात उसे मालूम न होनी चाहिए। उसे बड़ा सदमा पहुँचेगा। तुझे वह बड़ी श्रद्धा करती है।”—उनके अन्तिम शब्द मानो सहसा स्नेह-रससे भीग उठे।

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“मुझे वह श्रद्धा करती है कि नहीं, सो तो मैं नहीं जानता, पर उसका लुआ मैं नहीं खाता,—यह बात वह जानती है।”

“ऐसी अभिमानिनी लड़की यह जानकर भी तुझपर इतनी श्रद्धा-भक्ति रखती है ? इसके मानी ?”

“श्रद्धा-भक्तिकी बात तुम्हीं लोग जानती होगी मा, मैं तो सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि वह अत्यन्त बुद्धिमती है और तुम लोगोंका तमाम छिपाना-ढकना वहाँ व्यर्थ हो गया है।”

दयामयी क्षण-भर चुप रहकर न जाने क्या सोचने लगीं, फिर बोलीं—“इसीसे शायद वह इतनी जिद किया करती थी ?”

“काहेकी जिद मा ?”

दयामयी कहने लगीं—“मैं विधवा ठहरी, मेरा तो काम सिर्फ़ नमक-भातसे ही चल सकता था, पर वह एक भी न सुनती थी। बाज़ारसे नित नई-नई तरकारियाँ लाती, अपने हाथसे बनार-बुनूरकर ब्राह्मनी-बुआको देती और सबकी सब तरकारियाँ जवरदस्ती बनवाकर तब उनका पीछा छोड़ती। मालूम होता है वह जानती थी कि सामने जाकर जिसे नहीं दिया जा सकता उसे दूसरेके हाथसे रिश्कत पहुँचानी पड़ती है। क्यों, खाकर क्या तू समझ नहीं सका था कि वैसी रसोई बुआ कभी सात-जनममें भी नहीं बना सकती थी ?”

विप्रदासने हँसते हुए जवाब दिया—“नहीं मा, इतना खयाल नहीं किया मैंने। सिर्फ़ बीच-बीचमें ज़रा सन्देह होता था कि तुम्हारे अतिथियोंके उस रसोईघरके भारी आयोजनमेंसे शायद कुछ हमारी इस रसोईमें भी छिटककर आ पड़ता है। पर वह दैवकृत नहीं था, किसी व्यक्तिका इच्छाकृत था, यह आनन्दकी बात है। लेकिन अब तुम अपना आखिरी हुकम कह दो मा। गाड़ीका वक्त हो चला, मुझे अभी भागना है स्टेशन,—बन्दनाका निर्मंत्रण तुमने रहने दिया या वापस ले लिया, सो बताओ ?”

दयामयीने सतीकी तरफ लक्ष्य करके कहा—“ तुम्हारी क्या राय है बहू ? ”

लड़कपनमें सती सासुके सामने पतिके साथ बात करती थी, पर अब नहीं करती । अकसर इधर-उधर चली जाती है या निरुत्तर रहती है । परन्तु आज उसने बात की, धीरेसे बोली—“ रहने दो मा, अब उसे यहाँ लानेकी ज़रूरत नहीं । ”

जवाब सुनकर सासु खुश न हो सकीं । उनकी अभिलाषा कुछ और थी, साथ ही मुँहसे वे कह भी नहीं सकती थीं । उन्होंने कहा—“ बड़े-आदमीकी लड़कीको अभिमान हो गया क्या ? ”

“ नहीं मा, अभिमान नहीं; लेकिन जिस तरह हम लोग चले आये हैं, उसपर फिर उसे यहाँ नहीं बुलाया जा सकता । ”

“ क्यों नहीं बुलाया जा सकता बहू ? एक कोई बेजा बात हो भी गई, तो क्या उसका फिर सुधार नहीं हो सकता ? ”

“ नहीं हो सकता, यह मैं नहीं कहती; पर ज़रूरत क्या है मा ? पहले भी उसने कई दफे यहाँ आना चाहा था, पर हम लोग राजी नहीं हो सके थे; और अब भी वैसी ही सब बाधाएँ मौजूद हैं । वह रसोईमें घुसती थी इसलिए इन्होंने उस रसोईसे ही ताल्लुक छोड़ दिया था,—क्या ज़रूरत है उसे यहाँ बुलानेकी ? ”

विप्रदासने कहा—“ यह शिकायत उसके करनेकी है, तुम्हारी नहीं । ”—और वह हँस दिया, बोला—“ फिर भी बन्दनाकी मुझपर प्रचण्ड श्रद्धा-भक्ति है, खुद मा इस बातकी गवाह हैं । ”

सतीने मुँह उठाकर देखा, शायद अकस्मात् यह भूल गई कि सामु सामने ही खड़ी हैं, बोली—“ सिर्फ़ मा ही क्यों, मैं भी गवाह हूँ । स्त्रियाँ जब श्रद्धा-भक्ति करने लगती हैं तब शिकायत नहीं किया करतीं । देवी-देवता भी कम कष्ट नहीं देते, फिर भी पूजा बन्द नहीं करती, कहती हैं—‘दुःख उन्होंने अच्छेके लिए ही दिया है।’ फिर साससे कहने लगी—“तुम्हें भी मा, बन्दना कम श्रद्धा-भक्ति नहीं करती, तुमसे भी उसका कम प्रेम नहीं है । तुम्हारी धारणा है कि तुम्हारी रसोईमें वह खाने-पीनेकी तैयारियाँ सिर्फ़ इनके लिए कर दिया करती थी । यह बात नहीं, तुम दोनोंके लिए ही वह करती थी,—तुम दोनोंको वह बहुत चाहती है । उसपर तुमने रसोई-घरका भार सौंपा था, सबको खिलाने-पिलानेका काम; पर तुम्हारी अवहेलना करके वह दूसरोंको पुलाव-कलिया नहीं खिल

सकती थी मा, फिर तो सभीको नमक-भात ही खाना पड़ता । मगर अब फिर क्यों उसे इस खींचतानमें डालना चाहती हो मा ? हम लोगोंने जैसी आस की थी वह जाती रही,—वह अब लौटाई नहीं जा सकती । ”—इतना कहकर सती जल्दीसे वहाँसे चल दी ।

अत्यन्त आश्चर्यसे दोनोंके दोनों हतबुद्धि-से हो गये । सतीके स्वभावको देखते हुए ऐसी उक्ति और ऐसा आचरण इतना अस्वाभाविक और आश्चर्यजनक था कि यह सोचा ही नहीं जा सकता कि वह अपनी स्वभाविक प्रकृतिमें है ।

विप्रदासने मासे पूछा—“ बात क्या है मा ? ”

दयामयीने कहा—“ मालूम नहीं बेटा । ”

“ किसलिए बन्दनाको तुम लोगोंने चाहा था ? कौनसी आशा जाती रही ? ”

दयामयी मन-ही-मन मारे शरमके मर गई, किसी भी तरह जवानपर न ला सकी कि उनका क्या इरादा था । बोली—“ वे बातें फिर किसी दिन होंगी विपिन, आज नहीं । ”

“ मा, अक्षय बाबूकी लड़कीके बारेमें तुमने क्या तय किया ? उन लोगोंको कुछ-न-कुछ जवाब तो देना चाहिए । ”

“ मुझे कोई आपत्ति नहीं विपिन, तुम लोगोंकी राय हो तो ठीक है । द्विजूसे भी पूछ लेना, वह क्या कहता है । ”—इतना कहकर वे भी कमरेसे बाहर चली गई । विप्रदास संशयमें पड़ गया । बात स्पष्ट तो विशेष हुई नहीं, पर स्पष्ट कर लेने लायक समय भी तब न था ।

*

*

*

विप्रदासने कलकत्ते पहुँचकर देखा कि मकान खाली है । बन्दना और उसके पिता थोड़ी देर पहले रवाना हो चुके हैं । ऐसा संशय उसे बिलकुल ही न था, सो बात नहीं, पर इतनी ज्यादा आशंका न थी । अन्नदाको कारण नहीं मालूम, सिर्फ उसे इतना ही मालूम था कि जानेकी इच्छा राय साहबकी उतनी नहीं थी, सिर्फ लड़की ही जिद करके बापको खींच ले गई है । बन्दनापर किसीका कुछ भी दावा नहीं था, रहनेकी ज़ुम्मेदारी भी नहीं थी, यहाँ वह अतिथि मात्र थी, फिर भी वह जो बगैर मुलाकात किये और बीमार द्विजदासको बेहोश छोड़कर अकारण जल्दबाजी करके चली गई—इस बातका खयाल करते हुए

विप्रदासको बड़ा क्लेश मालूम हुआ। बहुत-कुछ क्रोधके समान—निर्दय निष्ठुर कहकर मानो दण्ड देनेकी इच्छा होने लगी। परन्तु प्रकट करना उसकी प्रकृतिमें न था, वह भाव उसके मनमें ही रह गया।

चार-पाँच दिन बाद विप्रदास हाईकोर्टसे वापस आया बड़े जोरका बुखार लेकर। शायद मैलेरिया होगा या और भी कुछ हो सकता है। आँखें लाल-सुर्ख हो रही थीं, माथेमें ज्वरदस्त दर्द हो रहा था। अन्नदाके पास आनेपर उसने कहा—“अनु-दीदी, बीमार तो मैं कभी पड़ता नहीं, बहुत दिनोंसे ज्वरासुर दैत्यको मैं धोखा देता आया हूँ, पर अबकी मालूम होता है वह ब्याजसमेत सब वसूल कर लेगा। जान पड़ता है कुछ दिन तकलीफ देगा, आसानीसे छुटकारा नहीं देगा।”

हालत देखकर अन्नदा चिन्तित हो गई, परन्तु फिर भी निर्भयताके स्वरमें साहस दिलाती हुई बोली—“नहीं भइया, तुम्हारी इस पुण्यकी देहपर दैत्य-दानवका जोर ज्यादा नहीं चल सकेगा, तुम दो ही दिनमें अच्छे हो जाओगे। लेकिन डाक्टर बुलवाने किसीको भेज दूँ—मैं लापरवाही नहीं कर सकूँगी।”

“सो बुलवा लो।”—कहकर विप्रदास पलंगपर पड़ रहा।

अन्नदा बड़ी आफतमें पड़ गई। उधर देशसे अचानक वासुदेवकी बीमारीकी खबर पाकर द्विजदास घर चला गया, और दत्तजी भी शहरमें नहीं हैं—मालिकके कामसे ढाका गये हुए हैं। अकेली क्या करे कुछ समझमें न आनेसे सधेरे ही उसने आकर कहा—“विपिन, एक बात कहूँ, तुम गुस्सा तो न होओगे ?”

“तुम्हारी बातपर कभी गुस्सा हुआ हूँ दीदी ?”

अन्नदा पास बैठी हुई उसके सिरपर हाथ फेर रही थी, बोली—“प्राण देकर रोगीकी सेवा ही कर सकती हूँ, परन्तु मूरख औरतकी जात ठहरी, और कुछ नहीं जानती। देश भी खबर नहीं भिजवा सकती, बच्चा बीमार है,—उसे छोड़कर वहाँ आयेगी कैसे,—सोचती हूँ बन्दना जीजीको खबर कर दूँ तो कैसा ?”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“बम्बई क्या यह-मुहल्ला और वह-मुहल्ला है दीदी, कि खबर पाते ही वह देखने आ जायगी ? उसके आते-आते—नमक पीसके देनेसे पहले ही दाल खतम हो जायगी। इसकी ज़रूरत नहीं।”

अन्नदा ने अपनी जीभ दबाते हुए कहा—“बलैयाँ लूँ, भगवान बचायें,

ऐसी बात जवानपर न लाओ भइया । बन्दना जीजी, कलकत्तेमें ही हैं, अभी उनका बम्बई जाना नहीं हुआ । ”

“ बन्दना कलकत्तेमें है ? ”

“ हाँ, अपनी मौसीके घर, बालीगंजमें । उनके मौसा पंजाबके एक बड़े डाक्टर हैं, लड़कीका ब्याह करने यहाँ आये हैं । अचानक हवड़ा स्टेशनपर भेंट हो गई,—वे लोग उतर रहे थे गाड़ीसे और वे लोग प्लेटफारममें घुस रहे थे । मौसी जबरदस्ती उन्हें अपने घर ले गई । बोलीं—दौबसे जब कि मिल ही गई हो तो लड़कीका ब्याह होते तक हर्गिज नहीं छोड़ सकती । उनके पिताजीको सिर्फ़ एक दिन रोककर बम्बई चला जाने दिया । ”

विप्रदासने कहा—“ मौसी क्या, जान-पहचानकी थी ? ”

“ हाँ, उनकी सगी बड़ी-मौसी हैं । दूर-दूर रहना होता है, इससे हर-हमेशा भेंट-मुलाकात नहीं होती, पर है सगी मौसी । ”

“ तुम्हें इतनी बातें कैसे मालूम हुई अनु-दीदी ? ”

“ कल वे लोग घूमने आई थीं यहाँ, द्विजूकी खबर लेने । दोपहरके वक्त ऊपरके बरामदेमें बैठो मैं नातीके लिए कँथड़ी सीं रही थी, देखूँ तो बाहरवाले आँगनमें दो-गाड़ी आदमी आकर खड़े हैं—औरतें—मरद बहुतसे लोग थे । कौन हैं—उझककर देखा कि अपनी बन्दना-जीजी भी दीख पड़ीं । पर पहनाव-उदाव ऐसा बदल गया था कि अचानक पहचाना ही नहीं जा सका, जैसे वह लड़की ही न हो । क्या कहूँ, कहाँ बैठाऊँ,—घबरा-सी गई । कुछ देर बाद जीजी-बाई ऊपर आई, सबकी खबर ली, अपनी सुनाई,—उन्हींके मुँहसे सुना कि कमसे कम अभी महीने-भर कलकत्ता रहना होगा । बोलीं—“बड़े मजेमें हैं; थियेटर, सिनेमा, वन-भोजन, बाग-बगीचोंकी सैर—यही सब होता रहता है, नित नया कुछ-न-कुछ । ”

विप्रदासने पूछा—“ वासूकी बीमारीके बारेमें उससे कुछ कहा था क्या ? ”

“ हाँ, कहा क्यों नहीं । सुनके बोलीं—ऐसी कोई बात नहीं, अच्छा हो जायगा । ”

विप्रदास क्षण-भर चुप रहकर बोला—“उसे खबर देकर क्या होगा अनु-दीदी ? मैं भी अच्छा हो जाऊँगा । कुछ दिन तक तुम अकेली मेरी देख-भाल न कर सकोगी ? ”

अन्नदाने जोर देकर कहा—“ सक्की क्यों नहीं भइया, लेकिन तौ भी मुझे

लगता है कि एक बार जता देना ठीक है, नहीं तो बहू शायद बहुत दुःख करेगी। कुछ भी हो, आग्विर है तो बहन ही ? ”

“ घर जानती हो ? ”

“ अपना शोफर जानता है। उन लोगोंको वहाँ पहुँचा आया था। ”

विप्रदास बहुत देर तक चुप रहकर बोला—“ अच्छा, दे दो एक बार खबर। पर इतना आमोद-प्रमोद छोड़कर क्या वह आ सकेगी ? मालूम तो नहीं होता दीदी। ”

अन्नदाने कहा—“ मालूम तो मुझे भी नहीं होता भइया, अब तो उनके महनाव-उद्वावकी ही बात नज़र आ रही है मुझे। फिर भी एक बार कहलॉ भेजूँ। ”

विप्रदासने निरुत्सुक और थके हुए कंठसे कहा—“ कहला भेजो दीदी, जब कि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो। ”

१७

अकस्मात् हवड़ा-स्टेशनपर मौसीके साथ जब बन्दनाकी भेंट हो गई तो उसका बम्बई जाना स्थगित कराना और उसे अपने घर ले जाना मौसीके लिए कष्टसाध्य न हुआ। वे अपनी लड़कीके विवाहके लिए पतिके कार्यस्थल पंजाबसे अपने देश आ रही थीं। बन्दनाका अपनी मौसीके प्रस्तावपर राजी हो जानेका, असल कारणके सिवा एक और कारण था, जिसे यहाँ प्रकट कर देना आवश्यक है। बचपनसे लेकर अब तक बन्दनाका जीवन सुदूर प्रवास ही प्रवासमें बीता है, उसकी शिक्षा-दीक्षा आदि सब वहींकी है, और मजा यह है कि वह जिस समाजके अन्तर्गत है उस समाजका अधिकतर समुदाय कलकत्तेमें रहता है, उसके साथ आज तक उसका घनिष्ठ परिचय ही नहीं हुआ। मामूली परिचय जो-कुछ उसे हुआ था वह सिर्फ अखबारों, मासिक-पत्रों और साधारण उपन्यास-कहानियोंके सहयोगसे। कलकत्ते जिनका हरवक्त आना-जाना बना रहता है उनके मुँहसे अनेक तथ्य उसे बीच-बीचमें मालूम होते रहते थे—ऐनिटा चैटर्जी एम० ए०, विनीटा बैनर्जी बी० ए०—अनुसूया, चित्रलेखा, प्रियम्बदा आदि अनेक भइकीले नाम और चमकीली कहानियाँ—बीसवीं सदीके अंत्याधुनिक मनोभाव और रोमाञ्चकारी जीवन-यात्राका विवरण इत्यादि;

परन्तु उसमें कितना यथार्थ है और कितना बनावटी, इस बातका निःसंशय रूपसे अन्दाजा लगाना उसके लिए कठिन था। इसीसे अपने समाजका कोई चित्र उसके मनमें अतिरंजित और धुँधला है तो कोई अस्वाभाविक रूपसे फीका; उन्हीं चित्रोंको प्रत्यक्ष परिचयसे स्पष्ट और सत्य कर लेनेके लिए जब उसे मौसीकी लड़की प्रकृतिके ब्याह जैसा सुयोग मिल गया तो वह उसकी उपेक्षा न कर सकी; सहजहीमें राजी होकर वह उनके बालीगंजके मकानमें पहुँच गई। अपने समाजके बहुतोंके साथ उन लोगोंकी जान-पहचान थी, खासकर प्रकृति यहींके स्कूल-कॉलेजोंमें पढ़कर बी० ए० हुई थी, उसके अपने मित्र और सखी-सहेलियोंकी संख्या भी कुछ कम न थी। यहाँ आनेके बाद बन्दनाके उसी समुदायमें कई दिन बीत गये। पिता अनाथनाथ राय बम्बई चले गये, परन्तु सुधीर रह गया कलकत्तेमें ही। आसन्न-विवाहका आनन्दोत्सव रोज ही चल रहा है। उस दिन बेलघर*के एक बगीचेमें पिकनिक करके लौटते वक्त बन्दना द्विजदासकी खबर लेने उन लोगोंके घर पहुँच गई थी। यही खबर उस दिन अन्नदाने विप्रदासको सुनाई थी।

मौसीके मकानमें उनके दल या समाजके लोगोंका आना-जाना, खाना-पीना गपशप, सलाह-बहस वगैरहका एक रोज़ भी नागा न होता था। अतिथि आ पहुँचे और ऊपरके बड़े कमरेमें महा समारोहके साथ चायके दौरपर दौर चलने लगे; इतनेमें विप्रदासकी भारी-भरकम मोटरने आकर गेटके भीतर प्रवेश किया। नौकर-चाकरोंका झुंड सावधान हो उठा; परन्तु शोफरके गाड़ीका दरवाजा खोल देनेपर जो प्रौढ़ स्त्री मोटरसे उतरी उसकी पोशाककी सामान्यता और स्वल्पतासे सब-कोई विस्मित और परेशान हो उठे। मोटरके साथ उस स्त्रीका कोई भी सामंजस्य नहीं था; अन्नदाके पहनावेमें एक बिना-किनारीकी सफेद धोती, वैसी ही सफेद मोटी चादर, नंगे-पाँव, खाली हाथ और सिरका पल्ला आधे ललाट तक खिंचा हुआ,—वह खुद भी मानो सलज्ज संकोचसे सिमट-सी गई। नौकर-चाकरोंकी चपकन-पगड़ियाँ देखकर यह समझना कठिन है कि कौन किस देशका है, फिर भी सामनेके एक नौकरको बंगाली समझकर अन्नदाने पूछा—“बन्दना-जीजी घरपर हैं ?”

वह बंगाली ही था, बोला—“हाँ, हैं। सब ऊपर चाय पी रहे हैं, आप भीतर आकर बैठिए।”

“ नहीं, मैं यहीं खड़ी हूँ, उन्हें ज़रा खबर नहीं दे सकते ? ”

“ दे सकता हूँ । क्या कहना होगा ? ”

“ कहो जाकर कि विप्रदास बाबूके घरसे अन्नदा आई है । ”

बैहरा चला गया । थोड़ी देर बाद बन्दना नीचे उतर आई और अन्नदाका हाथ पकड़के उसे कमरेमें लाकर बिठाया । ऐसा उसने कभी नहीं किया था; वह भूल गई कि सामाजिक दृष्टिकोणसे यह विधवा उससे बहुत छोटी है,—वह विप्रदासके घरकी एक दासी-मात्र है । बिना-कारण उसकी आँखें भर आईं, बोली—“ अनु-दीदी, तुम मेरी खबर-सुध लेने आओगी इसका मुझे खयाल न था । सोचा था मुझे तुम लोग भूल गई हो । ”

“ भूलूँगी क्यों जीजी-बाई, भूली नहीं । बड़े बाबूने मुझे आपके पास भेजा है यह कहनेको—”

“ नहीं अनु-दीदी, मुझे ‘ आप ’ कहोगी तो मैं जवाब न दूँगी । ”

अन्नदाने इसपर कोई आपत्ति नहीं की, सिर्फ हँसते हुए कहा—“ उन लोगोंको गोदमें खिलाया-पिलाया है इसलिए ‘ तुम ’ कहा करती हूँ, नहीं तो उस घरकी मैं दासीके सिवा और कुछ नहीं । ”

बन्दनाने कहा—“ सो होने दो । मगर मुखर्जी साहबको तो कलकत्ते आये पाँच-छै रोज हो गये, खुद क्या एक दिनके लिए न आ सके ? वे तो जानते हैं कि मैं बम्बई नहीं गई ? ”

“ हाँ, मेरे जरिए यह खबर उन्हें मिल चुकी है । पर जानती तो हो जीजी-बाई, उन्हें कितना काम रहता है । उन्हें ज़रा भी वक्त नहीं मिला । ”

यह सुनकर बन्दना खुश न हुई, बोली—“ काम तो सभीको रहता है अनु-दीदी । हम लोग गई थीं इसलिए भद्रताके बहाने उन्होंने तुम्हें भेज दिया, नहीं तो याद भी नहीं करते । उन्हें कहना जाकर कि मेरी मौसीके पास उनके बराबर धन-दौलत नहीं है, फिर भी यदि एक बार मेरी खबर-सुध लेने इस घरमें पदार्पण करते तो उनकी जात नहीं मारी जाती और मान-मर्यादाकी भी हानि नहीं होती । ”

इन सब उलहनोंका जवाब देना अन्नदाका काम नहीं था । उसने वहाँ चलनेके लिए अनुरोध किया, पर बन्दनाको सुननेका धैर्य न था, अन्नदाकी बात काटकर वह बीचहीमें बोल उठी—“ नहीं अनु-दीदी, सो नहीं होनेका । ”

कहीं भी जाने-आनेका मेरे पास वक्त नहीं। कलके बाद परसों मेरी बहनका ब्याह है।”

“परसों ?”

“हाँ, परसों।”

अन्नदा सोचने लगी कि इस समय बीमारीकी खबर देना उचित है या नहीं, किन्तु बन्दना उसी वक्त पूछ बैठी—“मुझे बुलानेका तुम्हें हुकम किसने दिया ? छोटे बाबू तो मुझे मालूम है नहीं हैं, शायद बड़े बाबूने दिया होगा। मगर उनसे कह देना जाकर कि हुकम चला-चलाकर उन्होंने अपनी आदत बिगाड़ ली है। मैं न तो उनकी कर्जदार हूँ, न उनकी जर्मीदारीका कोई कर्मचारी ! मुझसे अनुरोध करना चाहिए उन्हें खुद आकर। जीजी अच्छी तरह हैं ?”

“हाँ, अच्छी तरह हैं।”

“और सब ?”

अन्नदाने कहा—“खबर आई है कि बच्चा बीमार है।”

“कौन बीमार है,—वागू ? क्या हुआ है उसे ?”

“सो मुझे ठीक-ठीक नहीं मालूम।”

बन्दना चिन्तित चेहरेसे बोली—“बच्चा बीमार है, फिर भी खुद न जाकर मुखर्जी साहब यहाँ बैठे हैं ? मामले-मुकदमे और रुपये-पैसेका खिंचाव ही उनके लिए इतना बढ़कर है अनु-दीदी ? हिताहितका भी तो कुछ बोध रहना चाहिए।”

अन्नदाने कहा—“रुपये-पैसेका खिंचाव नहीं जीजी-बाई, आज दो दिनसे वे खुद भी खाटपर पड़े हैं। बच्चेकी बीमारीसे देशमें सब परेशान होंगे, इससे खबर भी नहीं दी जा सकती; और यहाँ यह हाल है कि दत्तजी भी घर नहीं हैं—ढाका गये हैं। अकेली मैं हूँ मूरख औरत, कुछ समझती-बूझती नहीं; डर लगता है कि बीमारी कहीं कठिन न हो उठे। विपिनको कभी कुछ होता-हवाता नहीं, इससे चिन्ता और ज्यादा है। ब्याह हो चुकनेके बाद एक बार आ नहीं सकोगी जीजी-बाई ?”

मारे आशंकाके बन्दनाका चेहरा फट पड़ गया, बोली—“डाक्टर आये थे ? क्या कहते हैं वे ?”

“कहते हैं, डरकी कोई बात नहीं, मगर साथ ही किसी दूसरे डाक्टरको बुलानेकी भी कह गये हैं।”—कहते हुए अन्नदाकी आँखें भर आई। उसने बन्दनाका

हाथ दबाते हुए कहा—“ ये दो दिन तो किसी-न-किसी कदर काट दूँगी, पर ब्याह हो चुकनेपर भी क्या न आओगी ? हम लोगोंपर गुस्सा ही बनी रहोगी क्या ? तुम लोगोंके बीच कहाँ क्या हुआ है, मेरे जाननेकी बात नहीं, मैं जानती भी नहीं, पर इतना जानती हूँ कि दोष और चाहे किसीने भी किया हो, विपिनने हर्गिज नहीं किया । उसे न पहचाननेसे शायद गलती हो जाय, पर पहचान जानेसे ऐसी गलती नहीं होगी जीजी-आई । ”

बन्दना कुछ देर चुप रहकर चटसे उठ खड़ी हुई, बोली—“ चलो मैं चलती हूँ । ”

“ अभी चलोगी ? ”

“ हाँ, अभी तुरत । ”

“ घरपर कह नहीं जाओगी ? ये लोग फिकर करेंगे जो । ”

“ कहने-कहलानेमें देर हो जायगी अनु-जीजी, तुम चलो । ” इतना कहकर वह उत्तरकी प्रतीक्षा किये बगैर ही गाड़ीमें जाकर बैठ गई । एक बैहराको इशारेसे बुलाकर कह दिया कि वह मौसीजीसे जाकर कह दे कि मैं अपनी बहनके घर जा रही हूँ, वहाँ विप्रदास बाबू बीमार हैं ।

बन्दनाने आकर जब विप्रदासके कमरेमें प्रवेश किया तब दिन छिप रहा था, पर बत्ती जलानेका समय नहीं हुआ था । विप्रदास कई तकियोंके सहारे इस ढंगसे बैठा हुआ था कि चेहरा देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वह बहुत ज्यादा बीमार है । बन्दनाके मनमें ज़रा तसल्ली आ गई; बोली—“ मुखर्जा साहब, नमस्कार । जीजी मौजूद होतीं तो कहतीं, बड़ोंके पाँव छूकर ही प्रणाम करना चाहिए । पर छूनेमें डर लगता है, कहीं छूत न लग जाय । ”

विप्रदास मुँहसे कुछ न बोलकर सिर्फ़ हँस दिये । बन्दनाने कहा—“ बुलवाया क्यों था,—सेवा करानेको ? अनु-दीदी कह रही थी दवा देनेका वक्त हो गया है । मगर यह क्या ? वैद्यराजकी गोलियाँ कहाँ हैं ? डाक्टर बुलानेकी बुद्धि किसने दी आपको ? ”

विप्रदासने कहा—“ हमारे यहाँ ‘ ढीढ़ ’ एक शब्द है, उसके :मानी जानती हो बन्दना ? ”

बन्दनाने कहा—“ जानती हूँ महाशय, खूब जानती हूँ । मनुष्य होकर जो मनुष्यसे घृणा करते हैं, छूते नहीं, उन्हें कहते हैं । उनसे बढ़कर ‘ ढीढ़ ’ संसारमें और कोई है क्या ? ”

विप्रदासने कहा—“ हैं । जिनके सच-झूठकी परीक्षा करनेका धीरज नहीं होता, बिना कारण निर्दोषीको डंक मारकर जो लोग अपनी बहादुरी दिखाते फिरते हैं, वे हैं । और उनके गुटकी पण्डा तुम खुद हो । ”

“ बिना कारण किस निर्दोषीके डंक मारा है आप बता तो दीजिए ? ”

“ मुझे नहीं बताना पड़ेगा बन्दना, समय आनेपर खुद ही जान जाओगी । ”

“ अच्छा उसी दिनकी प्रतीक्षा किये रहूँगी । ”—यह कहकर बन्दना खाटके पास एक कुरसी खींचकर बैठ गई, बोली—“ अब यह बताइए कि आपकी तबीयत कैसी है ? ”

“ अच्छी है, पर बुखार है । रातको और भी कुछ बढ़ जायगा मालूम होता है । ”

“ मगर मुझे क्यों बुलवा भेजा है ? मेरी आपको किसलिए ज़रूरत है ? ”

“ ज़रूरत मुझे नहीं, अनु-दीदीकी है, वह डर गई है । उसके मुँहसे सुना है कि परसों तुम्हारी बहनका ब्याह है, सो ब्याह हो जाने पर एक दिन आना । मेरे मार्फत तुम्हारी जीजीने कुछ सँदेशा भेजा है, उसे सुनाना है । ”

“ आज नहीं सुना सकेंगे ? ”

“ नहीं, आज नहीं । ”

बन्दना दो-एक मिनट चुप बैठी रही, फिर बोली—“ मुखर्जी साहब, आपकी तबीयत ऐसी कुछ ज्यादा खराब नहीं है, दो ही चार दिनमें ठीक हो जायगी । मैं जानती हूँ कि आपको मेरी ज़रूरत नहीं, फिर भी आपकी सेवाका वहाना लेकर ही मैं यहाँ रहूँगी, वहाँ नहीं जाऊँगी । मैंने अपना ट्रंक लानेके लिए आदमी भेज दिया है, आप कोई आपत्ति नहीं कर सकते । ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ किस बातकी आपत्ति बन्दना, तुम्हारे रहनेमें ? मगर तुम्हारी बहनका ब्याह है जो ? ”

“ ब्याह तो मेरे साथ नहीं होगा,—मेरे न जाने पर भी बहनका ब्याह हो जायगा, रुकेगा नहीं । ”

“ सचमुच तुम शामिल न होगी ब्याहमें ? ”

“ नहीं । ”

“ मगर इसीके लिए तो तुम यहाँ रुकीं थीं ? ”

“ जा रही थी बम्बई, स्टेशनसे वापस चली आई, पर ठीक इसीके लिए

नहीं। दूर रहती हूँ, अपने समाजके प्रायः किसीको नहीं जानती, मुँह-जबानी बहुतोंसे बहुतसी बातें सुना करती थी, उपन्यास-कहानियोंमें न-जाने क्या-क्या पढ़ा करती थी, उन लोगोंके साथ अपनेको मिलाकर एक न कर सकी थी,— ऐसा लगता था जैसे हम लोग समाजसे अलग जातिच्युत-से हों। सो जब मौसीजीने आग्रह किया तब मैंने सोचा कि प्रकृतिके ब्याहमें दैवसे मौका मिल गया है, ऐसा मौका फिर तो मिलनेका नहीं; इसीसे यहाँ रुक गई मुखर्जी-साहब। ”

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—“ मगर वह ब्याह ही तो अभी बाकी है। अपने समाजके लोगोंको पहचाननेका मौका कहाँ मिला ? ”

“ मौका पूरा नहीं मिला, यह सही है, पर जितना मिला है उतना ही मेरे लिए काफी है। ”

“ तुम्हारे अपने साथ इन लोगोंका कितना मेल बैठे बन्दना ? मैं भी सुन सकता हूँ क्या ? ”

बन्दना हँस दी, बोली—“ आप अच्छे हो लीजिए, उसके बाद विस्तारसे सब सुनाऊँगी। ”

नौकर बत्ती जलाके चला गया। सिरहानेकी खिड़की बन्द करके बन्दनाने दवा पिलाई; और कहा—“ अब आप बैठे मत रहिए, लेट जाइए। ”—कहकर उसने सिमटे हुए विस्तरको झाड़-फटकारकर साफ कर दिया, तकिये जहाँके तहाँ ठीकसे लगा दिये। फिर विप्रदासके लेट जानेपर उसे पैरसे लेकर गले तक अच्छी तरह चादर उढ़ाकर कहा—“ अच्छे होकर अपनेको शुद्ध करनेमें न जाने आपको कितने गोबर-गंगाजलकी ज़रूरत पड़ेगी। ”

विप्रदासने अपने दोनों हाथ फैलाकर कहा—“ इतनेकी ! पर आश्चर्य तो यह है कि तुम्हें सेवा-जतन करना भी थोड़ा-बहुत आता है मालूम होता है। ”

“ थोड़ा-बहुत आता है ? नहीं महाशय, ऐसा नहीं कह सकते। हम लोगोंके बारेमें आपको और भी ज़रा खोज-खबर रखना पड़ेगी ! ”

“ यानी—”

“ यानी अगर आप हम लोगोंकी निन्दा ही करना चाहते हैं तो आपको वह जानकारीके साथ करनी होगी। इस तरह आँख मीचके अंठसंठ बात मैं आपको नहीं कहने दूँगी। ”

विप्रदासके चेहरेपर परिहासकी मुस्कराहट आ गई, उसने कहा—“ तुम्हारे ये ‘ हम लोग ’ कौन हैं बन्दना ? किन लोगोंके बारेमें मुझे और भी ज़रा खोज

खबर रखनी पड़ेगी ? जिन लोगोंके पाससे तुम अभी-अभी भाग आई हो उन लोगोंके बारेमें ? ”

“ किसने कहा मैं भाग आई हूँ ? ”

“ मैं कहता हूँ । ”

“ आपने कैसे जाना ? ”

“ जाना तुम्हारा मुँह देखकर । ”

बन्दनाने क्षण-भर उसके मुँहकी ओर देखा और फिर कहा—“ द्विजू बाबूने एक रोज कहा था कि भाई साहबकी नज़रोंसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता । तब मैंने विश्वास नहीं किया था कि बात उनकी इतनी सच है । आपकी बीमारी मैंने नहीं चाही, लेकिन, इसने सचमुच ही मेरा उद्धार कर दिया है । सचमुच यहाँ भाग आई सो मैंने अपनेको बचा लिया । जितने दिन आप बीमार हैं, मैं आपके पास ही रहूँगी, उसके बाद सीधी बापूजीके पास चली जाऊँगी,—मौसीके घर अब न जाऊँगी । दूरसे जिन लोगोंको देखना चाहा था उन्हें मैंने देख लिया, ऐसी इच्छा अब नहीं है कि एक दिनके लिए भी उनमें जाकर रह आऊँ । ”

विप्रदास चुपचाप उसकी तरफ देखता रहा । बन्दना कहने लगी—“ उनके यहाँ सिर्फ साड़ी गाड़ी और झूटे प्यारके किस्स हैं । मैं नहीं जानती कि कहाँ नैनी है और कहाँ मसुरीका होटल, लेकिन उनकी बातोंमें वहाँके बारेमें कैसे कैसे गन्दे इशारे होते रहते हैं,—सुनते-सुनते ऐसी तबीयत होती थी कि कहीं भाग जाऊँ । आज इस घरमें बैठके मालूम हो रहा है मानो इधरके कई दिन मेरे लगातार धूल-बालूकी आँधीके चक्करमें बीते हों । इसके अन्दर वे जीया कैसे करते हैं मुखर्जी साहब ? ”

विप्रदासने कहा—“ उसका रहस्य मेरा जाना-हुआ नहीं है । मरुभूमिमें कब्रें जिस तरह टिकी रहती हैं, शायद उसी तरह । ”

बन्दनाने एक साँस छोड़ते हुए कहा—“ दुःखका जीवन है । उन लोगोंके न तो शान्ति है और न धर्म-कर्मकी कोई बला ही । कुछ भी विश्वास नहीं करते, सिर्फ बहस करते हैं । ” फिर ज़रा ठहरकर बोली—“ अखबार पढ़ा करते हैं, इससे जानते बहुत हैं । दुनियामें रोज कहाँ क्या हो रहा है, उनसे छिपा नहीं । पर मुझसे तो वे पदे नहीं जाते, इससे आधी बातें समझ ही नहीं पाती । सुनते-सुनते जब जी उकता जाता था तब और कहीं जाकर तसल्लीकी

सौंस लिया करती । मगर उन लोगोंको थकावट नहीं आती, बकते-झकते सबके सब मानो उन्मत्त हो उठते हैं । ”

“ पर तुम्हारे पिता पास होते तो तुम्हें बहुत-कुछ सहूलियत होती बन्दना । अखबारोंकी सारी खबरें तुम उनसे पूछकर जान सकती थीं,—उन लोगोंके सामने शरमिन्दा न होना पड़ता । ”

बन्दनाने हँसकर उसकी बातका समर्थन करते हुए कहा—“ हाँ, बापूजीको यह बीमारी है । सारीकी सारी खबरें जब तक छान-चीनके साथ नहीं पढ़ लेते तब तक उन्हें तृप्ति नहीं होती । पर हम लड़कियोंके लिए उसकी ज़रूरत क्या है बताइए तो ? क्या होगा जानकर कि दुनियामें दिन-रात कहाँ क्या हो रहा है ? ”

“ यह बात तुम्हारी जीजीके मुँहसे शोभा दे सकती है बन्दना, तुम्हारे मुँहसे नहीं । ”—कहकर विप्रदास ज़रा हँस दिया ।

बन्दनाने कहा—“ वे लोग क्या मेरी जीजीसे ज्यादा जानते हैं आप समझते हैं ? ज़रा भी नहीं । रीती-ग़ागर होनेसे ही मुँहसे आवाज निकलती है । उन लोगोंकी और कोई बात जानी हो या न हो, मगर इतनी बात तो समझ ली है मुखर्जी साहब । ”

“ मगर ज्ञान तो चाहिए ही ? ”

“ नहीं, नहीं चाहिए । ज्ञानकी उछल-कूदमें मुँहका मधु उनका विष होता जा रहा है । जानते हैं वे मेरी जीजीकी तरह सबको प्यार करना ? नहीं जानते । कर सकते हैं वे जीजीकी तरह भक्ति ? नहीं कर सकते । उन लोगोंके यहाँ किसीका कोई मित्र भी है ? मालूम होता है नहीं है, ऐसा ही उन लोगोंमें पारस्परिक विद्वेष है । उन लोगोंके यहाँ अभाव भी क्या कुछ कम है ? बाहरके ठाट-वाटसे मालूम ही नहीं हो सकता कि उनके अन्दर इतना पोलापन है ! फिर किसलिए उनके साथ इतना हेल्मेल किया जाय ? भीतर तो साराका सारा घुनकर चलनी हो गया है । ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ हो क्या गया है बन्दना तुमको, इतना गुस्सा क्यों ? किसीने धोखेसे रुपये तो नहीं ले लिये ? ”

“ नहीं, धोखेसे नहीं लिये, उधार लिये हैं । ”

“ कितने ? ”

“ ज्यादा नहीं, चार-पाँच सौ । ”

“ उनके नाम तो मालूम हैं ? ”

“मालूम थे, पर भूल गई हूँ।”—कहकर बन्दना हँस पड़ी, बोली—“छि-छि, इतनी कम जान-पहचान होनेपर भी कोई किसीसे रुपये उधार माँग सकता है यह तो मैं सोच ही नहीं सकती थी। माँगनेमें जुवानको ज़रा भी संकोच नहीं होता, आँखोंमें लज्जाकी छाया तक नहीं झलकती, मालूम होता है जैसे यह उनका रोजमर्राका काम है। यह कैसे सम्भव होता है मुखर्जी साहब ?”

विप्रदासका चेहरा गम्भीर हो उठा, कुछ देर स्तब्ध रहकर कहने लगे—“तुम्हारे मनको उन लोगोंने बहुत ज्यादा विपत्ति कर दिया है बन्दना, मगर सभी ऐसे नहीं होते, तुम्हारी मौसीका समाज ही तुम लोगोंका सारा समाज नहीं है। जो लोग उसके बाहर बचे हुए हैं, उनमें ढूँढ़ो तो शायद उन्हें भी किसी दिन देख सकोगी।”

बन्दनाने कहा—“सकूँ तो अच्छी ही बात है। तब अपनी धारणाको सुधार लूँगी; लेकिन जिन्हें देख सकी हूँ वे सभी शिक्षित हैं, सभी ऊँचे दर्जेके व्यक्तियोंके आत्मीय हैं। उपन्यास-कहानियोंकी रँगी हुई भाषासे सुसज्जित होकर ये लोग दूरसे मेरी दृष्टिमें कैसे आश्चर्यजनक सुन्दर मनोहर लग रहे थे। मेरे मनमें गर्वकी सीमा न थी, सोचा करती थी कि हम नारियोंका पिछड़ी रहनेका बदनाम अब मिट गया। मेरी वह गलती अब दूर हो गई मुखर्जी साहब।”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“गलती कैसी ? ये लोग तो बड़ी तेज़ीसे बढ़ी जा रही हैं—यह तो झूठ नहीं।”

सुनकर बन्दना भी हँस दी, बोली—“नहीं, झूठ क्यों होने लगा, सच ही है। फिर भी मेरे लिए इतनी सान्त्वना है कि संख्यामें ये लोग बहुत थोड़ी हैं,—इनको ऊँची मीनारकी चोटीपर चढ़ाकर शोरगुल मचा देना जैसा निष्फल है वैसा ही हास्यास्पद।”

विप्रदासने कहा—“तुम्हारा यह एक और ढंगका दकियानूसीपन है। अपने धर्मको छोड़नेमें विपत्तिका ही सामना करना पड़ता है बन्दना, सावधान रहना !”

बन्दनाने उनकी इस बातपर ध्यान नहीं दिया, कहने लगी—“इस नगण्य समुदायके बाहर बंगालका विशाल नारी-समाज मौजूद है। उसको मैंने आज तक देखा नहीं, बाहरसे शायद देखा भी नहीं जा सकता, फिर भी मालूम होता है हवाकी तरह उन्हींका अस्तित्व है समाजके निःस्वासमें। यह जानता हूँ कि उनमें छोटी भी हैं और बड़ी भी,—जो बड़ी हैं उनका दृष्टान्त मौजूद है

मेरी जीजीमें, उनकी सासुमें;—अबकी कलकत्ता आना मेरा सार्थक हो गया मुखर्जी साहब ।—आप हँस क्यों रहे हैं ? ”

“ सोच रहा हूँ, रुपयोंका शोक आदमीको किस कदर वक्ता बना डालता है । यह दोष मेरे अन्दर भी है न ! ”

“ कौनसे रुपयोंका शोक,—उन पाँच-सौका ? ”

“ मालूम तो ऐसा ही होता है । ”

बन्दना हँसती हुई बोली—“ रुपयोंके लिए अब कोई चिन्ता नहीं । आपकी सेवा करनेकी मजदूरीका विल पेश करके दूना वसूल कर लूँगी तब आपका पिण्ड छोड़ूँगी । आप नहीं देंगे तो मासे वसूल कर लूँगी । ”

इतनेमें अन्नदाने कमरेके अन्दर आकर कहा—“ आठ बज रहे हैं, विपिनके खानेका वक्त हो गया । ”

बन्दना व्यस्त होकर बोली—“ चलो अनु-दीदी, आई मैं । क्यों, जाऊँ मुखर्जी साहब ? ”

विप्रदासने हँसते हुए जवाब दिया—“ जाओ । मगर सेवामें त्रुटि हुई तो मजदूरी काट ली जायगी । ”

“ त्रुटि नहीं होगी महाशयजी, नहीं होगी । ”—कहकर हँसती हुई बन्दना बाहर चली गई ।

१८

बन्दनाने कहा—“ खाना तैयार है, ले आऊँ ? ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ तुम बराबर मेरी जात मारनेकी कोशिश कर रही हो । अभी तक मैंने संध्या-बन्दना नहीं की, पहले उसकी व्यवस्था करा दो । ”

“ मैं खुद ही कर दूँ क्या मुखर्जी साहब ? ”

“ नहीं तो और यहाँ कौन है जो कर देगा ? पर माके पूजा-घर तक न जा सकूँगा,—शरीरमें ताकत नहीं है,—इसी कमरेमें इन्तजाम करना होगा । पहले मैं देखूँगा कि कैसा आयोजन करती हो, दोष-त्रुटि पकड़नेकी कोई बात है कि नहीं, तब समझके बताऊँगा कि मेरा खाना तुम लाओगी या महाराज । ”

सुनके बन्दना फूली न समाई, बोली—“मैं इसी शर्तपर राजी हूँ। लेकिन परीक्षामें पास अगर हो गई तो फिर आप मुझे झूठे छल्ले से फेल नहीं कर सकेंगे। वचन दीजिए।”

“दिया वचन। पर मुझे अपने हाथसे खिलानेमें तुम्हें लाभ क्या है?”

“सो मैं नहीं बताऊँगी।”—कहकर बन्दना जल्दीसे वहाँसे चल दी।

कोई दस एक मिनट बाद, बन्दना नहा-धोके तैयार होकर जल्ले भरा एक लोटा हाथमें लिये-हुए विप्रदासके कमरेमें दाखिल हुई। कमरेके जिस तरफ खुली हुई खिड़कीमेंसे पूर्व दिशाकी धूप आ रही थी उसी तरफके स्थानको पानीसे अच्छी तरह रगड़-धोकर अपने आँचल्ले पोंछ दिया, पूजा-घरसे आसन और कोशा-कुशी* आदि लाकर जहाँके तहाँ सजा दिये, धूपदानी लाकर धूपकी बत्तियाँ सुलगा दीं; और फिर धोती-अंगौछा, हाथ-मुँह धोनेके लिए पानी और चरतन वगैरह लाकर विप्रदासके सामने रखती हुई बोली—“आज समय नहीं रहा फूल चुनकर माला गूँथनेका, नहीं तो गूँथ लाती, कल यह कमी न रहने दूँगी। लेकिन आध-घंटेका समय देती हूँ, इससे ज्यादा नहीं। अभी बजे हैं नौ,—ठीक साढ़े-नौ बजे फिर आऊँगी। इस चीजमें आपको कोई नहीं छेड़ेगा, मैं जाती हूँ।”—इतना कहकर वह दरवाजा बन्द करके चल दी।

विप्रदास मुँहसे कुछ न बोलकर उसकी ओर देखते रहे। आध-घंटे बाद बन्दना जब वापस आई तब संध्या-पूजा समाप्त करके वे एक आरामकुरसीपर आरामसे बैठे हुए थे।

“पास हुई या फेल मुखर्जी-साहब?”

“पास, फर्स्ट डिवीज़नमें। मेरी माको भी मात कर दिया तुमने। किसकी मजाल कि अब तुमसे म्लेच्छ कहे, कौन कह सकता है कि तुमने म्लेच्छोंके स्कूल-कालेजमें पढ़कर बी० ए० पास किया है?”

“तो अब खानेको लाऊँ?”

“लाओ। मगर उसके पहले इन सबको रख आओ।”—कहते हुए विप्रदासने पूजाका सामान दिखा दिया।

“यह मुझे न बताना होगा जनाब, मैं जानती हूँ।”—कहकर उसने

* नावके आकारके तौबके बने छोटे-बड़े पात्र, जिनसे पूजामें जल चढ़ाया जाता है।

पूजाके बरतन आदि उठाये ही थे कि इतनेमें कमरेके बाहर एक साथ बहुतसे ऊँची एड़ीदार जूतोंकी खट-खट आवाज सुनाई दी; और दूसरे ही क्षण अन्नदाने दरवाजेसे झॉककर कहा—“ जीजी-चाई, आपकी मौसीजी—”

आगे कहनेकी ज़रूरत नहीं पड़ी; मौसीजी और उनके साथ दो-तीन कम-उमरकी लड़कियाँ कमरेके अन्दर आ दाखिल हुईं। विप्रदास उठके खड़े हो गये और अम्यर्थनाके स्वरमें बोले—“ आइए । ”

मौसीने कहा—“ नीचे ही मालूम कर लिया था कि विप्रदास बाबूकी तबीयत ठीक है—”

विप्रदासने कहा—“ हाँ, मैं अच्छा हूँ । ”

आगन्तुक लड़कियाँ बन्दनाको देखकर हदसे ज्यादा विस्मित हुईं; पैरोंमें जूते नहीं, बदनपर ब्लाउज़ नहीं, भीगे बालोंसे रेशमकी सफेद साड़ी भींग रही है, बिखरे हुए काले बालोंका भारी बोझ पीठपर पड़ा हुआ है, दोनों हाथोंमें पूजाके बरतन-आसन आदि हैं,—उसकी यह मूर्ति उन लोगोंके लिए अदृष्टपूर्व और अपरिचित ही नहीं, बल्कि अचिन्तनीय और अकल्पनीय भी है। बन्दनाने कहा—“ आप लोग दरवाजा छोड़कर ज़रा हटके खड़ी हो जायँ, मैं इन्हें रख आऊँ । ”

एक लड़कीने कहा—“ लू जाओगी इसलिए क्या ? ”

“ हाँ । ”—कहकर बन्दना बाहर चली गई ।

क्षण-भर बाद उसी वेशमें वह लौट आई और विप्रदासकी कुरसीके पास सटके खड़ी हो गई । मौसीने कहा—“ हम लोगोंको ग़ौर कहे-सुने तुम चली आई इसके लिए मैं नाराज़ नहीं होती, पर आज तुम्हारी बहनका ब्याह है—तुम्हें चलना पड़ेगा । ”

दोनों लड़कियोंने कहा—“ हम पकड़के ले जानेके लिए आई हैं । ”

बन्दनाने कहा—“ नहीं मौसीजी, मेरा जाना न हो सकेगा । ”

“ यह कैसी बात है बन्दना ! नहीं चलनेसे प्रकृतिको कितना दुःख होगा जानती हो ? ”

“ जानती हूँ, फिर भी मैं न जा सकूँगी । ”

सुनकर मौसी विस्मय और क्षोभसे अधीर हो उठीं, बोलीं—“ मगर इसी ब्याहके लिए ही तुम बम्बई जानेसे रुकी हो,—इसीलिए तुम्हारे पिता मेरे पास तुम्हें छोड़ गये हैं । वे सुनैंगे तो क्या कहेंगे बताओ ? ”

उस लड़कीने कहा—“ इसके सिवा सुधीर बाबू—मिस्टर डाटा—बहुत नाराज़ हो रहे हैं । आपका चला आना उन्हें कतई पसन्द नहीं है । ”

बन्दनाने उस लड़कीकी तरफ देखा, किन्तु जवाब दिया मौसीको, बोली—
“ मेरे न जानेसे प्रकृतिका ब्याह नहीं रुक सकता, पर जानेसे मुखर्जी-महाशयकी सेवामें त्रुटि होगी । इनकी देख-भाल करनेवाला यहाँ कोई नहीं है । ”

“ पर ये तो अच्छे हो गये हैं । इन्हें चाहिए कि तुमसे जानेके लिए कह दें । बल्कि न जाना ही अनुचित होगा । ”

बन्दनाने सिर हिलाते हुए कहा—“ नहीं, अनुचित होगा ऐसा मैं नहीं मानती । अच्छी बात है, आप कहती हैं चलनेको तो मैं चली चल्ग़ी, मगर रातको वापस चली आऊँगी, रातको वहाँ नहीं रह सकूँगी । इतनी अनुमति आपको देनी ही पड़ेगी । ”

“ एक रात भी न रह सकोगी ? ”

“ नहीं । ”

“ अच्छा, ऐसा ही सही । ”—कहकर मौसी मन-ही-मन नाराज़ होकर दल-बल सहित वहाँसे चल दी ।

×

×

×

विप्रदासने कहा—“ देखा नहीं तुमने, मौसीजी नाराज़ होकर चली गई । पर अचानक ऐसा खामखयाल निश्चय क्यों कर बैठी ? ”

बन्दनाने कहा—“ नाराज़ होके गई हैं सो मालूम है, पर मैं सिर्फ़ खाम-खयालीसे निश्चय नहीं कर बैठी हूँ । उन लोगोंके यहाँ जो-कुछ भी है उस सबसे मुझे नफरत हो गई है, अरुचि हो गई है । इसीसे अब वहाँ नहीं जाना चाहती मुखर्जी-साहब । ”

“ यह ज़रा ज्यादाती हो रही है बन्दना । ”

“ वास्तवमें ज्यादाती है या नहीं, कहना कठिन है । इस विषयमें मैं हमेशा ही अपने आपको पूछती रहती हूँ, साथ ही अच्छी तरह समझ भी सकती हूँ कि उनके बीच जाकर न मुझे सुख मिलता है और न शान्ति । एक बार बम्बईमें मैं एक कपड़ेका मिल देखने गई थी, बार-बार मुझे उसीका खयाल आ जाता है—उसमें कितनी मशीनें, कितने चक्के, अगल-बगल सामन-पीछे लगातार घूम रहे थे जिनकी शुमार नहीं, ऐसा लगता था कि जरा भी

असावधानी हुई नहीं कि वे गोब-मूँड़-मरोड़कर अपनेमें खींच लेंगे। देखनेमें वे सब अच्छे न लग रहे हों सो बात नहीं, फिर भी मनमें यही आता था कि यहाँसे निकल भागूँ तो जान बचे !—पर अब देर नहीं करनी चाहिए, आपका पथ्य ले आऊँ। ”—कहती हुई वह बाहर जाने लगी तो देखा कि दरवाजेके सामने पैरोंकी धूल और जूतोंके दाग बने हुए हैं। वह ठिठककर खड़ी हो गई, बोली—“पथ्य लानेमें विघ्न आ गया मुखर्जी साहब, ज़रा सब करना होगा। नौकरसे पहले इस जगहको धुलवा-पुछवा लूँ। ”—इतना कहकर वह जा ही रही थी कि विप्रदासने विस्मयके साथ पूछा—“ इतनी कसर-नुक्सकी बातें तुमने सीखीं किससे बन्दना ? ”

सुनकर बन्दना खुद भी अचंभेमें आगई, बोली—“ किसने सिखाया मुझे याद नहीं मुखर्जी साहब। ” और फिर ज़रा चुप रहकर कहने लगी—“ शायद किसीने सिखाया नहीं। अपने-आप ही मुझे ऐस लगता है कि ये सब बातें आपकी सेवा करनेके लिए अपरिहार्य हैं और न करनेसे त्रुटि होगी। ”—इतना कहकर वह चली गई।

×

×

×

शाम होनेके पहले, तीसरे पहर बन्दना अपने अभ्यासके अनुसार यथोचित साज-पोशाक पहनकर विप्रदासके कमरेके खुले हुए दरवाजेके सामने आ खड़ी हुई और बोली—“ मुखर्जी साहब, मैं जा रही हूँ बहनका ब्याह देखने। मौसीजीने पीछा नहीं छोड़ा, इससे जाना पड़ रहा है ? ”

विप्रदासने कहा—“ आशीर्वाद देता हूँ कि तुम भी बहुत जल्द उन लोगोंसे इस अत्याचारका बदला ले सको और अपनी मौसीको पंजाबसे घसीटकर बम्बई खींच ले जाओ। ”

“ मौसीपर मुझे इतना गुस्सा नहीं है, पर आपको ज़रूर घसीटके ले जाऊँगी। डरनेकी कोई बात नहीं, रेल-किराया हम ही लोग देंगे, आपका नहीं खर्च करायेंगे। ”—कहती हुई बन्दना हँस दी और बोली—“ लौटनेमें मुझे ज्यादा रात हो जायगी लेकिन, सब इन्तजाम करके जाती हूँ, ज़रा भी गड़बड़ की तो आकर गुस्सा होऊँगी। ”

“ सौ क्यों न होगी। न होनेसे सबको आश्चर्य होगा। सोचेंगे, तबीयत ठीक नहीं है, ब्याह-शादीमें जाकर ज्यादा खा जानेसे शायद बीमार हो गई है। ”

बन्दना मुसकराती और सिर हिलाती हुई बोली—“ बस बस, हो चुकी मेरे गुणोंकी व्याख्या । इसे रहने दीजिए, और आप संध्या-पूजा करने नीचे न जाइएगा । अनु-दीदी इसी कमरेमें सब ला देंगी । उसके आध घंटे बाद ही महाराज लगा जायेंगे थाली-पाटा, और खानेके घंटे-भर बाद झंडू दवा देकर बत्ती बुताके दरवाजा लगाके चला जायगा । ऐसा हुकम मैं सबको दे चली हूँ । समझे ? ”

“ हाँ, समझ लिया । ”

“ तो जाती हूँ । ”

“ जाओ । पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि तुम आज इस पोशाकमें दीख बड़ी अच्छी रही हो बन्दना, कारण, जो पोशाक तुमने पहन रखी है, वही तुम्हारे लिए स्वाभाविक है; जो यहाँ पहने रहती हो वह कृत्रिम है । ”

“ यह कैसी बात मुखर्जी साहब,—और सब तो कहते हैं कि स्त्रियोंका एड़ीदार जूते पहनना आपको देखे नहीं सुहाता । ”

“ जो कहते हैं वे ग़लत कहते हैं, जैसे यह कहते हैं कि मैं तुम्हारे हाथका छुआ नहीं ला सकता । ”

बन्दनाने आश्चर्यके साथ पूछा—“ ग़लत क्यों होने लगा जनाब, मेरे हाथका छुआ खानेमें आपको आपत्ति तो सचमुच थी ही ? ”

विप्रदासने कहा—“ आपत्ति थी, किन्तु आपत्ति अगर सचमुचकी होती तो वह आज भी रहती, मिटती नहीं । ”

बात बन्दनाकी समझमें न आई, परन्तु विप्रदासकी इस उक्तिको असत्य समझना भी उसके लिए कठिन है, बोली—“ द्विजू बाबूने एक दिन कहा था कि भाई-साहबके मनकी बात कोई नहीं जान सकता; जो बाहरकी बात है लोग सिर्फ़ उसीको थोड़ा-बहुत समझ लेते हैं, पर जो अन्तःकरणकी है वह अन्तरंगमें ही दबी-ढकी रहती है,—क्या यह सच है मुखर्जी महाशय ? ”

उत्तरमें विप्रदास सिर्फ़ ज़रा-सा हँस दिया, फिर बोला—“ तुम्हें देर हुई जा रही है बन्दना । अगर सचमुच ही वहाँ रहनेकी इच्छा न हो तो मत रहना, चली आना । ”

“ चली ही आऊँगी मुखर्जी साहब, रह नहीं सकूँगी वहाँ । ”—इतना कहकर, और-ज्यादा देर न करके बन्दना नीचे उतर गई ।

दूसरे दिन भेंट होनेपर विप्रदासने पूछा—“बहनका ब्याह निर्विघ्न सम्पन्न हो गया ?”

“हाँ, हो गया,—कोई विघ्न नहीं आया ।”

“अपनी ही जिद कायम रखी, मौसीका अनुरोध नहीं माना ! कितनी रात बीते लौटी थीं ?

“तब क़रीब तीन बजे होंगे । मौसीकी बात नहीं रखी जा सकी, रात ही को लौटना पड़ा ।”—फिर ज़रा रुककर शायद विचारकर देखनेके बाद कि कहना उचित होगा या नहीं, कहा—“सिर्फ़ कुछ ही घंटे रही थी, पर काम बहुत कर आई हूँ । एक सालमें जो न कर पाई थी, पाँच-सात मिनटोंमें ही उतना कर गुजरी । सुधीरके साथ खातमा कर आई हूँ ।”

विप्रदासको आश्चर्य हुआ, बोला—“कहती क्या हो !”

“हाँ, ठीक ही कह रही हूँ । पर उसे मँझधारमें नहीं डुबो आई हूँ । कल सवेरे जिस लड़कीको आपने देखा था उसका नाम है हेम,—हेमनलिनी राय । उसीके जिम्मे सुधीरको सौंप आई हूँ । फिर मुझे उसी बम्बईकी मिलका ख़याल उठ आता है, ठीक उसीके समान उन लोगोंके यहाँ प्रेम-प्रीतिके ताने-बानेमें देखते-देखते आदमीका भविष्य बनने लगता है और फिर टूट भी जाता है ।”

विप्रदासने पहलेकी भौंति विस्मयके साथ ही पूछा—“बात क्या हुई ? सुधीरके साथ अचानक खातमा कर आनेके मानी ?”

बन्दनाने कहा—“खातमा करनेके मानी खातमा करना और वहाँ ‘अचानक’ नामकी भी कोई चीज़ नहीं । उन लोगोंके यहाँका ताल असंभव द्रुत होता है, इसीसे बाहरसे ‘अचानक’का भ्रम हो जाता है, पर असलमें ऐसी बात है नहीं । सुधीरने मुझे बुझे बुलाकर कहा कि ‘तुमने बहुत अनुचित किया है’, मैंने कहा, ‘क्या अनुचित किया, सुनूँ भी तो ?’ उसने कहा, ‘किसीसे बग़ैर कहे-सुने यानी उसे बग़ैर जताये—अचानक यहाँ चला आना अत्यन्त ग़र्हित कार्य हुआ है । खासकर, जब कि यहाँ विप्रदास बाबूके सिवा और कोई है नहीं ।’ मैंने कहा, ‘वहाँ अन्नदा-दीदी हैं’ । सुधीरने कहा, ‘पर वह दासीके सिवा और कुछ नहीं ।’ मैंने कहा, ‘वहाँ उसे सब दीदी कहके पुकारते हैं ।’ सुनकर वही हेमनलिनी मुँह बिचकाकर ओठों-ही-ओठोंमें हँसनी हुई बीचमें ही बोल उठी—‘गँवई-गाँवमें इस तरह पुकारनेका रवाज है ।

सुना है, इससे नौकरानियोंका घमंड भर बढ़ जाता है और कुछ नहीं। पर इससे वे बड़ी नहीं बन जाती।' सुधीरने कहा—'इन लोगोंसे तुमने कहा है कि तुम रातको न रह सकोगी, रात ही को वापस चली जाओगी; मगर वहाँ उस घरमें तुम्हारा अकेला रहना हममेंसे कोई भी पसन्द नहीं करता,—खुद तुम्हारे पिता ही सुनेंगे तो क्या कहेंगे?' मैंने कहा—'पिता क्या कहेंगे, इसकी चिन्ता करना तुम्हारा काम नहीं, मेरा है। पर, और जो लोग पसन्द नहीं करते, उनमें तुम खुद भी हो क्या?' हेमने कहा—'ज़रूर हैं, सबोंको छोड़कर ये अलग थोड़े ही हैं।' उस लड़कीके त्रिन-चाहे मन्तव्यका उत्तर देना मुझे जैचा नहीं, न इच्छा ही हुई, इसलिए मैंने सुधीरसे ही कहा—'तुम्हारी इस बातके जवाबमें मैं भी कह सकती थी कि बेमतलबकी छुट्टियाँ लेकर तुम्हारे कलकत्तेमें रहनेको भी मैं पसन्द नहीं करती, पर मैं ऐसी बात कहना नहीं चाहती। तुमने जो गन्दा इशारा किया है, नीच-समाजमें ही उसका चलन है; मगर तुम लोगोंके बड़े दलमें भी उसका चलन है यह मुझे मालूम नहीं था; खैर, अब मेरे पास वक्त नहीं है, गाड़ी खड़ी हुई है, मैं जाती हूँ।' वह लड़की बोल उठी—'जो अशोभन है, जो अनुचित है, उसकी आलोचना छोटे-बड़े सभी दलोंमें होती है, इतना समझ रखिए।' मैंने कहा—'आप लोग जितनी चाहें आलोचना चलाते रहें, मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं जाती हूँ।' सुधीर अकस्मात् न जाने कैसा हो गया,—उसका चेहरा सफेद-फक पड़ गया,—अपनेको सम्हालकर बोला—'अपनी मौसीको भी जताके न जाओगी?' मैंने कहा—'उन्हें जताया ही हुआ है, ब्याह होते ही मैं चली जाऊँगी, चाहे जितनी ही रात क्यों न हो जाय।' सुधीरने कहा—'क्या कल तुमसे एक बार मुलाकात हो सकती है?' मैंने कहा, 'नहीं।' उसने पूछा—'परसों?' मैंने कह दिया—'परसों भी नहीं।'।

'उसके बादके दिन?'

'नहीं, उसके बादके दिन भी नहीं।'

'कब तुम्हें समय मिलेगा?'

'मुझे अब समय नहीं मिलेगा।'

'पर मुझे जो एक बहुत ज़रूरी कामके बारेमें बातचीत करनी है?'

'तुम्हें शायद करनी हो, पर मुझे नहीं करनी।'—इतना कहकर मैं वहाँसे उठ खड़ी हुई।"

बन्दना विप्रदासको चुप देख फिर कहने लगी—“ सुधीर मुझे पहचानता न हो, सो बात नहीं; मेरे साथ आनेकी उसे हिम्मत न पड़ी, जहाँका तहाँ स्तब्ध-सा खड़ा रहा। मैं आकर गाड़ीमें बैठ गई। ”

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—“ इसके मानी क्या खातमा कर आना है बन्दना ? ज़रा-सा कलह हुआ समझो। इसमें अगर सन्देह हो तो मुलाकात होनेपर अपनी जीजीसे पूछ देखना। ”

बन्दना हँसी नहीं, गम्भीर होकर कहने लगी—“ किसीसे पूछने-ताछनेकी ज़रूरत नहीं मुखर्जी साहब। मैं जानती हूँ, हम लोगोंका सम्बन्ध खतम हो चुका, अब नहीं लौटनेका। ”

उसके मुँहकी ओर देखकर विप्रदास हतबुद्धि-सा हो गया, बोला—“ कह क्या रही हो बन्दना, इतनी बड़ी चीज़ क्या इतनी आसानीसे इतनी छोटी-सी बातसे खतम हो सकती है ? सुधीरके सदमेकी बात ही ज़रा सोच देखो। ”

बन्दनाने कहा—“ सोच देखी है मुखर्जी साहब। इस सदमेको सम्हाल लेनेमें सुधीरको ज्यादा दिन नहीं लगेंगे; मैं जानती हूँ, वह हेम-नलिनी ही उसे रास्ता बता देगी। मैं तो अपनी बात सोच रही थी। सिर्फ़ गाड़ीमें बैठी-बैठी ही नहीं सोचती रही, आकर बिस्तरपर लेटी तब भी सोचती रही, रात-भर नींद ही नहीं आई। अशान्ति ज़रूर रही, पर कष्ट मुझे नहीं हुआ। ”

“ कष्ट होगा गुस्सा दूर होनेपर। तब फिर सुधीरके लिए ही राह देखा करोगी। ”—यह कहकर विप्रदास हँस दिया।

इस हँसीमें भी बन्दना शरीक नहीं हुई। शान्त भावसे बोली—“ गुस्सा मुझे नहीं है। सिर्फ़ अनुताप होता है कि चले आते वक्त अगर कठोर बात मेरे मुँहसे न निकलती तो ठीक था। मैं दिखा आई हूँ कि दोष मानो उसीका है, जता आई हूँ कि मामो मैं मर्माहत होकर विदा हो रही हूँ। मगर सत्य तो यह नहीं है;—इस असत्य आचरणके लिए ही सिर्फ़ लज्जा अनुभव कर रही हूँ मुखर्जी साहब, और कोई बात नहीं। ” बातचीतके अन्तमें उसकी आँखें मानो भर आईं।

विप्रदासके मनका विस्मय कई-गुना बढ़ गया, अब वह समझ गया कि यह छल नहीं है। बोला—“ सुधीरको क्या सचमुच ही तुम अब नहीं चाहती ? ”

“ नहीं। ”

“ अब तक तो चाहती थीं ? इतनी आसानीसे वह प्रेम जाता कैसे रहा ? ”

“इतनी आसानीसे जाता रहा इसीसे इतनी आसानीसे इसका उत्तर पा गई। नहीं तो आपसे झूठ बोलना पड़ता।”—इतना कहकर वह कुछ देर चुपचाप देखती रही, फिर बोली—“आपने जानना चाहा है कि किसी दिन सुधीरको चाहती थी या नहीं। उस दिन सोचती थी कि सचमुच ही चाहती हूँ। किन्तु उसके बाद ही एक और आ गया आँखोंके आगे,—सुधीर हो गया विलीन। अब देखती हूँ कि वह भी विलीन हो गया है। सुनके शायद आपको घृणा होगी, आप सोचेंगे कि ऐसा तरल मन तो कभी नहीं देखा। और मैं जानती हूँ कि लड़कियोंके लिए यह शर्मकी बात है। कोई भी लड़की यह स्वीकार नहीं करना चाहती—यह तो मानो उनके चरित्रको ही कलुषित कर देता है। शायद मैं भी किसीके आगे इसे नहीं मान सकती, मगर मालूम नहीं क्यों, आपसे कोई भी बात कहनेमें मुझे शर्म नहीं लगती।”

विप्रदास चुप रहा। बन्दना कहने लगी—“हो सकता है कि यह मेरा स्वभाव हो, हो सकता है कि यह मेरी उम्रका स्वधर्म हो। अन्तःकरण शून्य नहीं रहना चाहता और चारों तरफ टटोलता फिरता है। अथवा, ऐसी ही शायद सब लड़कियोंकी प्रकृति हो, प्रेमका पात्र कौन है सो जिन्दगी-भर ढूँढ़ ही न पाती हों।”—इतना कहकर वह स्थिर होकर मन-ही-मन न जाने क्या सोचने लगी; उसके बाद कह उठी—“या, शायद ढूँढ़के पानेकी यह चीज़ ही न हो मुखर्जी-साहब,—सिर्फ मरीचिका ही हो।”

विप्रदास पहलेकी भाँति मौन ही रहा। बन्दनाकी मानो मनकी अर्गला खुल गई, कहने लगी—“इस सुधीरके साथ ही एक साल पहले मेरा ब्याह होना तय हो गया था, उसकी माके बीमार हो जानेसे ही न हो सका था। कल वहाँसे वापस आकर सोच रही थी कि ब्याह अगर उस दिन हो जाता तो आज क्या मेरा मन उसे इसी तरह ढकेलके गिरा देता? तब मनको किस चीज़से अपने वशमें रखती? धर्मबुद्धिसे? संस्कारसे? लेकिन स्वच्छन्द मन अगर शासन न मानना चाहता तो फिर क्या होता? जिन लोगोंके बीच रहकर इधरके कई दिन बिता आई हूँ, क्या ठीक उन्हींकी तरह हो जाती? उसी तरह षड्यन्त्र और दुबकाचोरीसे मनको परिपूर्ण करके सूखी हँसी ओठों तक खींच-खींचकर लोगोंको भुलावा देती फिरती? उसी तरह परस्पर एक दूसरेकी निन्दा करके, ईर्ष्या करके, शत्रुता करके? मगर आप बोल क्यों नहीं रहे हैं, मुखर्जी साहब?”

विप्रदासने कहा—“तुम्हारे मनके अन्दर जो आँधी चल रही है उसकी तेज रफ्तार के साथ मैं चल नहीं सकता बन्दना, इसीसे चुप हूँ।”

बन्दनाने कहा—“नहीं, सो नहीं होगा, इस तरह मैं आपको बचके निकल जाने न दूँगी। जवाब दीजिए ?”

“पर शान्त हुए बिना जवाब देनेसे फायदा क्या ? तुम्हारी आजकी यह अवस्था स्वाभाविक नहीं है, इस बातको तुम समझोगी कैसे ?”

“क्यों न समझूँगी मुखर्जी साहब, बुद्धि तो मेरी नष्ट नहीं हुई ?”

“नष्ट नहीं हुई किन्तु चक्करमें पड़कर धुँधली हो गई है। अभी रहने दो। शामके बाद जब स्थिरतासे बैठोगी तब बात करूँगा। दे सका तो तभी इसका जवाब भी दूँगा।”

“तो यही ठीक है। इस वक्त मुझे भी फुरसत नहीं है।”—कहकर बन्दना वहाँसे चली गई। असलमें देखा जाय तो उसे इतना काम करना था कि जिसकी हद नहीं। सवेरेसे अन्नदा लुट्टी लेकर कालीघाट गई है, उसके करनेका काम भी आज बन्दनाको ही करना है। कितने ही नौकर-चाकर हैं और कितने ही लड़के यहाँ रहकर स्कूल-कॉलेजमें पढ़ते हैं,—उनका न जाने कितना काम है। कामकी भीड़में उसे मालूम ही नहीं हुआ कि वह कल सारी रात सोई ही नहीं है और बहुत थकी हुई है।

×

×

×

संध्याके बाद विप्रदास जब रातका खाना खाकर निवृत्त हो चुका तब नीचेका सारा इन्तजाम करके बन्दना उसके पलंगके पास एक कुरसीपर आकर बैठ गई; और बोली—“मुखर्जी साहब, एक बातका सच-सच जवाब देंगे ?”

विप्रदासने कहा—“साधारणतः ऐसा ही तो किया करता हूँ। प्रश्न क्या है ?”

बन्दनाने कहा—“जीजीको आप क्या सचमुच ही प्यार करते हैं ? बचपनमें आप लोगोका ब्याह हुआ है—बहुत दिनोंकी बात है वह—कभी क्या इसमें अन्यथा नहीं हुआ ?”

विप्रदास दंग रह गया। ऐसी बात भी किसीके मनमें उठ सकती है, इसकी उसे कल्पना भी न थी। परन्तु अपनेको सम्हालकर उसने हँसते हुए कहा—
“बल्कि यह प्रश्न तुम अपनी जीजीसे ही करना।”

बन्दनाने कहा—“वे कैसे जान सकती हैं ? आपकी असली मनकी बात तो सुना है कि कोई भी नहीं जान पाता। न बताना चाहें तो मत बताइए, मैं किसी-न-किसी तरह समझ लूँगी; पर बतायें तो आपको सच बात ही कहनी पड़ेगी।”

“सच बात ही बताऊँगा, पर मुझपर क्या तुम्हें सन्देह होता है ?”

“होता है। आप बहुत बड़े आदमी हैं, फिर भी हैं आदमी ही। मालूम होता है कहींपर आप मानो बिलकुल अकेले हैं, वहाँ आपका कोई भी संगी-साथी नहीं है। क्या यह बात सच नहीं ?”

विप्रदासने उसकी बातका ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया, कहा—“स्त्रीको प्यार करना तो मेरा धर्म है बन्दना।”

बन्दनाने कहा—“धर्म जहाँ तक फैला हुआ है वहाँ तक आप खालिस हैं, पर उससे भी बढ़ा क्या संसारमें और कुछ नहीं है ?”

“देखनेमें तो नहीं आता बन्दना।”

बन्दनाने कहा—“मुझे दिखाई पड़ता है मुखर्जी साहब ! बताऊँ वह बात ?”

विप्रदासका चेहरा सहसा मानो पीला पड़ गया,—बलिष्ठ गोरे चेहरेपर जैसे खूनका चिह्न तक न रह गया हो; उसने दोनों हाथ सामनेकी ओर बढ़ाते हुए कहा—“नहीं नहीं, अब एक बात भी मत करो बन्दना। आज तुम अपने कमरेमें चली जाओ,—कल हो, परसों हो,—जब तुम शान्त स्वाभाविक अवस्थामें आ जाओगी, अपनेमें आलोचना करनेकी बुद्धि पा जाओगी तब मैं तुम्हें इसका जवाब दूँगा। या फिर, हो सकता है कि अपने आप ही समझ जाओगी कि तुम्हारी मौसीके घरपर जिन लोगोंने तुम्हारी बुद्धिको आच्छन्न कर दिया है वे ही सब कुछ नहीं हैं। धर्म जिनके लिए अत्याज्य है वे भी हैं, संसारमें उनका भी अस्तित्व है। नहीं नहीं, अब तर्क-वितर्क रहने दो,—तुम जाओ।”

बन्दना समझ गई कि यह आदेश है, अवहेलनाकी चीज़ नहीं। यही शायद वह चीज़ है जिससे घर-भरके लोग डरा करते हैं। बन्दना चुपचाप वहाँसे चल दी।

१९

दूसरे दिन शामको बन्दनाने आकर कहा—“मुखर्जी साहब फिर जा रही हूँ मौसीजीके घर। अबकी बार कुछ घंटोंके लिए नहीं, बल्कि जबतक मौसी मुझे बम्बई रवाना करनेका इन्तजाम नहीं करती तबतकके लिए।”

“यानी ?”

“यानी अरजेण्ट टेलिग्राम आया है, पिताजीका हुक्म है। कल ही सुबह मौसी गाड़ी भेजेंगी मुझे लिवानेके लिए।”

विप्रदासने कहा—“यानी समझ लिया जाय कि तुम्हारी मौसीमें बदला लेनेका अध्यवसाय और बुद्धिमत्ता है। यह शायद उन्हींके ज़वाबी तारका जवाब है। कहाँ है देखू तार ?”

“नहीं, आपको मैं नहीं दिखा सकती।”

सुनकर विप्रदास क्षण-भर स्तब्ध हो रहा, फिर ज़रा मुसकराकर बोला—“भगवान किसीका दर्प कायम नहीं रखते, यह उसीका नमूना है। अबतक धारणा थी कि मुझे किसी बातमें लपेटा नहीं जा सकता, पर अब देखता हूँ लपेटा जा सकता है। कमसे कम ऐसे आदमी भी हैं। तुम्हारी मौसीके दिमागमें ऐसी चाल भी आ गई। दो न ज़रा पढ़ देखू कि अभियोग कितना गहरा है।”—कहकर उसने हाथ बढ़ा दिया।

अबकी बार बन्दनाने तार उसके हाथमें दे दिया। राय साहबका लम्बा-चौड़ा तार था,—शुरूसे आखिर तक सब पढ़के उसे वापस देते हुए विप्रदासने कहा—“कुल-जमा तुम्हारे पिताजीने असंगत कुछ भी नहीं लिखा। निःस्वार्थ परोपकारमें आपत्ति आती है, बीमार रिश्तेदारकी तीमारदारी करने आना भी संसारमें आसान काम नहीं है।”

बन्दनाने पूछा—“मुझे क्या आप मौसीके घर ही लौट जानेके लिए कहेंगे ?”

“यही तो तुम्हारे पिताजीकी आज्ञा है बन्दना। यह तो बलरामपुरका मुखर्जियोंका घर नहीं है,—इस मामलेमें हुक्म देनेके मालिक मुखर्जी साहब नहीं हैं,—मौसी हैं—और फिर हुक्म दिलाया है पिताके मारफ्त, लिहाजा मानना ही पड़ेगा।”

बन्दनाने कहा—“यह तो आपके मामूली वचन हैं। पिताजीको यहाँका हाल कुछ भी नहीं मालूम, फिर भी उनका आदेश है, न्याय-अन्याय कुछ भी

क्यों न हो मानना ही पड़ेगा ? मौसीका घर क्या है सो तो आप जानते हैं । ”

विप्रदासने कहा—“ जानता तो नहीं, पर तुम्हारे मुँहसे सुना है कि वह अच्छी जगह नहीं । मैं स्वस्थ होता तो खुद जाकर तुम्हें बम्बई पहुँचा आता, पर उतनी शक्ति अभी नहीं है । ”

“ इस हालतमें आपको छोड़के चली जाऊँ ? जिस मौसीको पहचानती नहीं उन्हींकी जिद बढ़ी हो जायगी ? ”

“ मगर उपाय क्या है ? ”

“ उपाय यही है कि मैं नहीं जाऊँगी । ”

“ तो रहो । पिताजीको एक तार दे दो । पर मौसी लिबाने आयेंगी तो उनसे क्या कहोगी ? ”

बन्दनाने कहा—“ सिर्फ यही कि नहीं जा सकूँगी । इससे ज्यादा नहीं । ”

विप्रदासने कहा—“ तुम्हारी मौसी लेकिन इतनेसे ही शान्त न होगी । अबकी बार शायद घरपर मेरी माको तार देंगी । ”

यह सम्भावना बन्दनाके मनमें नहीं आई थी । विप्रदासकी बात सुनकर वह उद्विग्न हो उठी, बोली—“ आप ठीक ही कह रहे हैं मुखर्जी साहब, शायद यह काम वे कर भी चुकी होंगी—माको खबर देना मौसीने बाकी न रखा होगा । मगर क्यों, जानते हैं ? ”

विप्रदासने कहा—“ जानना तो सम्भव नहीं, पर इतना अन्दाजा लगाया जा सकता है कि इतना बड़ा उद्यम उनका निःस्वार्थ भी नहीं है, और न तुम्हारे विशेष कल्याणके लिए ही है । शायद उनके मनमें कोई खास बात होगी । ”

बन्दनाने कहा—“ क्या मनमें है सो मैं जानती हूँ । उनके भतीजे साहब आये हैं वैरिटररी पास करके,—मौसीने उनका मुझसे आलाप-परिचय करा दिया है । उनका दृढ़ विश्वास है कि वही मेरे लिए योग्य वर हैं । कारण अपने पिताकी मैं एकलौती लड़की हूँ, और जितनी सम्पत्ति वे छोड़ जायेंगे उसकी आमदनीसे कुछ उपार्जन बगैर किये भी—उनके भतीजेकी आसानीसे जिन्दगी बीत जायगी । ”

विप्रदासने कहा—“ भतीजेकी हित-चिन्ता करना बुआके लिए कोई दोषकी बात नहीं । लड़का देखनेमें कैसा है ? ”

“ अच्छा है । ”

“ मेरे जैसा होगा ? ”

बन्दना हँस दी, बोली—“ यह आपकी अहंकारकी बात हुई। मनमें खूब अच्छी तरह समझते हैं कि इतना रूप दुनियामें और किसीके नहीं है। मगर ऐसी तुलना करने बैठेंगे तो संसारकी सब लड़कियोंको ब्रॉरी रह जाना पड़ेगा मुखर्जी साहब। सिर्फ आपकी तरफ देख-देखकर ही उन्हें अपने दिन काटने पड़ेंगे। फिर भी कहूँगी कि देखनेमें अशोक अच्छा ही है, दोष-त्रुटियाँ ढूँढ़ना कमसे कम मेरे लिए तो न सोहेगा। ”

“ तो पसन्द है याँ कहो। ”

“ अगर हुआ भी हो तो उस पसन्दको कोई दोष नहीं दे सकेगा, इतना कह सकती हूँ। ”—इतना कहकर बन्दना उठके खड़ी हो गई, बोली—“ पाँच बज रहे हैं, आपका बाली पीनेका समय हो गया—जाऊँ ले आऊँ। इस बीचमें अशोककी बात और भी ज़रा सोच रखिए। ”—कहके वह चली गई। पाँच एक मिनट बाद वह वापस आई; उसके हाथमें चाँदीके कटोरेमें बाली थी—बरफके अन्दर रखके ठंडी की हुई—उसमें नीबू निचोड़ती हुई वह बोली—“ यह सबकी सब पी लेनी होगी, छोड़ देनेसे काम न चलेगा। सेवाकी त्रुटि दिखाकर कोई मुझसे कैफियत माँगे, सो मैं नहीं होने दूँगी। ”

विप्रदासने कहा—“ जुल्म करनेकी विद्या तुमने सोलहों आने सीख ली है, किसीके सामने दबना नहीं पड़ेगा तुम्हें, इतना तो मैं कह सकता हूँ। ”

बन्दनाने कहा—“ नहीं। कोई पूछेगा तो कह दूँगी, मुखर्जी साहबपर हाथ चलाकर पक्की हो गई हूँ। ”

×

×

×

×

बाली पी चुकनेके बाद जूठा कटोरा हाथमें लिये बन्दना चली जा रही थी, जाते-जाते मुड़कर खड़ी होगई, बोली—“ मेरी एक बातका जवाब देंगे मुखर्जी साहब ? ”

“ कौनसी बातका बन्दना ? ”

“ संसारमें सबसे ज्यादा आपको कौन प्यार करता है, बता सकते हैं ? ”

“ बता सकता हूँ। ”

“ बताइए तो क्या नाम है उसका। ”

“ उसका नाम है बन्दना देवी। ”

सुनते ही बन्दना लहमे-भरमें चटसे बाहर चली गई। परन्तु पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही फिर आकर कुरसी खींचके विप्रदासके बिस्तरके पास बैठ गई। विप्रदासने हँसते हुए पूछा—“ इस तरह चटसे भाग क्यों गई थी बताओ तो ? ”

बन्दना पहले तो कुछ जवाब न दे सकी, फिर धीरे धीरे बोली—“ बात आपकी अचानक मुझसे सही नहीं गई मुखर्जी साहब, मालूम हुआ जैसे मेरी कोई भद्दी चोरी आपने पकड़ ली हो । ”

“ इसीसे अब तक मेरी तरफ तुमसे देखते नहीं बनता क्यों ? ”

“ सो क्यों न बनेगा । ”—कहकर वह जबरदस्ती मुँह उठाकर हँसने लगी, किन्तु फिर भी मारे शरमके उसका चेहरा लाल-सुर्ख हो उठा। बादमें, अपनेको सम्हालते हुए उसने कहा—“ कैसे आपने यह बात जान ली सो बताइए ? ”

विप्रदासने कहा—“ यह पूछना बिलकुल फजूल है बन्दना। मुझे क्या तुमने बिलकुल पाषाण ही समझ लिया है कि इतनी-सी बातको मैं न समझ सकूँ ? इसके सिवा सन्देह अगर कभी रहा भी हो, तो आज तुम्हारी तरफ देखके अब नहीं रहा । ”

बन्दनाने फिर मुँह झुका लिया। विप्रदासने कहा—“ किन्तु इससे तुम यह नहीं कर सकतीं, मुँह उठाकर तुम्हें देखना ही पड़ेगा। शरमाने लायक तुमने काम नहीं किया, और फिर मेरे सामने तुम्हें शरमानेकी कोई ज़रूरत नहीं। देखो मेरी तरफ, मुँह उठाओ, सुनो मेरी बात । ”

यह वही आदेश है। बन्दनाने मुँह उठाकर देखा, फिर कुछ देर चुप रहकर बोली—“ आप शायद मुझपर बहुत नाराज़ हुए हैं, न, मुखर्जी साहब ? ”

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—“ ज़रा भी नहीं। यह क्या नाराज़ होनेकी बात है ? सिर्फ़ मेरे मनकी आशा इतनी-सी है कि इस भूलको तुम खुद ही किसी दिन पकड़ लोगी। और उसी दिन इसका प्रतीकार होगा । ”

“ मगर पकड़ाई अगर किसी भी दिन न पड़े तो ? इसे भूल ही कभी न समझ पाई तो ? ”

“ पाओगी ही। इससे संसारमें कितने अनर्थोंका सूत्रपात हो सकता है— इस बातको अगर न समझ सको तो मैं समझूँगा कि तुमने मुझे प्यार ही नहीं किया। सुधीरको प्यार करनेके समान यह भी तुम्हारी एक खामखयाली है—मनके अन्दर किसीको खींच लाकर सिर्फ़ अपनेको बहलाना है। इससे, ज्यादा नहीं । ”

बन्दनाका चेहरा एक क्षणमें ग्लान हो उठा, वह अत्यन्त व्यथित कंठसे बोली—
 “सुधीरके साथ तुलना न कीजिए मुखर्जी साहब। यह मुझसे न सहा जायगा।
 पर इससे संसारमें अनर्थोंका सूत्रपात हो सकता है, यह बात आपकी मानूँगी।
 मानूँगी कि यह अमंगलको खींच लाता है, पर इसीलिए इसे झूठ नहीं मानूँगी।
 झूठ ही अगर होता तो ज़रा-सा भी प्यार क्या आपका पा सकती थी ? नहीं
 पाया क्या मैं ? ”

साँस रोके हुए विप्रदास उसकी बातें सुन रहा था, बात खतम होते ही ज्यों
 ही बन्दनाने मुँह उठाकर विप्रदासकी तरफ देखा त्यों ही वह चौंक पड़ा और
 बोला—“पाया क्यों नहीं बन्दना, तुमने बहुत-सा पाया है। नहीं तो तुम्हारे
 हाथका मैं खाता कैसे ? तुम्हारी रात-दिनकी सेवा मैं किस ज़ोरसे ले सकता
 था ? मगर इससे क्या मैं ग्लानिमें या अधर्ममें उतर आ सकता हूँ, या तुम्हें
 उतार ला सकता हूँ ? जो लोग मेरी तरफ देखकर हमेशासे विश्वासके बलपर
 सिर ऊँचा किये हुए हैं, सब-कुछ तोड़-फोड़कर क्या मैं उन्हें नीचा कर दूँगा ?
 क्या तुम यही कहना चाहती हो ? ”

बन्दनाने दृप्त स्वरमें कहा—“तो आप भी स्वीकार कीजिए कि आज जिसे
 आप छोड़ नहीं सकते वह है आपका दम्भ। बताइए सच-सच, उन लोगोंकी
 दृष्टिमें बड़ा बनके रहनेके मोहको ही आपने बड़ा मान लिया है। नहीं तो
 और किस बातकी ग्लानि है मुखर्जी साहब,—कैसे हम अधर्म मानें ? मनुष्यकी
 मनगदन्त एक व्यवस्थाको—मनुष्यने ही बार-बार जिसे माना है और बार-बार
 तोड़ा है—उसीको ? आप भले ही मान लें, पर मैं नहीं मान सकूँगी। ”

विप्रदास गम्भीर हो उठा, बोला—“तुम्हारे न माननेपर भी मैं मान
 सकूँगा और मँनूँगा, उसीसे मेरा काम चल जायगा। अँग्रेजी किताबें तुमने
 बहुत-सी पढ़ी हैं बन्दना, मौसीके घर आलोचनाएँ भी बहुत सुनी होंगी, उन
 सबको भूलनेमें समय लगेगा मालूम होता है। ”

बन्दनाने कहा—“आप मेरा मज़ाक कर रहे हैं, लेकिन मैं ज़रा भी मज़ाक
 नहीं कर रही मुखर्जी साहब, जो भी कुछ कहा है, मैंने सब सत्य कहा है। ”

“तो तो समझ गया; पर इस पागलपनको मगजमें भर किसने दिया ? ”

“आपने। ”

“कहती क्या हो ? यह अधर्म-बुद्धि आखिर दी खुद मैंने ही तुमको ? ”

“हाँ, आपने ही दी है। शायद अनजानमें दी हो, पर आपके सिवा और किसीने नहीं दी।”

इस बार विप्रदास निर्वाक-विस्मयसे उसकी ओर देखता रह गया। बन्दना कहने लगी—“अधर्म बताकर जिस चीज़की आपने निन्दा की है उसे तो मैं मानती नहीं,—मैं जानती हूँ कि जिसे आपने एकाग्र चित्तसे धर्म समझके स्वीकार किया है, वह धर्म नहीं बल्कि सिर्फ आपका संस्कार है। अत्यन्त दृढ़ संस्कार है, फिर भी उससे बड़ा कुछ नहीं।”

विप्रदासने सिर हिलाकर स्वीकार किया और कहा—“हो सकता है कि यह बात तुम्हारी सच हो बन्दना, यह मेरा संस्कार हो,—सुदृढ़ संस्कार। परन्तु मनुष्यका धर्म जब इस संस्कारका रूप धारण कर लेता है बन्दना, तभी वह यथार्थ हो जाता है, तभी वह सहज स्वाभाविक चीज़ बन जाता है। जीवनके कर्तव्यमें फिर कोई संघर्ष या टक्कर नहीं लगती, उसे माननेके लिए अपने ही साथ लड़-लड़कर नहीं मरना पड़ता। तब बुद्धि शान्त हो जाती है, अबाध जल-स्रोतके समान वह सहज स्वाभाविक तरीकेसे बहती रहती है। शायद इसीको मैंने उस दिन कहा था—यह है विप्रदासका अत्याज्य धर्म—इसमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं है।”

“कभी किसी भी दिन इसमें परिवर्तन नहीं आ सकता मुखर्जी साहब ?”

“अब तक तो ऐसा ही जानता हूँ बन्दना। आज भी मैं यह नहीं सोच सकता कि इस जीवनमें इसमें कोई परिवर्तन हो सकता है।”

इतनी देरमें बन्दनाकी आँखें भर आईं; विप्रदासने बड़े स्नेहसे उसका हाथ खींचते हुए कहा—“लेकिन परिवर्तनकी ज़रूरत क्या है बन्दना ? प्यार तुमसे किया है मैंने,—वह प्यार तुम्हारा मेरे मनके भीतर रहेगा,—अबसे वह देगा मुझे दुःखमें सान्त्वना और कमजोरीमें बल। भार जब अकेले मुझसे न ढोया जायगा तब मैं तुम्हें पुकारूँगा। वह भी आजसे तुम्हारे लिए सुरक्षित रख दिया है ऊँची जगह। आओगी तो तब ?”

बन्दनाने बाँये हाथसे अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—“आऊँगी, अगर आनेकी शक्ति रही—रास्ता भी अगर तब खुला रहा,—नहीं तो नहीं आ सकूँगी मुखर्जी साहब।”

बात सुनकर विप्रदास मानो चौंक पड़ा, बोला—“ठीक ही तो है ! ठीक ही तो है ! आनेका रास्ता अगर खुला रहा—इमेशाके लिए अगर बन्दन

हो गया, तब आना ज़रूर लेकिन; अभिमानसे मुँह मत मोड़ लेना । ”

बन्दनाने फिर अपने आँसू पोंछते हुए कहा—“ मेरी एक भीख लेनी रही आपसे मुखर्जी साहब, मेरी बात आप किसीसे कहें नहीं । ”

“ नहीं, नहीं कहूँगा । मेरा कोई ऐसा आदमी ही नहीं, जिसे मैं मनकी बात बताऊँ, यह तो तुम जान ही चुकी हो । ”

“ हाँ, जान चुकी हूँ । ”

इसके बाद दोनों कुछ देर चुप रहे । फिर विप्रदासने कहा—“ इस विशाल जगत्‌में मैं इतना ज्यादा अकेला हूँ, यह बात तुमने कैसे समझी थी बन्दना ? ”

बन्दनाने कहा—“ क्या मालूम कैसे समझी थी । आपके घरसे नाराज़ होकर चली आई तब आप आये थे साथ । गाड़ीमें उन मतवाले साहबोंकी बात याद है ? ऐसी कुछ खास बात नहीं थी—फिर भी उस वक्त मालूम हुआ कि जिन्हें हम लोग अपने चारों तरफ़ देखा करते हैं उनमेंके आप नहीं हैं, अकेले कोई भार अपने सिर लादनेमें आपको दुविधा नहीं होती । यही बात कही थी उस दिन द्विजू बाबूने,—मैंने मिला-मिलकर देखा कि आप किसीसे भी कोई प्रत्याशा नहीं करते । रातको बिस्तरपर पड़े-पड़े आपका ही खयाल आता रहा—किसी भी तरह नींद ही नहीं आई । आखिरी रातमें उठी तो देखा कि नीचे पूजा-घरमें बत्ती जल रही है, आप बैठे हुए हैं ध्यानमें । एकटक देखते-देखते भोर हो गया । कहीं नौकर-चाकर न देख लें, इस डरसे अपने कमरेमें भाग आई । आपकी उस मूर्तिको फिर भूल ही न सकी मुखर्जी साहब, अँखें मींचते ही मुझे दिखाई देने लगती है । ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ देखा था क्या मुझे पूजा करते हुए ? ”

बन्दनाने कहा—“ पूजा करते हुए तो आपकी माको भी देखा है, पर वह यह नहीं । वह अलग चीज़ है । आप किसका ध्यान करते हैं मुखर्जी साहब ? ”

विप्रदासने फिर हँसते हुए जवाब दिया—“ यह जानकर तुम क्या करोगी ? तुम तो करोगी नहीं । ”

“ नहीं, करूँगी तो नहीं; फिर भी जाननेकी इच्छा होती है । ”

विप्रदास चुप रहा । बन्दना कहने लगी—“ मुझे उस दिन पहले-पहल यह मालूम हुआ कि सबके बीच रहते हुए भी आप अलगा हैं, अकेले हैं । जहाँ चढ़नेपर आपका साथी बना जा सकता है उतनी ऊँचाईपर ये लोग कोई भी नहीं चढ़ सकते । और एक बात पूछूँगी मुखर्जी साहब, बतायेंगे ? ”

“ कौनसी बात बन्दना ? ”

“ नारीके प्रेमकी अब शायद आपको ज़रूरत नहीं है न ? ”

“ इस प्रश्नके मानी ? ”

“ मानी नहीं जानती, ऐसे ही पूछती हूँ । इसकी शायद अब आप कामना नहीं करते,—आपकी दृष्टिमें अब यह चीज़ बहुत ही तुच्छ हो गई है ।—सच है या नहीं, बताइए ? ”

विप्रदासने जवाब नहीं दिया, सिर्फ़ मुसकराता हुआ उसकी ओर देखता रहा ।

इतनेमें नीचेके प्रांगणमें सहसा गाड़ीकी आवाज़ सुनाई दी, और, द्विज-दासका कंठस्वर सुनाई दिया । दूसरे ही क्षण दरवाज़ेके पास आकर अन्नदाने कहा—“ द्विजू आ गया विपिन । ”

“ अकेला ही है क्या ? या, और भी कोई साथ है ? ”

“ नहीं, अकेला ही दीख पड़ता है । और कोई नहीं है । ”

सुनकर बन्दना चंचल हो उठी, बोली—“ जाती हूँ मुखर्जी साहब, देखें उनके लिए खाने-पीनेका इंतजाम ठीक है या नहीं । ” और वह उठके चली गई ।

×

×

×

सबेरे द्विजदासने आकर जब विप्रदासके पाँव छूकर प्रणाम किया, बन्दना तब कमरेके एक कोनेमें पूजाकी तैयारियाँ कर रही थी । द्विजदासने कहा—“ इसी पंचमीके दिन मा तालाबकी प्रतिष्ठा करवा रही हैं । बड़ा-भारी समारोह है भाई साहब । ”

“ माके काममें तो बड़ा-भारी ही समारोह हुआ करता है द्विजू । इसमें चिन्ताकी क्या बात है ? ”—कहकर विप्रदास हँस दिया ।

द्विजदासने कहा—“ सो तो है ही । अबकी बार संयोग मिल गया है वासूके आरोग्य होनेकी मन्त्र-पूजाका—उसे भी एक तरहका अश्वमेध-यज्ञ ही समझिए । अध्यापक-पंडितोंकी विदार्थकी फेहरिस्त तैयार हो रही है,—कुटुम्बी सज्जन और अतिथि-अभ्यागतोंकी जो संक्षिप्त सूची भाभीके मुँहसे सुनी है उससे आशंका हो रही है कि अबकी बार आपके धनपर ये लोग ज़रा गहरा ही पंजा मारेंगे । समय रहते सावधान हो जाइए । ”

बन्दनाने मुँह नहीं उठाया; पर अपनेको सम्हाल न सकेसे हँसते-हँसते स्लोट-

पोट हो गई। विप्रदास जमींदार और दुनियाबी आदमी हैं, कंजूस हैं—सिवा एक माके, इस बदनामीके प्रचार करनेका मौका मिल जाय तो कोई रियायत नहीं करता। विप्रदास भी इस हँसीमें शामिल होता हुआ, बोला—“लेकिन तेरी पारी है। अबकी बार खर्च तेरा होगा।”

“मुझे कोई आपत्ति नहीं अगर मेरे पास कुछ हो। पर तब फिर व्यवस्थामें कुछ रद्दोबदल करना होगा। विदाई जिन लोगोंको दी जायगी वह ‘टोल*’ या चटशालाका पण्डित-समाज न होगा, बल्कि ‘टोल’ का दरवाजा बन्द करके जिन्हें बाहर ढकेल रखा गया है—वे होंगे।”

विप्रदासने पूर्ववत् हँसते हुए कहा—“टोलोंपर तेरी इतनी नाराजगी क्यों है? लोगोंके मुँहसे उनकी सिर्फ निन्दा ही निन्दा सुन ली है, खुद तो कभी आँखोंसे देखा नहीं तैने। उन लोगोंके दलमें शामिल होनेसे शायद मुझे भी तेरे शासनमें खानेको न मिलेगा।”

द्विजदासने पास आकर और एक बार पाँव छुए, और कहा—“यह बात मत कहिए। आप दोनों दलोंसे बाहरके हैं, और तीसरा स्थान कौनसा है सो भी मुझे नहीं मालूम। मैंने तो सिर्फ इतना जान रखा है कि मेरे भाई-साहब हम लोगोंकी विचारधाराके बाहरके हैं।”

विप्रदासने उसकी बातको दबा दिया। बोला—“मेरी बीमारकी बात मा-को तो नहीं मालूम हुई?”

“नहीं। पर मालूम हो जाना इससे अच्छा होता, तालाबकी प्रतिष्ठा कमसे कम स्थगित हो जाती।”

“नाते-रिश्तेदारोंको बुलानेका इंतजाम हो गया?”

“हो रहा है। भूत भविष्य वर्तमानके सभी रिश्तेदारोंको बुलानेका। सकन्या अक्षय बाबूके लिए भी आमंत्रण पत्र भेजा गया है। माकी धारणा है कि विराट् आयोजनमें मैत्रेयीकी भी अग्नि-परीक्षा हो जायगी। मेरे ऊपर भार पड़ा है उन लोगोंको यहाँसे ले जानेका।”

“माने और किसीको लिवा ले जानेको नहीं कहा?”

“हाँ, अनु-दीदीको भी ले जाना होगा। कॉलेजके लड़कोंमेंसे अगर कोई जाना चाहे तो वे भी चल सकते हैं।”

*प्राचीन कालकी संस्कृत-पाठशालाओंको बंगालमें ‘टोल’ कहते हैं। इनमें भिन्न जातिके छात्रोंके लिए स्थान न था।

“ तेरी भाभीकी कोई फरमाइश नहीं है ? ”

“ नहीं । ”

नीचे फिर मोटरकी आवाज सुनाई दी । हॉर्नकी परिचित आवाज कानमें पड़ते ही बन्दनाने खिड़कीसे झाँककर कहा—“ मौसाजीकी गाड़ी है । मैं देखूँ जाकर । आप संध्या-पूजा कर लीजिए—देर हो रही है । ”—कहकर वह नीचे चली गई ।

“ मैं भी जाऊँ, हाथ-मुँह धोऊँ जाकर । घंटे-भर बाद आऊँगा । ”—कहकर द्विजदास भी चला गया ।

विप्रदासकी संध्या-पूजा समाप्त हुई । आज फल-मूल बगैरह दे गई अन्नदा । मौसीके घरसे जो लड़की बन्दनाको लेने आई है, बन्दना उसीके साथ व्यस्त है—यह खबर अन्नदाने ही दी ।

द्विजदास यथासमय वापस आ गया । हाथमें उसके लम्बी-चौड़ी एक फेहरिस्त है, कलकत्तेकी प्रायः आधी चीज़-वस्त खरीदकर गाड़ी भरके चालान करना है । दोनों भाई जत्र कि उस फेहरिस्तको लेकर व्यस्त थे, तब दरवाजेके पाससे प्रार्थना आई—“ मुखर्जी साहब, भीतर आ सकती हूँ क्या ? पैरोंमें लेकिन जूते पहने हूँ ? ”

“ जूते ? सो पहने रहो, आओ । ”

बन्दना कमरेके भीतर आ गई । जिस वेशमें बलरामपुरमें उसे पहले-पहल देखा था, वही वेश था उसका । विप्रदासने अत्यन्त आश्चर्यके साथ पूछा—“ कहीं जा रही हो क्या ? ”

“ हाँ, मौसीके घर । ”

“ कब लौटोगी ? ”

“ लौटनेकी बात तो नहीं मालूम मुखर्जी साहब । ”—इतना कहकर उसने झुकके प्रणाम किया, किन्तु और दिनकी तरह पाँव नहीं छुए । और, बगैर मुँह उठाये माथेसे हाथ लगाकर उसने द्विजदासको भी नमस्कार किया; उसके बाद वह कमरेसे बाहर निकल गई ।

२०

द्विजदासने पूछा—“बन्दना, अचानक कैसे चली गई ? मेरा आ जाना ही कारण है क्या ? ”

विप्रदासने कहा—“नहीं । उसके पिताने तार भेजा है कि जब तक बम्बई नहीं जाती तब तक मौसीके घर जाकर रहे । ”

“पर अचानक मौसी कहाँसे निकल आई ? बन्दनाने मेरे साथ तो लगभग बात ही नहीं की, जबसे आया हूँ तबसे अलग-सलग ही रहीं, उसके बाद सबेरा होते-न-होते चल दीं । एक नमस्कार ज़रूर कर गई, लेकिन वह भी मुँह फेरकर । मेरे विरुद्ध हो क्या गया उन्हें ? ”

विप्रदासने उसके प्रश्नको टाल दिया; और मौसीकी बात संक्षेपमें सुनाकर कहा—“मेरी बीमारीसे डरकर अनु-दीदी उसे मौसीके घरसे ही लिवा लाई थी—मेरी तीमारदारीके लिए । काफी सेवा-शुश्रूषा की उसने । उसके प्रति तुम लोगोंको कृतज्ञ होना चाहिए । ”

द्विजदासने कहा—“नहीं चाहिए यह मैं नहीं कहता, पर आपकी सेवा करनेका मौका मिलना भी एक सौभाग्यकी बात है । इस मूल्यको अगर वे भी महसूस कर सकी हों तो कृतज्ञता उनपर हम लोगोंकी लेनी रही । ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“तू बड़ा नराधम है । ”

द्विजदासने कहा—“नराधम हूँ, पर निर्बोध नहीं । मेरी बात जाने दीजिए । पर इस सेवा करनेकी बात माके कानों तक पहुँच गई तो वे हमेशाके लिए हमारी माको ही खरीद रखेंगी । यह क्या कुछ कम सम्पदा है ? ”

सुनंके विप्रदास हँस दिया, बोला—“माको इतने दिनों बाद तू पहचान गया मालूम होता है ? ”

द्विजदासने कहा—“अगर पहचान ही गया होऊँ तो इस बातको सिर्फ आप ही जान रखिए । मैं माका कुपुत्र हूँ, कुलाङ्गार हूँ—उनके तई यही परिचय रहने दीजिए । इसे अब हिलाने-डुलानेकी ज़रूरत नहीं भाई साहब । ”

“मगर क्यों ? मा, तुझपर विश्वास कर सकें, तुझे अच्छा समझने लगे—यह क्या तू सचमुच ही नहीं चाहता ? इस अभिमानसे लाभ क्या सो तो बता ? ”

“लाभ क्या है सो नहीं जानता, पर लोभ विशेष नहीं है । मुझे आपका

स्नेह मिला है, भाभीका प्यार मिला है, यही मेरे लिए सात राजाओंके धनके बराबर है, सात-जनममें दोनों हाथोंसे बाँटकर भी इसे खतम नहीं कर सकूँगा।”—पर कहते-कहते ही उसका चेहरा मारे शर्मके सुख हो उठा। हृदयके इन आवेग-उच्छ्वासोंको प्रकट करनेमें वह हमेशासे ही पराङ्मुख रहा है,—हमेशा निस्पृहताके आवरणसे अपनेको ढकके चलना ही उसकी प्रकृति है,—एक क्षणमें अपनेको सम्हालता हुआ बोला—“पर इस तरहकी आलोचना करना फिजूल है। जिस बातकी ज़रूरत है वह यह है कि मेरी दृष्टिमें बन्दनाका इस तरह चला जाना उसकी नाराज़गी ही मालूम होती है। इसके मानी बता दीजिए ?”

“मानी शायद यही है कि तू जब कि आ पहुँचा है तो फिर उसकी यहाँ ज़रूरत नहीं रही। अबसे सेवा-शुश्रूषाका भार तेरे ऊपर है।”—इतना कहकर विप्रदास हँसने लगा।

द्विजदासने कहा—“आप मज़ाक कर रहे हैं, लेकिन मैं कहता हूँ कि ये सब अंग्रेजी-नवीस लड़कियाँ इसी दम्भमें एक दिन मर मिटेंगी। आपकी सेवा करनेका दिन कभी न आये, पर आ जानेपर यह प्रमाणित होनेमें देर न लगेगी कि भाई-साहबकी सेवा करनेमें द्विजको हरा देना दस-दस बन्दनाओंके भी बूतेसे बाहरकी बात है। यह बात उनसे कह दीजिएगा।”

स्नेह-हास्यसे विप्रदासका चेहरा प्रदीप्त हो उठा, बोला—“अच्छा कह दूँगा; पर वह विश्वास करेगी या नहीं, सो नहीं मालूम। लेकिन, उस परीक्षाकी ज़रूरत मेरे लिए नहीं है,—है सिर्फ़ एकके लिए, वे हैं मा। तुम दोनोंमें समझौता हो जाना चाहिए,—समझा तू।”

द्विजदासने कहा—“नहीं भाई साहब, नहीं समझा। लेकिन मा जब हैं तब अगर जिन्दा रहा तो एक दिन समझौता हो ही जायगा, पर अभी ज़रूरत क्यों आ पड़ी, यही समझमें नहीं आ रहा है।”—कहकर कुछ देर चुप रहा, फिर कहने लगा—“मेरी तकदीरमें सभी-कुछ उल्टा है। पिताजीने जन्म दिया, पर वे दे नहीं गये एक कानीकौड़ीकी सम्पत्ति,—सो दी आपने। माने गर्भमें धारण किया, पर पाल-पोसकर बड़ा किया अबदा-दीदीने; और बाकीका सब भार उठाकर आदमी बनाया भाभीने,—दोनोंने ही पराये घासे आकर सब-कुछ किया। ‘पिता स्वर्गः पिता धर्मः’ और ‘स्वर्गादपि गरीयसी’—ये

श्लोक पद-पदकर मनको अब कब तक चंगा बनाये रखूँ भाई साहब, आप ही बताइए ? ”

विप्रदासने कहा—“ माके मामलेको लेकर अब वकालत नहीं करूँगा, यह तू अपने आप ही किसी दिन समझ जायगा, पर पिताजीके संबंधमें जो धारणा तेरी है—वह गलत है। आधी सम्पत्तिका सचमुच ही तू मालिक है। ”

द्विजदासने कहा—“ हो सकता है सच, पर पिताजीके मरनेके बाद, कमरेका दरवाज़ा बन्द करके उनका ‘ वसीयतनामा ’ क्या आपने नहीं जला डाला ? ”

“ किसने कहा तुझसे ? ”

“ अब तक जो मेरी सब तरफसे रक्षा करती आई हैं उन्हींके मुँहसे सुना है यह। ”

“ सो हो सकता है, पर तेरी भाभीने तो वह वसीयतनामा पढ़ा नहीं। ऐसा भी तो हो सकता है कि पिताजी तुझको ही सब दे गये हों और इसीलिए गुस्सेमें आकर मैंने उसे जला दिया हो। यह असंभव तो नहीं। ”

सुनकर कुतूहलकी हँसीसे पहले तो वह खूब हँस लिया, फिर बोला—“ भाई साहब, आप तो कभी झूठ नहीं बोलते। द्वापरमें युधिष्ठिरके झूठको नोट कर गये हैं वेदव्यास, और कलियुगमें आपके झूठको नोट कर रखेगा यह द्विजदास। दोनों ही समान होंगे। खैर, कुछ भी हो, इतना समझ लिया कि कर्मफलके विपाकमें पड़ जानेसे सब कुछ सम्भव हो सकता है। अब और ज्यादा पाप न बढ़ाऊँगा, बताइए अबसे मुझे क्या क्या करना होगा ? ”

“ हम लोगोंका कारोबार और ज़मींदारीका काम सब-कुछ तुझे ही देखना-भालना पड़ेगा। ”

“ मगर क्यों ? किसलिए इतना भार मैं ढोऊँ, मुझे समझा दीजिए। क्या अकेले आपसे सम्हालते नहीं बनता ? असंभव बात है। मैं निकम्मा नालायक हुआ जा रहा हूँ इसलिए ? नहीं, सो बात नहीं, फिर भी मा पूछें तो उनसे कह दीजिएगा कि लायकीकी मुझे ज़रूरत नहीं, मैं नालायक रहकर ही दिन काट दूँगा, उन्हें सोच-फिकर करनेकी ज़रूरत नहीं। आपके रहते हुए रुपये पैसे ज़मीन-जायदादका बोझ मैं नहीं ढोऊँगा। अन्तमें क्या मैं भी आप ही जैसा घोरतर सम्पत्तिशाली दुनियावी हो जाऊँ ? लोग कहेंगे, उसकी शिरा-जोमें खून नहीं बहता, बहता है रुपयोंका स्रोत। ”—परन्तु कहते कहते ही उसने देखा कि विप्रदास अन्यमनस्क होकर न जाने क्या सोच रहे हैं,

उसकी बातोंपर उनका ध्यान ही नहीं। साधारणतः ऐसा नहीं होता,— विप्रदासका ऐसा स्वभाव नहीं। इसलिए उसे कुछ आश्चर्य हुआ, बोला— “भाई साहब, सचमुच ही क्या आप चाहते हैं कि मैं काम-धन्धा देखा करूँ, उस स्वदेश-सेवाको जलाञ्जलि देकर जो मेरा हमेशाका स्वप्न है ?”

विप्रदासने उसके चेहरेकी ओर गौरसे देखते हुए कहा—“जलाञ्जलि दे दे, ऐसी बात तो तुझसे कभी नहीं कही द्विजू। जो तेरा स्वप्न है वह बना रहे,— हमेशा बना रहे, फिर भी मैं कहता हूँ कि घर-गृहस्थीका भार तू ले ले।”

“पर क्यों, सो तो बताइए ? कारण बगैर जाने मैं हर्गिज यह बात नहीं माननेका।”

विप्रदास एक क्षण मौन रहकर बोला—“इसका कारण तो बहुत ही स्पष्ट है द्विजू। आज मैं हूँ, पर ऐसा भी तो हो सकता है कि मैं न रहूँ।”

द्विजदास जोर देकर कह उठा—“नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप न हों—कहीं भी न हों, यह मैं सोच ही नहीं सकता।”

उसके विश्वासकी प्रवृत्ताने विप्रदासको चोट पहुँचाई, परन्तु उसने हँसते हुए कहा—“संसारमें सब कुछ हो सकता है रे, यहाँ तक कि असंभव भी। इस बातको सोचते हुए जो लोग डरते हैं वे अपनेको धोखा देते हैं। और ऐसा भी तो हो सकता है कि मैं थक गया होऊँ, मुझे छुट्टीकी ज़रूरत हो—तो भी छुट्टी न देगा तू ?”

“नहीं भाई साहब, न दे सकूँगा। इससे तो बहुत आसान होगा आपका आदेश पालन करना। बताइए, कबसे मुझे क्या करना होगा ?”

“आजसे इस घरका सारा भार तुझे लेना पड़ेगा।”

“आजसे ही ? इतनी जल्दी ? अच्छी बात है यही सही। आपकी हुकमउदूली न करूँगा।”—यह कहकर वह चला गया, पर भाईके ये शब्द सुनता गया—“तेरे कहनेकी ज़रूरत नहीं है रे, मैं जानता हूँ कि मेरी आज्ञा भंग करनेवाला तू नहीं है।”

×

×

×

×

द्विजदासने काम करना शुरू कर दिया। वह आलसी है, अकर्मण्य है, उदासीन है, यही सबकी हमेशाकी शिकायत थी; पर अपने भाई-साहबके आदेशसे माके व्रत-प्रतिष्ठानुष्ठानके सम्पूर्ण आयोजनका सारा भार जब अकेले उसीपर आ

पड़ा तब अपनी उस बदनामीको अप्रमाणित करनेमें उसे ज्यादा समय न लगा। इस तरहका अनभ्यस्त भारी कार्यभार वह इतनी आसानीसे उठा लेगा, इतनी आशा विप्रदासको न थी; उसकी आलस्यहीन शृंखलाबद्ध कार्यपद्धताको देखकर वह एकबारगी आश्चर्यचकित हो गया। जो कुछ खरीदके भेजना था उसे गाड़ीमें लदवाकर उसने देश भेज दिया, जो कुछ साथ ले जानेका था वह साथ ले जानेके लिए रख छोड़ा, आत्मीय-कुटुम्बी जनोंको इकट्ठा करके यथायोग्य आदर-सत्कारके साथ उन्हें खाना कर दिया। यहाँका सारा काम पूरा करके आज घर जानेके दिन वह भाई-साहबसे आखिरी उपदेश ग्रहण करनेके लिए उनके कमरेमें गया तो देखा कि वहाँ बन्दना बैठी है। उस दिनसे फिर वह यहाँ नहीं आई थी। काम-काजकी भीड़में उसकी बात द्विजदास भूल ही गया था। आज अचानक उसे देखकर मन ही मन उसे आश्चर्य हुआ, परन्तु उस भावको प्रकट न करके, उससे सिर्फ़ एक मामूली नमस्कार शिष्टाचार करके, विप्रदाससे बोला—“भाई साहब, आज रातकी गाड़ीसे मैं घर जा रहा हूँ, साथ जा रहे हैं अक्षय बाबू, उनकी स्त्री और पुत्री मैत्रेयी। आपके कॉलेजक लड़के शायद कल-परसों तक जायेंगे,—उन लोगोंको मैं किराया दे चला हूँ। अनु-दीदीको क्या आप ही अपने साथ लाइएगा ? पर तीन-चार दिनसे ज्यादा दिन न लगाइएगा।”

“मुझे क्या जाना ही पड़ेगा ?”

“हाँ। न जानेका विचार हो तो एक जोड़ी खड़ाऊँ खरीद दीजिए, ले जाकर भरतकी तरह सिंहासनपर रख दूँगा।”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“बातूनियोंका सिरताज हो गया है तू तो। पर आश्चर्य होता है अक्षय बाबूकी बात सुनके। वे कैसे जायेंगे ? उन्हें तो छुट्टी नहीं मिली—गैर-हाजिरी हो जायगी जो ?”

द्विजदासने कहा—“सो होगी; पर नुकसान नहीं होगा,—उधर उससे भी बहुत बड़ा काम हो जायगा बड़े घरमें लड़की परनानेका। पैसेवाला जमाई भविष्यके लिए बहुत भरोसेकी चीज़ है,—कॉलेजकी बँधी हुई तनखासे बहुत बड़ी बात है।”

विप्रदासने नाराज़ होकर कहा—“तेरी बात जसी रूखी होती है वैसी ही कर्कश। किसी आदमीका सम्मान रखते हुए बात करना ही नहीं जानता।”

द्विजदासने कहा—“जानता हूँ या नहीं सो भाभीसे पूछ देखिएगा।

सौजन्यका फिजूल अपव्यय नहीं करता, सिर्फ यही मुझमें दोष है। ”

सुनकर विप्रदाससे बगैर हँसे न रहा गया, बोले—“ तेरी एक ही गवाह है बस भाभी । जैसे शराबीका गवाह कलवार । ”

द्विजदासने कहा—“ सो होने दो, पर आपकी भी बात बहुत शहद-लपेट्टी नहीं मालूम हो रही है भाई साहब । कारण, न तो मैं शराबी हूँ और न वे शराब सप्लाई करती हैं । देती हैं अमृत; और देती हैं छिपे-छिपे बहुतोंको अन्न, जो बहुतसे बड़े-आदमी भी नहीं दे सकते । ”

विप्रदासने कहा—“ उन्हें दे सकनेकी ज़रूरत भी नहीं । लाड़ देकर देवरको जानवर बना डालनेके अलावा बड़े-आदमियोंके और भी काम हैं । ”

बन्दना मुँह नीचा किये हुए हँसने लगी; द्विजदासने उसे ताड़ते हुए कहा—“ इस विषयको लेकर अब बहस नहीं करेंगा भाई साहब । भाभी आपके नहीं हैं,—भारतीयोंकी घर-गृहस्थीमें उनका स्नेह क्या चीज़ है सो आपको कभी मालूम नहीं हो सकता । अन्धेको दिया दिखानेकी कोशिश करना निष्फल है । ”—फिर ज़रा हँसके कहा—“ बन्दना मुँह छिपाये हँस रही हैं, पर मौसीके घरके बदले कुछ दिन हमारे घर बिता आतीं तो शायद मेरी बात समझ जातीं । पर जाने दो इन सब बातोंको । आप कब घर आ रहे हैं सो बताइए ? ”

“ मैं बहुत थका हुआ हूँ द्विजू, माको समझाके कह नहीं सकेगा क्या ? ”

विप्रदासका ऐसा निर्जीव निस्पृह कंठस्वर उसने कभी नहीं सुना, वह चौंक पड़ा, देखा कि क्षीण हँसी अभी तक उनके ओठोंपर लगी हुई है—पर यह मानो उसके भाई साहबकी नहीं, और किसीकी है । विस्मय और व्यथासे वह अभिभूत हो गया, बोला—“ आपकी तबीयत क्या अभी तक अच्छी नहीं हुई भाई-साहब ? ”

“ नहीं, अच्छी तो हो गई । ”

“ तो फिर माको कैसे समझाऊँगा कि आप घर नहीं आ सकेंगे ? डरकर कहीं वे यहाँ चली आईं तो उनकी सारी तैयारियाँ नष्टभ्रष्ट हो जायँगी । ”

विप्रदासने क्षण-भर सोचा, फिर कहा—“ तू मुझे कब आनेके लिए कहता है ? ”

द्विजदासने कहा—“ आज, कल, परसों—जब हो । मुझे आशा दीजिए, मैं खुद आकर ले जाऊँगा । ”

विप्रदास कुछ चुपचाप मुसकराता रहा, फिर बोला—“अच्छी बात है, यही सही। मैं खुद ही आ जाऊँगा, तेरे आनेकी ज़रूरत नहीं।”

द्विजदासके चले जानेपर बन्दनाने पूछा—“यह क्या हुआ मुखर्जी साहब, घर जानेमें आपत्ति क्यों की ?”

विप्रदासने कहा—“कारण तो तुम अपने कानोंसे ही सुन चुकी हो।”

“सुना तो सही, पर यह जवाब तो दूसरोंके लिए है, मेरे लिए नहीं। बताइए, क्यों आप घर नहीं जाना चाहते ? आपको कहना ही पड़ेगा।”

“मैं थका हुआ हूँ।”

“नहीं।”

“नहीं क्यों ? थकनेपर सभीका दावा है, नहीं है तो सिर्फ मेरा ?”

“आपका भी है, लेकिन वह दावा सचमुचका होता तो सबसे पहले समझ जाती मैं। और सबकी दृष्टिको आप धोखा दे सकते हैं, सिर्फ मेरी दृष्टिको नहीं दे सकते। जाते वक्त जीजीको मैं चिट्ठी लिखती जाऊँगी कि आपकी बीमारी समझनेकी अगर कभी ज़रूरत हो तो वे मुझे बुला लिया करें।”

“जीजी तुम्हारी खुद बीमारी नहीं पहचान सकेंगी, तुम उन्हें पहचानना दोगी।—यह बात सुनके वे खुश न होंगी।”

बन्दनाने कहा—“खुश भले ही न हों, पर कृतज्ञ ज़रूर होंगी। मेरी जीजी ठहरी उस युगकी भली मानस स्त्री, उन्हें पतिको ढूँढ़ना-चुनना नहीं पड़ा, भगवानने उन्हें आशीर्वादकी भाँति अंजुलि भर दी थी। तबसे स्वस्थ सबल आदमीके साथ ही उनका कारोबार चल रहा है। पर उस आदमीका भी किसी दिन हृदय टूट सकता है, यह खबर वे कैसे जान सकती हैं ?”

विप्रदास मुँहसे कुछ जवाब न देकर सिर्फ जरा हँस दिया।

बन्दनाने कहा—“आप हँसे कैसे ?”

विप्रदासने कहा—“हँसी अपने आप ही आ जाती है बन्दना। पति ढूँढ़ने-चुननेके अभियानमें आज तक तुमने जिन लोगोंको देखा है उनके बाहर भी कोई है—यह तुम लोग सोच ही नहीं सकतीं। संसारके साधारण नियमोंको सिर्फ मानती हो तुम लोग, उनके व्यक्तिक्रमको नहीं मानना चाहतीं। और मज़ा यह कि इस व्यक्तिक्रमके बलपर ही टिका हुआ है धर्म, टिका हुआ है पुण्य, काव्य-साहित्य, अविचलित श्रद्धा और विश्वास, सब कुछ। इसके न रहनेसे तो पृथिवी बिलकुल मरुभूमि हो जाती। इस सत्यको तुम आज तक नहीं जानतीं।”

बन्दनाने व्यंगके स्वरमें कहा—“ यह व्यतिक्रम शायद आप खुद हैं मुखर्जी महाशय ? मगर उस दिन तो आपने कहा था कि मुझे भी आप प्यार करते हैं ? ”

“ सो आज भी कहता हूँ, परन्तु प्यारका सिर्फ एक ही रास्ता तुम लोगोंको दिखाई देता है, और सब रास्ते बंद रहते हैं, इसीसे उस दिनकी बातें मेरी तुम समझ नहीं सकी हो । एक बार देख आओ द्विजू और उसकी भाभीको । दृष्टि अन्धी न होगी तो देख सकोगी कि किस तरह श्रद्धा जाकर मिली है प्यारके साथ । हँसी-मज़ाकमें, आमोद-आह्लादमें, लाड़-प्यारमें, निबिड़ घनिष्ठता-में वह सिर्फ उसकी भाभी ही नहीं है, वह उसकी मित्र है, वह उसकी मा है । वही सम्बन्ध तो तुम्हारा हमारा भी है,—ठीक उसी तरह ही क्यों नहीं मुझे ग्रहण कर सकी बन्दना ? ”

उसके कंठ-स्वरमें था गहरा स्नेह और उसके साथ मिला हुआ था तिरस्कारका सुर, बन्दनाको उसने बड़ी गहरी चोट पहुँचाई । वह कुछ देर सिर झुकाये चुप बैठी रही, फिर सहसा आँख उठाकर बोली—“ आपको मैंने गलत समझा था मुखर्जी साहब । मेरी जीजीको अगर आप सचमुच ही प्यार करते होते तो मुझे कोई दुःख न था, किन्तु आप तो उन्हें प्यार नहीं करते । आप पालन करते हैं सिर्फ धर्म, सिर्फ कर्तव्यको मानकर चलते हैं । कठिन है आपकी प्रकृति,—किसीको प्यार करना नहीं जानती । चाहे कितना भी ढकके रखिए, यह सत्य एक-न-एक दिन प्रकट होगा ही । ”

क्षण-भर स्थिर रहकर फिर कहने लगी—“ आज मेरी भी गलती दूर हो गई । आज मुझे आप यही आशीर्वाद दीजिए कि मैं अब शून्यमें आदमी ढूँढ़ने न जाऊँ । ”

विप्रदासने हँसते हुए हाथ ऊँचा करके कहा—“ दिया तुम्हें आशीर्वाद । आजमे आदमी ढूँढ़नेका काम तुम्हारा समाप्त हो जाय और जो तुम्हारा चिर-कालका है उसे वे ही तुम्हें दान करें । ”

विप्रदासकी बातको अपमानजनक परिहास समझकर बन्दना नाराज़ हो गई, बोली—“ आप गलती कर रहे हैं मुखर्जी साहब, आदमी ढूँढ़ते फिरना मेरा पेशा नहीं है । वे कोई और ही होंगी । परन्तु अचानक आज क्यों आपके पास आई थी, सो आपसे कह ही नहीं पाई । एक दिशामें सचमुच ही मेरी एक बड़ी-भारी गलती दूर हो गई । यहाँ आप लोगोंके संसर्गमें आकर सौचा

था कि यह सब शायद सचमुच ही अच्छा होगा, छुआछूतका नियम मानके चलना, फूल चुनना, चन्दन लगाना, पूजाका आयोजन करना,—और भी न-जाने क्या-क्या—समझा था कि यह सब शायद सचमुच ही मनुष्यको पवित्र बनाता है; किन्तु अबकी बार मौसीके घर जानेपर यह मूढ़ता मेरी दूर हो गई। कई दिनों तक कैसा पागलपन किया था मैंने मुखर्जी साहब ! मानो सचमुच ही उन बातोंपर मेरा विश्वास हो, मानो हमारी शिक्षा, हमारे संस्कारोंमें सचमुच ही कहीं भी इससे कोई प्रभेद न हो !”—इतना कहकर वह जबरन हँसने लगी।

उसने सोचा था कि उसकी इन बातोंसे विप्रदासको बड़ी गहरी चोट पहुँचेगी, किन्तु देखा कि ज़रा भी नहीं पहुँची। उसकी छद्म हँसीमें शामिल होते हुए विप्रदासने कहा—“मैं जानता था बन्दना। तुम्हें क्या याद नहीं कि मैंने तुम्हें सावधान करते हुए एक दिन तुमसे कहा था कि यह सब तुम्हारे लिए नहीं है, तुम मत करो यह-सब। वह मूढ़ता तुम्हारी दूर हो गई जानकर मुझे खुशी हुई। तुमने शायद सोचा होगा कि तुम्हारी यह बात सुनकर मुझे बड़ा कष्ट होगा, मगर सो बात नहीं। जिसके लिए जो स्वाभाविक नहीं है उसे वह न करे तो मैं दुःखी नहीं होता। तुम्हें तो याद है कि जब तुमने पूछा कि मैं किसका ध्यान करता हूँ, तो मैं चुप रह गया था। कहनेमें कोई बाधा हो सो बात नहीं, पर व्यर्थ था कहना। पर अभी इन सब बातोंको रहने दो। तुम्हारा बम्बई जानेका क्या कोई दिन तय हुआ ?”

मारे अभिमानके बन्दनाका चेहरा सुर्ख हो उठा, विप्रदासकी बातके जवाबमें उसने सिर्फ़ कहा—“नहीं।”

“उस दिन तुम अपनी मौसीके भतीजे अशोककी बात कह रही थीं। कहती थीं लड़का तुम्हें अच्छा ही लगा है। इन कई दिनोंमें उसके विषयमें क्या और कुछ जान सकी हो ?”

“नहीं।”

“तुम लोगोंका अगर ब्याह हो, तो मैं आशीर्वाद दूँगा, पर मौसीकी जल्द-बाजीमें कुछ कर न बैठना। उनकी ताकीदसे जरा बचके चलना।”

बन्दनाकी आँखोंमें आँसू आ गये, पर मुँह नीचे किये हुए उसने अपनेको सम्हाल लिया, कहा—“अच्छा।”

“विप्रदासने कहा—“मैं परसों घर जाऊँगा। दो-तीन दिनसे ज्यादा वहाँ रह

न सकूँगा। मेरे वापस आने तक अगर कलकत्ते ही बनी रहो, तो एक बार आना यहाँ।”

बन्दना मुँह नीचे किये हुए ही थी; सिर हिलाकर उसने कुछ जवाब तो दिया, पर उसका अर्थ स्पष्ट समझमें नहीं आया।

विप्रदासने कहा—“सुन लिया न, मेरी छुट्टी मंजूर हो गई है, अबसे सारा भार द्विजूपर रहेगा। घर-गृहस्थीकी घानीमें बापूजीने मुझे बचपन ही से जोत दिया था, कभी फुरसत नहीं पाई थी कहीं जानेकी। आज मालूम हो रहा है जैसे खुली हवामें साँस लेकर जी उठूँगा।”

अबकी बार बन्दनाने मुँह उठाकर पूछा—“सचमुच ही साँस लेनेकी ऐसी ज़रूरत आ पड़ी है मुखर्जी साहब ? सचमुच ही क्या आज आप इतने थके हुए हैं ?”

विप्रदासने इस प्रश्नके उत्तरसे अपनेको बचाते हुए कहा—“हाँ, एक बात तो तुम्हें बताई ही नहीं बन्दना, मेरी बीमारीमें तुम्हारी सेवाका उल्लेख करके मैंने द्विजूसे कहा था कि तुम लोगोंको बन्दनाका कृतज्ञ होना चाहिए। उससे आधी भी सेवा तुममेंसे कोई न कर सकता था। द्विजूने कृतज्ञता स्वीकार करते हुए भी तुमसे कह देनेके लिए कहा है कि अगर फिर कभी ऐसा समय आ जाय, तो अपने भाईकी सेवामें उसके आगे दस-दस बन्दनाएँ भी झल मारेंगी।”

बन्दनाने कहा—“उनसे भी कह दीजिएगा कि मुझे यह शर्त मंजूर है। मगर परीक्षाका दिन अगर कभी आ जाय तो उनके दर्शन मिलने चाहिए।”

सुनकर विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—“दर्शन मिलेंगे बन्दना, वह पीठ दिखा देनेवाला आदमी नहीं है। उसे तुम पहचानती नहीं।”

“पहचानती हूँ मुखर्जी साहब। यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि आपके लिए उनकी प्रतियोगिता करनेमें सचमुच ही बन्दनाके बूतेके बाहरकी बात है।”

भ्रातृगर्वसे विप्रदासका चेहरा प्रदीप्त हो उठा, उसने कहा—“जानती हो बन्दना, द्विजू मेरा साधु-पुरुष है।”

“आपसे भी ज्यादा क्या ?”

“हाँ, मुझसे भी ज्यादा।”—इतना कहकर विप्रदासने क्षण-भर इधर-उधर करके कहा—“पर वह कह रहा था कि तुम शायद उसपर नाराज़ ही। तुम उससे बोली क्यों नहीं ?”

“बोलनेकी जरूरत नहीं पड़ी थी मुखर्जी साहब ।”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“तब तो देख रहा हूँ तुम सचमुच ही नाराज़ हो । पर एक बात आज तुमसे कहता हूँ बन्दना, द्विजूका व्यवहार सूखा होता है, बातचीत भी हमेशा खूब मुलायम नहीं होती, पर उसके इस कर्कश आवरणको हटाकर अगर कभी उसके वास्तविक दर्शन पा जाओ तो देखोगी कि ऐसा मधुर आदमी और नहीं है । मेरी बातपर विश्वास करो, ऐसा निर्भर-योग्य आदमी भी तुम्हें आसानीसे ढूँढ़े न मिलेगा ।”

बन्दना दूसरी तरफ देखती रही, कोई जवाब नहीं दिया । इसके बाद अकस्मात् उठ खड़ी हुई और बोली—“गाड़ी बहुत देरसे खड़ी है मुखर्जी साहब, मैं जा रही हूँ । अगर रह सकी तो, आपके वापस आनेपर आपसे मिलूँगी । और अगर नहीं रह सकी तो यही मेरा आखिरी नमस्कार है ।”—इतना कहकर उसने झुकके विप्रदासके पाँव छुए और हाथ माथेसे लगाकर तेजीसे वहाँसे चल दी । विप्रदासको एक बात कहनेका भी अवसर नहीं दिया ।

×

×

×

बन्दनाने बरामदा पार करके जीनेके पास आकर आश्चर्यके साथ देखा कि द्विजदास हाथ-जोड़े खड़ा है ।

बन्दना हँस पड़ी, बोली—“यह क्या बात है ?”

“एक प्रार्थना है । भाई साहबको साथ लेकर एक बार आपको हमारे देशवाले घर चलना पड़ेगा ।”

“मैं उन्हें साथ ले जाऊँगी, इसकी वजह ?”

द्विजदासने कहा—“कहनेके लिए ही खड़ा हुआ हूँ । एक दिन बिना आह्वानके ही आपने हमारे घर पदार्पण किया था, आज फिर वही दया आपको करनी होगी ।”

बन्दना क्षण-भर बगलें झँकती रही, फिर बोली—“मगर मुझे निमंत्रण दे कौन रहा है ? मा, भाई साहब या आप खुद ?”

“मैं खुद ही दे रहा हूँ ।”

“मगर आप तो उस घरमें ‘तृतीय-पुरुष’ हैं, आपको इसका अधिकार क्या है ?”

द्विजदासने कहा—“और कोई अधिकार हो या न हो, जीनेका अधिकार

ज़रूर है। उसी अधिकारसे मैं प्रार्थना-पत्र पेश कर रहा हूँ। कहिए, मंजूर किया ? अत्यन्त आवश्यक हुए बिना मैं कोई भी प्रार्थना किसीके आगे पेश नहीं करता। ”

बन्दना बहुत देर तक दूसरी ओर देखती रही, फिर बोली—“ अच्छा, सो ही सही, जाऊँगी मैं; पर मेरे मान-अपमानकी जुम्मेवारी सब आप पर रहेगी। ”

द्विजदासने कृतज्ञतापूर्ण स्वरमें कहा—“ मेरी शक्ति बहुत ही मामूली है, फिर भी ली मैंने यह जुम्मेवारी। ”

बन्दनाने कहा—“ आपत्ति-कालमें यह बात भूल न जाइएगा। ”

‘ नहीं, नहीं भूँँगा। ’

×

×

×

२१

बहुत दिन बाद विप्रदास नीचेके ऑफिस-रूममें आकर बैठा है। सामने टेबिलपर कागजोंका ढेर है—कितने दिनोंका काम बाकी है, कोई ठीक है ! शरीर श्रान्त है, पर द्विजुके भरोसे छोड़ रखना भी ठीक नहीं। एक खारुआकी जिल्ददार बही उठाकर वह देख रहा था, इतनेमें बाहरसे मोटरका हॉर्न सुनाई दिया; और उसके थोड़ी देर बाद ही पूरबके खुले हुए दरवाजेसे बन्दनाने प्रवेश किया। आज वह अकेली नहीं थी, उसके साथ एक अपरिचित युवक भी था। पहनावमें धोती-कुरता, पावोंमें फूलदार कटकी चट्टी और कंधेसे लेकर घुटने तक एक सफेद मोटी चादर तिरछे ढंगसे पड़ी हुई है। उमर तीससे कम, प्रेहकी गठन और भी ज़रा दीर्घता लिये-हुए होती तो बेशक उसे सुपुरुष कहा जा सकता था। विप्रदास अभ्यर्थना करनेकी गरजसे कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

बन्दनाने कहा—“ मुखर्जी साहब, ये ही हैं मिस्टर चाउड्री बार-एट्-लॉ। पर यहाँ अशोक बाबू कहनेसे भी ये कोई ऑफेन्स न ले सकेंगे—इस शर्तपर आपसे परिचय करानेको राजी होकर इन्हें साथ लाई हूँ। आलाप-परिचय होता रहेगा, पर उसके पहले मैं अपना कर्तव्य पूरा कर लूँ। ”—कहते हुए

उसने पास आकर झुकके विप्रदासको प्रणाम किया, और कहा—“पाँवकी धूल लेकिन इनके सामने न ले सकी, इसलिए कि कहीं ये ऐसा न समझ बैठें कि इनके समाजका कलंक हूँ मैं ! पर इसके मानी यह नहीं कि आप ऐसा समझ बैठें कि यह नया कायदा मौसीके यहाँका सीखा हुआ है। उसके बाद फिर आपकी प्रसन्नताकी गहराइका माप मुझे मालूम है न ! ”

विप्रदासने कहा—“अपनी मौसीजीके सामने इसी तरह मेरा गुण-गान किया करती हो क्या ? ”—फिर अशोककी तरफ देखकर कहा—“बन्दनाके मुँहसे आपकी बात इतनी ज्यादा सुन चुका हूँ कि बीमार न होता तो खुद ही जाता आपसे मिलने। देखते ही ऐसा लगा जैसे चेहरा आपका परिचित हो, बहुत बार देखा हुआ हो। अच्छा ही हुआ जो व्यर्थमें देर न करके ये स्वयं ही साथ ले आई आपको। ”

प्रत्युत्तरमें अशोक कुछ कहना ही चाहता था कि उसके पहले ही बन्दना शासनकी शैलीसे तर्जनी उठाकर बोल उठी—“मुखर्जी साहब, अत्युक्ति और अतिशयोक्तिको लॉकर लगभग असत्यके कोठेमें आ चुके हैं,—अब रुक जाइए, नहीं तो दंगा शुरू कर दूँगी। ”

“इसके मानी ? ”

“इसके मानी यह कि हम अति-साधारण लोगोंकी तरह आप भी सच-झूठ जो मनमें आवे बनाकर कह सकते हैं। आप तनिक भी असाधारण व्यक्ति नहीं हैं,—ठीक हम ही लोगोंके समान साधारण मनुष्य हैं। ”

विप्रदासने कहा—“नहीं। सबको पूछ देखो, वे सब एक स्वरसे गवाही देंगे कि तुम्हारा अनुमान अश्रद्धय है, अग्राह्य है। ”

बन्दनाने कहा—“अबकी बार उन्हीं लोगोंके पास ले जाकर आपके इस सिंह-चर्मको दोनों हाथोंसे फाड़-फूड़ अलग कर दूँगी। तब असल मूर्ति उन लोगोंको दीख पड़ेगी,—उनका भय दूर हो जायगा। फिर वे मुझे आशीर्वाद देते हुए कहेंगे—तुम राज-रानी होओ। ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“आशीर्वादमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, यहाँ तक कि मैं खुद भी देनेको तैयार हूँ, मगर आशीर्वाद तो तुम लोग चाहती नहीं, कह देती हो—कुसंस्कार है यह, सिर्फ बातकी बात है, रुढ़ी है। ”

बन्दनाने फिर उँगली उठाकर कहा—“फिर चुटकी लेनेकी कोशिश ? कौन कहता है कि बड़ाका आशीर्वाद हम नहीं चाहती—किसने कहा है यह

कुसंस्कार है ? अब लेकिन सचमुच गुस्सा आ रहा है मुखर्जी महाशय । ”

विप्रदासने गंभीर होकर कहा—“ सचमुच ही गुस्सा आ रहा है क्या ? तो रहने दो इन गड़बड़ीकी बातोंको । पर यह तो बताओ कि—अचानक सबेरे ही कैसे आविर्भाव हुआ ? कोई काम है क्या मुझसे ? ”

बन्दनाने कहा—“ बहुत । पहला काम आपकी कैफियत पूछना । न्यों आपने बिना मेरी इजाजतके नीचे आकर काम शुरू किया ? ”

“ किया नहीं अभी, करनेका संकल्प-मात्र कर रहा था । ये रहा काम । ”
—कहते हुए विप्रदासने मोटी बहीको अलग सरका दिया ।

बन्दनाने प्रसन्न होकर कहा—“ कैफियत Satisfactory (सन्तोषजनक) है; अवाध्यता (आज्ञा न मानना) माफ की गई । भविष्यमें इसी तरह अनुगामी बने रहनेसे मेरा काम चल जायगा । अब सुनिए मन लगाकर—तब तक इनके साथ बैठके गपशप कीजिए—मुखर्जियोंके ऐश्वर्यका विवरण, प्रजा-शासनकी अनेक रोमांचकारी कहानियाँ—जो खुशी आवे । मैं ऊपर जा रही हूँ, अनु-दीदीको लेकर सब तैयारियाँ करने । कल सबेरेकी गाड़ीसे हम लोग बलरामपुर खाना होंगे, दिन-ही-दिनमें पहुँच जायेंगे, ठंड लगनेका डर नहीं रहेगा । मिस्टर चाउड्रीकी इच्छा है कि वे भी साथ चलें—बड़े घरका बड़े ढंगका याग-यज्ञ क्रिया-कलाप और दीयतां भुज्यतां आदि कभी आँखोंसे देखा-वेखा नहीं—और देखते भी कहाँसे—”

विप्रदासने पूछा—“ तुमने खुद अवश्य ही बहुत देखा होगा—”

बन्दनाने कहा—“ यह प्रश्न सम्पूर्णरूपसे अप्रासंगिक और भद्र-रुचिकी सीमाके बहिर्गत है । इन्होंने नहीं देखा, यह बात हो रही थी । सुनिए, इन्हें अनुमति दे दी गई है कि साथ चल सकते हैं, इससे आप इतने खुश हुए हैं कि उसके बाद मुझे बम्बई तक पहुँचा आनेको राजी हो गये हैं । ”

विप्रदासने चेहरा अत्यन्त गम्भीर बनाकर कहा—“ कहती क्या हो ? इतना ज्यादा त्याग स्वीकार हमारे समाजमें नहीं देखनेमें आता, यह सिर्फ़ तुम्हारे ही यहाँ पाया जा सकता है । सुनकर आश्चर्य हो रहा है ! ”

बन्दनाने कहा—“ आश्चर्यकी बात ही है । जप-तप भी है और सोलहों आने ईर्ष्या भी है । ”—कहके वह अपनी निगाहोंसे बिजलीकी एक झलक चारों ओर बखेरती हुई ऊपर जा ही रही थी कि विप्रदासने टोककर कहा—
“ यह तो ‘ कथामाला ’ के उस कुत्तेकी-सी कहानी है जो भूसीपर पहरा दे रहा

था। न तो खुद खाता था और न साँझोंको ही मजेसे मुँह मारने देता था। आदमी जीये कैसे बताओ भला ? ”

बन्दना दरवाजेके पास ठिठकके खड़ी हो गई और कृत्रिम रोषसे भौंहें सिकोड़कर बोली—“ बिलकुल हमारे जैसे साधारण आदमी हैं आप,— ज़रा भी फर्क नहीं। लोग व्यर्थ ही डर-डर मरते हैं।

“ तुम जाकर अबकी उनका डर दूर कर आना। ”

“ इसीसे तो जा रही हूँ। और, भूसीके साथ किसीकी उपमा देनेकी दुर्बुद्धिका बदला लेके छोड़ूँगी। ”—इतना कहकर वह दीप्त कटाक्षके साथ फिर बिजली-सी बरसाती हुई तेजीसे अदृश्य हो गई।

×

×

×

विप्रदासने कहा—“ मिस्टर—”

अशोकने विनयके साथ बाधा देते हुए कहा—“ नहीं नहीं, सो नहीं होगा। इसे निकाल देनेमें कोई बाधा न हो, इसीलिए तो धोती-चादर और चट्टी पहनके आया हूँ विप्रदास बाबू। और बन्दना देवीने भी भरोसा दिया था कि—”

विप्रदासने मन-ही-मन खुश होकर कहा—“ अच्छा ही हुआ अशोक बाबू, सम्बोधन ज़रा आसान हो गया। गँवई-गाँवका आदमी ठहरा, न तो याद ही रहता है और न अभ्यास ही है। अब आजादीके साथ वातचीत जमा सक्ता। जैसा कि सुना, आप हमारे गाँव जाना चाहते हैं, सचमुच ही अगर जायें तो मैं कृतार्थ हाऊँगा। हमारे घरकी बड़ी-बूढ़ी स्वामिनी मेरी मा हैं, उनकी तरफसे मैं आपको सादर निमंत्रण देता हूँ। ”

विप्रदासके विनय-वचनसे अशोक पुलकित हो उठा, बोला—“ ज़रूर जाऊँगा। ज़रूर जाऊँगा। कितने दरिद्र अनाथ आतुर आयेंगे निमंत्रण रक्षा करने, कितने अध्यापक-गण्डित उपस्थित होंगे विदाई लेने—आनन्द-उत्सव, खाना-पीना, आना-जाना, कितना विचित्र आयोजन—”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ सब यह बढ़ाई हुई बातें हैं अशोक बाबू, बन्दना सिर्फ मज़ाक कर रही है। ”

“ मज़ाक करनेसे उन्हें फायदा क्या विप्रदास बाबू ? ”

“ एक फायदा है मुझे शरमिन्दा करना। बलरामपुरके मुखर्जी-घरानेसे वह

मन-ही-मन नाखुश है। दूसरा लाभ है आपको वह कितां बहानेसे बम्बई घसीट ले जाना चाहती है।”

अशोकने कहा—“जरूरत पड़ने पर बम्बई तक मुझे साथ जाना होगा, यह तो बात हुई है; पर मुखर्जी-वरानेसे वे नाखुश हैं, आप लोगोंको शरमिन्दा करना चाहती हैं—यह तो नहीं हो सकता। कल तक बलरामपुर जानेका तय नहीं हुआ था, पर आप लोगोंकी बातपर ही मौसीके साथ उनका झगड़ा हो गया। मौसीने कहा कि ‘विप्रदासकी माने अगर सर्व-साधारणके हितार्थ तालाब खुदवाया हो तो उसकी प्रशंसा करती हूँ, पर समारोहके साथ प्रतिष्ठा करानेके कोई मानी ही नहीं होते,—यह तो कुसंस्कार है। कुसंस्कारमें शरीक होनेको मैं तो अन्याय समझती हूँ।’ बन्दनाने कहा कि ‘वे लोग बड़े-आदमी हैं, बड़े-आदमियोंके काम-काजमें समारोह तो होता ही है। इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?’ मेरी बुआजीने कहा—‘बड़े आदमियोंके अपव्ययमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं, यह मानती हूँ, पर यह तो सिर्फ अपव्यय ही नहीं, कुसंस्कार भी है। इसलिए तुम्हारे जानेमें ही मुझे आपत्ति है।’ बन्दनाने कहा—‘मगर मैं इसे कुसंस्कार नहीं समझती। बल्कि, यह समझती हूँ कि जिसे जानती नहीं, जाननेकी कभी कौशिश नहीं की, उसपर सरसरी तौरपर सीधा विचार करने लगना ही कुसंस्कार है।’ इनका जवाब सुनकर बुआजी मारे गुस्सेके जल-भुन गईं; पूछने लगीं—‘अपने पिताजीकी आज्ञा ले ली है तुमने?’

बन्दनाने उत्तर दिया—‘बापूजी मना नहीं करेंगे, मैं जानती हूँ। जीजीके पति बीमार हैं, उन्हें साथ ले जानेका भार पड़ा है मुझपर।’

“बुआजी बोलीं—‘भार दिया किसने सो भी तो रुनूँ? शायद उन्होंने खुद ही दिया होगा?’

“उनका यह सवाल सुनकर बन्दना दंग हो उनकी तरफ देखती रह गई। मुझे ऐसा लगा कि उनके माथेमें तेजीसे खून दौड़ने लगा है, और अब वे सहसा कुछ कह बैठेंगी; पर उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया, आहिस्तेसे बोलीं—‘जिसके जो मनमें आवे वह वही पूछ बैठे और मैं उसका जवाब दूँ—बचपनसे ऐसी शिक्षा मुझे नहीं दी गई मौसीजी। परसों सबेरे मैं मुखर्जी साहबको लेकर बलरामपुर जाऊँगी—इससे ज्यादा और कुछ नहीं कह सकती।’

“बुआजी गुस्सेमें आकर उठके चली चली गईं। मैंने कहा—मुझे साथ ले चलेंगी? मेरी बड़ी इच्छा है कि इन सब आचार-अनुष्ठानोंको अपनी

आँखोंसे देखूँ।’ बन्दनाने कहा—‘मगर यह तो कुसंस्कार है अशोक बाबू। आँखोंसे देखनेसे भी आपकी जात चली जायगी।’ मैंने कहा—‘अगर आपकी न जायगी तो मेरी भी नहीं जासकती। और अगर जाती ही हो तो दोनोंकी ही जाय, मुझे कोई आपत्ति नहीं।’

“बन्दनाने कहा—‘आप तो विश्वास ही नहीं करते, आँखोंसे देखेंगे तो मन-ही-मन हँसेंगे ही।’

“मैंने कहा—‘क्या आप भी विश्वास करती हैं ?’ उन्होंने कहा—‘नहीं, मैं नहीं करती, पर मुखर्जी साहब करते हैं। मैं सिर्फ आशा रखती हूँ कि किसी दिन मैं भी सचमुच विश्वास करने लखूँ।’ विप्रदास बाबू, आपकी बन्दना देवी मन-ही-मन पूजा करती है, इतनी भक्ति वे संसारमें और किसीपर नहीं करती।”

विप्रदाससे यह बात छिपी नहीं है, और न नई ही है; फिर भी दूसरेके मुँहसे सुनकर उसका चेहरा बिलकुल फीका पड़ गया।

क्षण-भर बाद उसने पूछा—“आप लोगोंके विवाहका प्रस्ताव चल रहा था, सो क्या तय हो गया ? बन्दनाने सम्मति दे दी ?”

“नहीं। पर असम्मति भी नहीं जाहिर की।”

“यह आशाकी बात है अशोक बाबू। चुप रह जाना भी अनेक क्षेत्रोंमें सम्मतिका लक्षण है।”

अशोक कृतज्ञ-दृष्टिसे क्षण-भर देखता रहा, फिर बोला—“नहीं भी हो सकता है। कमसे कम मैं खुद अभी तक ऐसा ही समझता हूँ।” फिर ज़रा ठहरकर बोला—“मुश्किलकी बात यह है कि मैं गरीब हूँ और बन्दना धनवती। धनपर मेरा लोभ न हो सो बात नहीं, पर बुआजीके समान वही मेरा एक मात्र लक्ष्य नहीं है। मगर यह बात समझाऊँ कैसे कि बुआजीके साथ मैंने षड्यंत्र नहीं किया ?”

इस युवकके प्रति मन-ही-मन विप्रदासका भाव कुछ उपेक्षापूर्ण था, अब उसकी बातकी सरलतासे वह भाव कुछ-कुछ घट गया। विप्रदासने सदाय कंठसे कहा—“बुआके षड्यंत्रमें आप वास्तवमें शामिल न होंगे तो यह बात बन्दना किसी-न-किसी दिन अवश्य समझ जायगी, तब फिर उसके प्रसन्न होनेमें भी देर न लगेगी, और धनकी बातसे फिर कोई बाधा भी न होगी।”

अशोकने उत्सुक-स्वरमें पूछा—“ इस बातको आप निश्चयसे जानते हैं विप्रदास बाबू ? ”

इसका जवाब देते हुए विप्रदास दुबिधामें पड़ गया, ज़रा सोचकर बोला—
“ उसे जहाँ तक मैंने समझा है, उससे तो यही मालूम होता है । ”

अशोकने कहा—“ मुझे क्या लगता है आप जानते हैं ? लगता है कि उनकी निजी प्रसन्नताकी अपेक्षा मुझे बहुत ज्यादा ज़रूरत है आपकी प्रसन्नताकी । वह जिस दिन मिल जायगी उस दिन मेरे लिए न-मिलनेवाला कुछ न रह जायगा । ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ मेरी प्रसन्न दृष्टिसे वह पतिका निर्वाचन करेगी,—यह अद्भुत इशारा आपको किसने दिया—बन्दनाने खुद ? अगर दिया हो तो उसने महज़ मज़ाक किया है, मैं सिर्फ़ इतना ही आपसे कह सकता हूँ अशोक बाबू । ”

“ नहीं, मज़ाक नहीं, यह सच है । ”

“ किसने कहा ? ”

अशोक क्षण-भर चुप रहकर बोला—“ यह सब मुँहसे कहनेकी चीज़ नहीं विप्रदास बाबू । उस दिन मौसीके साथ झगड़के मेरे कमरेमें आई—ऐसा वे कभी नहीं करती—एक कुरसी खींचकर बैठ गई, और मुझसे बोलीं—‘ मुझे बम्बई पहुँचा देना होगा । ’ मैंने कहा—‘ जब हुक्म देंगी तभी तैयार हूँ । ’ उन्होंने कहा—‘ अभी जा रही हूँ बलरामपुर, वक्त आनेपर आपसे कहूँगी । ’ मैंने कहा—‘ कहिएगा, पर मौसीको आपने क्यों झूठमूठको नाराज़ कर दिया ? उन लोगोंके पूजा-पाठ होम-यज्ञ देवी-देवताओंपर तो वास्तवमें आपका विश्वास नहीं है ? ’ फिर भी उन्होंने यही कहा—‘ विश्वास करने लगूँ तो जी जाऊँ । ’ मैंने पूछा—‘ ऐसा क्यों कहती हैं ? ’ उन्होंने कहा—‘ झूठ नहीं कहा अशोक बाबू, उन लोगोंकी तरह सच्चे विश्वासके साथ अगर मैं उन बातोंको ग्रहण कर सकूँ तो धन्य हो जाऊँ । मुखर्जी साहबकी बीमारीमें मैंने उनकी सेवा की थी, उनसे किसी दिन मैं विश्वासका वर माँग लूँगी । ’ इसके बाद शुरू हो गई आपकी बातें । इतनी श्रद्धा भी कोई किसीपर करता है, किसीकी शुभ-कामनामें कोई हरवक्त इतना मग्न रह सकता है, इसके पहले मैंने इसकी कल्पना भी न की थी । बातों-ही-बातोंमें उन्होंने एक दिनकी एक घटनाका उल्लेख किया । तब आप बीमार थे, आपकी संध्या-पूजाकी तैयारी वे ही किया करती थीं । उस दिन ‘अबेर हो

गई थी, जल्दी-जल्दी आनेमें पाँवसे कोई चीज़ छू गई; जितना ही उन्होंने अपनेको समझाना चाहा कि ऐसी कोई बात नहीं, उससे पूजामें कोई बाधा नहीं आ सकती, उतना ही उनका मन समझनेसे इन्कार करने लगा कि कहीं किसी भी रास्तेसे आपके काममें घुटि न हो जाय। इसलिए दुबारा नहाकर फिर आपकी पूजाकी तैयारियाँ कीं। आपने लेकिन उस दिन नाराज़ होकर कह दिया था कि 'बन्दना, सुब्रह्म अगर तुम न जग सको तो अन्नदा-दीदीसे पूजाकी तैयारियाँ करवा देना।' याद है आपको विप्रदास बाबू ? ”

विप्रदासने सिर हिलाकर कहा—“ है। ”

अशोक कहने लगा—“ इसी तरह कितने ही दिनोंकी कितनी ही छोटी-छोटी बातें करते-करते उस दिन बहुत रात हो गई, अन्तमें उन्होंने कहा—‘मौसीने उन लोगोंके कुसंस्कारकी बात कहके चुटकी ली,—मैंने खुद भी एक दिन ऐसा किया था,—पर आज कौनसा अच्छा है और कौनसा बुरा, इसके समझनेमें उलझन हो जाती है।’ खाने-पीनेका विचार तो कभी किया नहीं, आजन्मका विश्वास है—इसमें दोष नहीं, पर अब शिक्षक-सी आती है। बुद्धिकी ओरसे लज्जा पाता हूँ, लोगोंसे छिपाना चाहता हूँ, पर जब कभी मनमें खयाल आता है कि यह सब उन्हें पसन्द नहीं तभी मन मानो उनकी तरफसे मुँह फेर बैठता है। ”

सुनते-सुनते विप्रदासका चेहरा फीका पड़ गया, उसने जबरदस्ती हँसनेकी कोशिश करते हुए कहा—“ बन्दनाने क्या अब खाने-पीनेमें छुआछूतका विचार करना शुरू कर दिया है ? पर उस दिन तो वह यहाँ आकर दम्भके साथ कह गई थी कि मौसीके घर जाकर उसने अपने समाज और अपनी स्वाभाविक बुद्धिको पुनः प्राप्त कर लिया है और मुखर्जी-परिवारकी हजारों तरहकी कृत्रिमतासे छुटकारा पाकर वह जी गई है ! ”

अशोक आश्चर्यके साथ कुछ कहना ही चाहता था कि इतनेमें विघ्न उपस्थित हो गया। परदा हटाकर बन्दना वहाँ आ पहुँची। उसने कहा—“ मुखर्जी साहब, सब कुछ ठीक करके रख जाती हूँ। कल सबेरे नौ बजेकी गाड़ीसे चलना है। पूजा-ऊजा वादियात काम सब उसके पहले ही कर लीजिएगा। इतनी विडम्बना भी भगवानने आपकी तकदीरमें लिख दी है ! ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ ऐसा ही हो शायद ! ”

“ शायद नहीं, निश्चय। सोचा करती हूँ, काश कोई अगर आपकी इन सब

बातोंको मिटा सकता ! अच्छा मुनिए--कल सबेरेके लिए खाने-पीनेकी व्यवस्था भी कर दी है,--मैं खुद आकर खिलाऊँगी, फिर कपड़े वगैरह पहनाऊँगी, उसके बाद आपको अपने साथ ले जाकर घर पहुँचा दूँगी । कमजोर रोगी आदमी ठहरे, इसीसे ।--चलिए अशोक बाबू, अब हम लोग चलें । पैरोंकी धूल लेकिन अब न लूँगी मुखर्जी साहब,--वह कुसंस्कार है । भद्र-समाजमें न चलनेवाला खोटा सिक्का है । ”--इतना कहकर वह हँस दी और दोनों हाथोंको माथेसे लगाकर कमरेसे बाहर निकल गई ।

×

×

×

२२

दूसरे दिन सबेरे ही सब-कोई बलरामपुरके लिए रवाना हो गये । वहाँ मकानके पास पहुँचनेपर देखा गया कि द्विजदासने प्रायः राजसूय-यज्ञ सरीखी धूमधाम कर रखी है । सामनेवाले मैदानमें झोपड़ियोंकी कतार खड़ी है,—कुछ बन चुकी हैं, कुछ बन रही हैं;—इसी बीचमें आहूत और अनाहूतोंसे घर भर उठा है, और अभी कितने लोग और आयेंगे उसका पता लगाना कठिन है ।

विप्रदासको देखते ही मा चौंक गई, बोलीं —“ यह क्या शरीर हो गया है बेटा ! बिलकुल आधा रह गया ! ”

विप्रदासने माके पाँव छूकर सिरसे हाथ लगाते हुए कहा—“ अब कोई डर नहीं मा, अबकी तन्दुरुस्त होनेमें देर न लगेगी । ”

“ पर अब कलकत्ता मैं नहीं जाने दूँगी तुझे, कितना भी क्यों न हो । अबसे मैं अपनी आँखोंके सामने रखूँगी । ”

विप्रदास चुप रहकर मुसकराता रहा ।

बन्दनाके प्रणाम करनेपर दयामयीने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—“ आओ बेटा, आओ—जीती रहो । ”

परन्तु उनके कंठस्वरमें उत्साह नहीं था, समझमें आ गया कि यह सिर्फ शिष्टाचार है, उससे ज्यादा नहीं । उसे आनेके लिए निमंत्रण नहीं दिया गया, वह अपनी इच्छासे आई है,—माको सिर्फ इतना ही मालूम हुआ । उन्होंने

मैत्रेयीकी बात छेड़ी। उस लड़कीके गुणोंकी सीमा नहीं, दयामयीको दुःख इस बातका है कि एक-मुखसे उसकी सूची रचकर दाखिल करना संभव नहीं हो सकता। बोलीं—“बापने सिखाया न हो ऐसा कोई विषय ही बाकी नहीं। ऐसा कोई काम नहीं जो वह न जानती हो। बहूकी तबीयत भी अच्छी नहीं चल रही है—इसीसे उस अकेलीही-ने मानो सारा भार सिरपर लाद लिया है। भाग्यसे उसे बुला लिया था, नहीं तो क्या होता, सोचते भी डर लगता है।”

विप्रदासने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—“कहती क्या हो मा !”

दयामयीने कहा—“सच्ची बात है बेटा। लड़कीका काम-धन्धा देखकर मालूम होता है कि तेरे बाप जो बोझ मेरे ऊपर छोड़कर चले गये हैं उसके लिए अब कोई फिकर की बात नहीं रह गई। बहूको ऐसी देवरानी मिल जाय तो वह सारा भार मजेमें उठा सकती है, कहीं भी कोई कोर-कसर नहीं रहेगी। इस साल तो अब हो न सकेगा, अगर जीती रही तो अगले साल निश्चिन्त होकर कैलास-दर्शनको जा सकूँगी।”

विप्रदास चुप रहा। दयामयीकी बात संभव है कि झूठ न हो, हो सकता है कि मैत्रेयी ऐसी ही प्रशंसाके योग्य हो, किन्तु फिर भी यशोगानकी एक सीमा होती है, स्थान-काल भी देखा जाता है। उनका लक्ष्य चाहे कुछ भी हो, पर उपलक्ष्य भी छिपा न रहा। एक तरहकी अकरुण असहिष्णु क्षुद्रताने उनकी सुपरिचित मर्यादाको मानो खंडित कर दिया। सहसा लड़केके मुँहकी ओर देखकर दयामयी अपनी इस भूलको तो समझ गई, पर कैसे इसका प्रतिकार किया जाय,—यह उनकी समझमें न आया। द्विजदास कामकी भीड़में अन्यत्र घिरा हुआ था, खबर पाते ही वहाँ आ पहुँचा।

विप्रदासने कहा—“बहुत भारी काम छेड़ दिया है तैने, सम्हालेगा कैसे ?”

द्विजदासने कहा—“भार तो आपन खुद अपने ऊपर नहीं लिया भाई-साहब, मुझपर दिया है। आपको क्या डर है ?”

बन्दनाने इसका जवाब दिया, उसने कहा—“इन्हें तो इस बातकी चिन्ता है कि खर्चका तमाम रुपया अगर प्रजासे न वसूल हुआ तो मूल-धनमें हाथ लगाना पड़ेगा। क्या यह डरकी बात नहीं द्विजू बाबू ?”

सबके सब हँस पड़े, और इस हँसीके भीतरसे माका “मनोभार मानो कुछ घट गया, उन्होंने प्रसन्न मुखसे कृत्रिम रोपके स्वर में कहा—“इसे परेशान करनेमें तुम भी क्या ठीक अपनी बहन जैसी ही हो गई बन्दना ! विपिन मेरा

परम धार्मिक लड़का है, सब मिलके झूठमूठको उसकी चुटकियाँ लिया करती हो, सो मुझसे नहीं सहा जाता । ”

बन्दनाने कहा—झूठमूठकी चुटकियाँ खटका नहीं करतीं मा, उनसे नाराज़ भी न होना चाहिए । ”

माने कहा —“ नाराज़ तो यह होता ही नहीं, हँस देता है । ”

बन्दनाने कहा—“ इसकी भी एक वजह है मा । मुखर्जी साहब जानते हैं कि पेट पड़े तो पीठकी सह ली जाती है, नाराज़ वाराज होना मूर्खता है । ठीक है न मुखर्जी साहब ? ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ क्यों नहीं । मूर्खकी बातपर नाराज़ होना निषिद्ध है, शास्त्रोंमें उसकी अन्य व्यवस्था है । ”

बन्दनाने कहा —“ जीजी लेकिन मुझसे भी ज्यादा मूर्ख हैं मुखर्जी साहब । शायद आपके शास्त्रकी इसी व्यवस्थाके कारण ही सब आपकी इतनी भक्ति करते हैं । ”—इतना कहकर उसने हँसते हुए मुँह फेर लिया । द्विजदास हँसी दबानेके लिए दूसरी ओर देखने लगा; और दयामयी खुद ही हँस दी, शैली—
“ बन्दना बड़ी दुष्ट लड़की है, इसके साथ बातोंमें कोई नहीं जीत सकता । ”

कुछ देर ठहरकर ज़रा गंभीर होकर फिर कहने लगीं—“ मगर देखो बेटी, पुरखोंके जमानेमें प्रजापर ऐसा कतई न होता हो सो मैं नहीं कहती, पर तुमसे तो मैं कह चुकी ॥ कि विपिन मेरा परम धार्मिक लड़का है—जो अन्याय है, जिसपर उसका यथार्थ हक नहीं, उसे वह किसी भी हालतमें नहीं ले सकता । पर डर है मुझे द्विजसे, वह ले सकता है । ”

विप्रदासने प्रतिवाद करते हुए कहा—“ यह तुम्हारी बेजा बात है मा । द्विज प्रजाको कष्ट देगा ? प्रजाका पक्ष लेकर उसने हमारे ही विरुद्ध एक बार उन लोगोंको मालगुजारी देनेकी मनाही कर दी थी, सो क्या तुम्हें याद नहीं ? ”

माने कहा—“ याद है इसीलिए तो कह रही हूँ ! जो न्यायका कर्ज देनेकी मनाही कर सकता है, वह अन्यायका वसूल भी कर सकता है विपिन, दूसरा नहीं कर सकता । दया-माया उसके है—और कुछ ज्यादा ही है, यह मैं मानती हूँ—मगर फिर भी तू देखेगा किसी दिन कि उसीके हाथसे प्रजा ज्यादा दुःख पा रही है । ”

“ नहीं मा, नहीं पायेगी, देख लेना । ”

दयामयीने कहा—“ भरोसेकी बात सिर्फ़ इतनी ही है कि तू है । नहीं तो

उसके लिए ऐसे किसीकी ज़रूरत है जो उसे ठीक रास्तेपर चला ले जा सके। नहीं तो वह किसी दिन खुद भी डूबेगा और दूसरोंको भी डुबायेगा।”

द्विजदास अब तब तक चुप था, अब उसने बात की, बोला—“तुम्हारी आखिरी बात ठीक नहीं हुई मा। खुद डूबूँगा, यह बात शायद किसी दिन सच हो सकती है, पर दूसरोंको न डुबोऊँगा, इतना तुम निश्चय जान लो।”

माने कहा—“इनमेंसे एक भी सुखकी बात नहीं द्विजू, एक भी आनन्दकी बात नहीं। असलमें तुझे चलानेवाला कोई-न-कोई होना ही चाहिए।”

द्विजदासने कहा—“यही बात साफसाफ कहो जिससे सबकी चिन्ता दूर हो। मुझे चलानेवाला कोई एक चाहिए ही, सो ठीक है, पर इसका जुगाड़ भी तो लगभग तुम कर ही चुकी हो।”

माने कहा—“अगर सचमुच ही कर चुकी होऊँ तो तू अपना भाग्य ही समझ।”

तर्क-वितर्कका मूल तात्पर्य अब सबके सामने स्पष्ट-सा हो पड़ा।

मा कहने लगी—“इतना बड़ा जो काण्ड कर डाला तैने, किसीकी बात सुनी, कह दिया—भाई-साहबका हुकम है! पर भाई-साहबने क्या यह कह दिया था कि अश्वमेध-यज्ञ कर डाल? अब सम्हालेगा कौन इसे, बता? भाग्यसे मैत्रेयी आ गई थी, उसीका थोड़ा-बहुत भरोसा है।”

द्विजदासने कहा—“काम पहले पूरा हो जाने दो मा, उसके बाद जिसे चाहो सनद लिख के दे देना, मैं ज़रा भी आपत्ति न करूँगा; अभीसे उसकी जल्दी क्या है?”

बन्दनाने पूछा—“तब सनदपर दस्तखत कौन करेगा द्विजबाबू, तृतीय-पुरुष तो नहीं?”

द्विजदासने कहा—“नहीं, तृतीय-पुरुषकी क्या मजाल है! आज तक महापराक्रान्त प्रथम और द्वितीय पुरुष ज्योंके त्यों जो विद्यमान हैं!—कहते-कहते दोनों ही हँस पड़े।

विप्रदास और उसकी मा परस्पर एक दूसरेका मुँह देखने लगे, उनकी कुछ समझमें न आया।

इतनेमें अन्नदाने आकर कहा—“जीजी-बाई, बड़े बाबूकी दवाएँ कल जिसमें सम्झलकर रखी थीं वह कागजका बकस तो नहीं मिल रहा है,—खो-खा तौ नहीं गया?”

बन्दनाने कहा—“ नहीं खोया नहीं, कलकत्तेके मकानमें ही रह गया है। ”

दयामयी डर-सी गई, बोलीं—“ अब क्या होगा बन्दना, बड़ी-भारी गलती हो गई यह तो ? ”

बन्दनाने कहा—“ गलती नहीं हुई मा, आते वक्त उसे जान-बूझकर ही छोड़ आई हूँ । ”

“ जान-बूझकर छोड़ आई ? इसके मानी ? ”

“ सोचा कि बहुत पी चुके हैं, अब रहने दो । तब मा पास नहीं थी, इसीसे दवाओंकी ज़रूरत पड़ी थी, अब बगैर दवाके ही अच्छे हो जायेंगे, ज़रा-भी देर न लंगगी । ”

उसके ये शब्द दयामयीको बहुत ही अच्छे लगे, फिर भी उन्होंने कहा—“ लेकिन अच्छा नहीं किया बेटी, गैवई-गाँव ठहरा यह, डाक्टर-वैद्य वैसे यहाँ मिलते नहीं, ज़रूरत पड़ गई तो—”

अन्नदा बीचहीमें बोल उठी—अब ज़रूरत नहीं पड़ेगी मा । पड़ती तो ये उन्हें हरिजन न छोड़ आतीं । बन्दना-जीजी डॉक्टर-वैद्योंसे भी ज्यादा जानती हैं । ”

दयामयी प्रशंसापूर्ण दृष्टिसे चुन्चाप बन्दनाकी ओर देखती रहीं । बन्दनाने कहा—“अन्नदा-दीदीका बड़ा-चढ़ाके कहनेका स्वभाव है मा, नहीं तो दरअसल मैं कुछ नहीं जानती । जो कुछ थोड़ा-सा सीखा है, सो मुखर्जी साहबकी सेवा करते हुए । ”

अन्नदाने कहा—“ वह कैसी सेवा थी मा, सो सिर्फ मैं ही जानती हूँ । अचानक एक दिन मैं ऐसी आफतमें पड़ गई कि कुछ कहनेकी नहीं । घर पर कोई था नहीं,—वासूकी बीमारीका तार पाकर द्विजुतो चला आया यहाँ, दत्तजी चले गये थे ढाका, विपिनको चढ़ा बुलवार । शुरूके दो दिन तो किसी तरह कट गये, डाक्टर बुलवाये, उन लोगोंने दवा दी, पर डर दिखा गये चौगुना । मैं मूर्ख औरतकी जात, क्या करूँ कुछ समझमें ही न आया । तुम लोगोंको भी खबर नहीं दे सकती थी, विपिनने कर दिया मना,—आकुल-ब्याकुल होकर दौड़ी गई बन्दना-जीजीके पास इनकी मौसीके घर । रोककर कहा—‘ जीजी-बाई, नाराजी छोड़ो, चलो मेरे साथ । तुम्हारे मुखर्जी साहब बहुत बीमार हैं । ये जैसे बैठी थीं वैसे ही उठके चली आई हमारे यहाँ, मौसीसे कहने-सुननेका भी वक्त न मिला इन्हें । घर आकर विपिनका सारा भार इन्होंने उठा लिया । दिन-रातमें एक घंटा भी उन दिनों ये आराम नहीं

कर सकीं। सिर्फ दवा पिलाना ही तो नहीं था,—सबेरे संध्या-पूजाकी तैयारीसे लेकर रातको मशहरी डालकर मुला आने तक जो-कुछ काम था, सब ये ही करती थीं। अब ये अगर दवा नहीं देना चाहतीं मा, तो रहने दो, विपिन ऐसे ही अच्छा-चंगा हो उठेगा।”

विप्रदासने उसी वक्त इस बातका समर्थन करते हुए गंभीरतापूर्वक कहा—
“सचमुच स्वस्थ हो उठूंगा मा, तुम लोग अब बन्दनाके काममें बाधा न डालो, इसके सुबुद्धि हो और मुझे दवा पिलाना बन्द कर दे। मैं मन-वचन-कायसे आशीर्वाद दूंगा—बन्दना राज-रानी होवे।”

दयामयी चुपचाप देखती रहीं। उनकी दोनों आँखोंसे मानो स्नेह और ममता छलकी पड़ती थी।

एक महरीने आकर कहा—“मा, बहू-रानी कह रही हैं कलकत्तेसे जो अभी चीज़-वस्त आई है वह किस कमरेमें रखी जायगी?”

दयामयीके जवाब देनेके पहले ही बन्दना बोल उठी—“मा, मैं आपकी म्लेच्छ-लड़की हूँ तो क्या आपके इतने बड़े काममेंसे मुझे कोई भी भार नहीं मिलेगा, सिर्फ चुपचाप बैठी रहूँगी? ऐसी भी तो बहुत-सी चीज़ें हैं जिनके छूने-छानेसे कुछ बनता-विगड़ता नहीं?”

दयामयीने हाथ पकड़के उसे विलकुल छातीसे लगा लिया, और आँचलसे चाबियोंका एक गुच्छा खोलकर उसके हाथमें थमाते हुए कहा—“चुपचाप तुम्हें बैठी रहने क्यों दूँगी बेटी? यह दी तुम्हें अपने भण्डारकी चाबी, जिसे सिवा बहूके मैं और किसीको नहीं दे सकती। आजसे इसका भार तुम्हींपर रहा।”

“क्या है मा, इस भण्डारमें!”

चाबियोंका यह गुच्छा अत्यन्त परिचित है, द्विजदासने तिरछी आँखोंसे उमे देखते हुए कहा—“जो कुछ है सब छुआछूतकी हदके बाहरकी चीज़ें हैं—सोना-चाँदी, रुपये-पैसे, रेशमी कपड़े,—जिनमें बड़े-बड़े धार्मिक व्यक्ति भी सिरपर लादनेमें आपत्ति नहीं करेंगे—तुम्हारे ब्रू देनेपर भी।”

बन्दनाने पूछा—“क्या करना होगा मा मुझे?”

दयामयी कहने लगीं—“अध्यापक-पण्डितोंकी विदाई, अतिथि-अभ्यागतोंकी सम्मान-रक्षा, आत्मीय-स्वजनोंके खर्चका इन्तजाम, और उसके साथ-साथ इस लड़केपर ज़रा कड़ा शासन,—यही काम है।”—कहते हुए उन्होंने द्विजदासकी तरफ इशारा किया और फिर कहा—“मैं हिसाब नहीं

समझती। इससे मुझे ठग-ठगकर यह इतना रुपया फजूल खर्च कर रहा है कि जिसकी हद नहीं बेटी। इस फजूल-खर्चीको तुम्हें बन्द करना पड़ेगा। ”

द्विजदासने कहा—“ भाई साहबके सामने तुम ऐसी बातें मत करो मा। नहीं तो ये सच ही मान लेंगे। खर्चके खातेमें बाकायदा खर्चका हिसाब लिखा जा रहा है, मिला देखनेसे ही सब मालूम हो जायगा। ”

दयामयीने कहा—“ मिला क्या देखूँ ? खर्चका हिसाब लिखा जा रहा है सो तो मानती हूँ, पर फजूल-खर्चका हिसाब कौन लिख रहा है सो बता ? मैं यही बात बन्दनासे कह रही थी। ”

बन्दनाने कहा—“ मैं जानकर ही क्या करूँगी मा ? उनके रुपये, वे ही फजूल खर्च करें तो मैं कैसे रोक सकती हूँ ? ”

दयामयीने कहा—“ सो मैं नहीं जानती। तुमने भार लेना चाहा था, मैं भार देकर निश्चिन्त हुई। पर एक बात कहती हूँ बन्दना, तुम्हें भी किसी-न-किसी दिन घर-गृहस्थी करनी पड़ेगी, तब अगर फजूल-खर्च बचानेकी जुम्मेवारी तुम्हारे हाथ आ पड़ी तो फिर नाहीं करनेसे छुटकारा नहीं मिलेगा। ”

बन्दनाने द्विजदासकी तरफ देखकर कहा—“ सुन लिया न माका हुकम ! ”

द्विजदासने कहा—“ सुना क्यों नहीं। पर भाई साहबने मुझे दिया है खर्च करनेका भार, और माने तुम्हें दिया है खर्च न करनेका भार। लिहाजा खण्ड-युद्ध होगा ही, तब मुझे दोष देनेसे काम न चलेगा। ”

बन्दनाने सिर हिलाते और मुसकराते हुए कहा—“ दोष देनेकी ज़रूरत न पड़ेगी द्विजदास, झगड़ा हम लोगोंमें नहीं होनेका। आपके ही रुपयोंके बारेमें आप-ही-से मोक-फाइट (नकली लड़ाई) शुरू करनेका बचपन मेरा चला गया है। बंगालमें आकर यह शिक्षा मुझे मिल चुकी है। झगड़ा होनेके पहले माका दिया हुआ भार माके हाथ ही सौंपकर खिसक जाऊँगी। ”

दयामयी ठीक न समझ सकनेपर भी समझ गई कि यह अभिमान स्वाभाविक है। व्यथित कंठसे कहने लगी—“ भार मैं वापस नहीं लेनेकी बेटी, तुम्हींको ढोना पड़ेगा। पर अब यहाँ नहीं, भीतर चलो; तुम्हारा काम तुम्हें समझा दूँ। ”—इतना कहकर वे उसे हाथ पकड़कर भीतर ले गई।

उस दिन बन्दना इस घरमें कुछ घंटे ही रही थी। कहाँ क्या है, देखने-भालनेका मौका नहीं मिला था। आज उसने देखा कि मकानके भीतर एकूके बाद एक खंड आता जाता है, कोई अन्त ही नहीं। आश्रित आत्मीय जनोकी संख्या

भी कम नहीं, बहू-बेटी और नाती-पोतोंको लेकर प्रत्येककी अलग-अलग गृहस्थी है। बाहरकी तरफ है कचहरी और उससे सम्बन्धित सब तरहकी व्यवस्था; परन्तु भीतरकी तरफ इस हिस्सेमें है ठाकुरद्वारा, रसोईघर, दयामयीकी विशाल गौ-शाला, ऊँची चहारदीवारीवाला बगीचा और उसके बीचमें तालाब। दुमंजिलेके पूरवकी तरफके कमरे दयामयीके हैं, उन्हींमेंसे एकके सामने ले जाकर बन्दनासे उन्होंने कहा—“बेटी, यह कमरा तुम्हारा है, इसका सारा भार तुमपर छोड़ती हूँ।”

उधरके बरामदेमें बैठी सती और मैत्रेयी कुछ चीजें बड़े ध्यानसे देख-भाल रही थीं, दयामयीकी आवाज़ सुनकर इधर देख उठीं; और बन्दनाको देखते ही दोनों काम छोड़कर उसके पास आकर खड़ी हो गईं। बन्दना सचमुच ही आयेगी, ऐसी आशा किसीको भी न थी। सतीके पाँव छूकर बन्दनाने मैत्रेयीको नमस्कार किया। माने कहा—“मेरी यह म्लेच्छ लड़की भी किसी कामका भार लेना चाहती है बहू, चुपचाप बैठी रहनेसे नाराज़ है। तुम लोगोंको बहुत-सा काम दे रखा है, इसे देती हूँ मैं अपने भण्डारकी चाबी।”

मैत्रेयीने पूछा—“भण्डारमें क्या है मा ?”

माने कहा—“इसमें ऐसी चीज़ें हैं जिनको म्लेच्छ-लड़कीके छूनेपर भी छूत नहीं लगती।”—इतना कहकर दयामयीने कौतुककी हँसी हँसकर कमरा खोला और उसके भीतर जा खड़ी हुई। जमीनपर बहुतसे चाँदीके थाल रखे हुए थे—ब्राह्मण-पण्डितोंको विदाईमें देनेके लिए। एक जगह कलकत्तेसे भुनाकर मँगाये हुए रुपये और अठन्नी-चौअन्नियोंका ढेर लगा हुआ था। कीमती रेशमी वस्त्रादि अभी तक ज्योंके त्यों ढँधे पड़े हुए हैं—खोलकर देखनेका अवकाश ही नहीं मिला। इनके अलावा दयामयीकी अपनी आलमारी और सन्दूक भी इसी कमरेमें है। हाथसे सब दिखाते हुए उन्होंने हँसक कहा—“बन्दना, इनमें मेरा यथा-सर्वस्व है; और इसीपर द्विजूका सबसे ज्यादा लोभ है। यहीं तुम्हें सबसे ज्यादा पहरा देना होगा बेटी।”

बन्दनाके मुँहकी तरफ देखकर सतीने उसकी तरफसे कहा—“इतने बड़े कामका भार क्या इमपर सौंपा जा सकता है मा ? बहुत ज्यादा रुपये-पैसेका मामला है—” उसकी बात पूरी भी न हो पाई कि दयामयी कहने लगी—“बहुत ज्यादा रुपये-पैसेका मामला होनेसे ही तो इसके हाथमें चाबी सौंपी है बहू ! नहीं तो द्विजू मुझे दिवालिया कर देगा।”

“ पर यह जो बाहरसे आई है मा ? ”

सतीकी यह बात भी पूरी न हो पाई और दयामयी हँसती हुई बोली—
“ बाहरसे तो किसी दिन तुम भी आई थीं, और उसके भी बहुत पहले इसी तरह मुझे भी बाहरसे ही आना पड़ा था । यह कोई उज्र नहीं है बहू । पर अब मेरे पास वक्त नहीं है, मैं जाती हूँ । ”—इतना कहकर वे कमरेसे निकलकर नीचे चली गई ।

बन्दनाने कहा—“ तुम्हारे घरमें आकर यह कैसे जालमें फँस गई जीजी । मुझे तो सौंस लेनेका भी वक्त न मिलेगा । ”

“ मालूम तो ऐसा ही पड़ता है । ”—कहकर सती सिर्फ़ ज़रा हँस दी ।

× × ×

२३

संसारमें विपत्ति कहाँसे और किस रास्तेसे कब अपना स्वरूप दिखाती है, इसका खयाल करनेसे आश्चर्यमें पड़ना पड़ता है । काम-काजके बीचमें कल्याणीने आकर रोते हुए कहा—“ मा, वे कह रहे हैं कि उनके साथ मुझे अभी तुरन्त घर चलना पड़ेगा । गाड़ीका अभी वक्त नहीं हुआ,—स्टेशन जाकर बैठे रहेंगे सो भी अच्छा,—पर इस घरमें अब एक क्षण भी नहीं रहना चाहते । ”

तालाबकी प्रतिष्ठाकी शास्त्रीय क्रिया अभी अभी समाप्त हुई है और अभी तुरत ही दयामयीने मण्डपसे घरमें आकर पैर रक्खा है । जवरदस्त व्यस्ततामें लड़कीकी बात सुनके वे ठिठककर खड़ी हो गई, उसकी बात अच्छी तरह, वे समझ न सकीं, हतबुद्धि-सी होकर बोली—“ कौन कह रहा है तुम्हें जानेके लिए,—शशधर ? क्यों भला ? ”

“ बड़े-भइयाने उनका बड़ा-भारी अपमान किया है—घरसे निकाल दिया है । ”—कहती हुई कल्याणी उफनते हुए आवेगसे रो पड़ी ।

चारों तरफ़ स्त्री-पुरुषोंकी भीड़ है,—कहीं खाने-पीनेकी तैयारियाँ हो रही हैं तो कहीं गाने-बजानेका आयोजन, कहीं भित्तिचित्रोंका परस्पर वितण्डावाद हो रहा है तो कहीं ब्राह्मण-पण्डितोंका शास्त्रार्थ,—अगणित लोगोंका अप्रतिमय कोलाहल हो रहा है,—उसके बीचमें अकस्मात् यह उपद्रव उठ खड़ा हुआ ।

सती और मैत्रेयी भी आ पहुँचीं, बन्दना भण्डारके दरवाजेमें ताला लगाकर पास आ खड़ी हुई, नाते-रिश्तेदारोंमेंसे भी बहुतसे स्त्री-पुरुष कुतूहली हो उठे। शशधरने आकर प्रणाम करते हुए कहा—“ मा, हम लोग चल दिये। आनेके लिए आज्ञा दी थी हम लोग आ गये, पर टिक नहीं सके। ”

“ क्यों बेटा ? ”

“ विप्रदास बाबूने अपने कमरेमेंसे मुझे निकाल दिया है। ”

“ इसकी वजह ? ”

“ वजह शायद यही होगी कि वे बड़े आदमी हैं। मारे अहंकारके आँख-कानसे कुछ दिखाई सुनाई नहीं देता। सोचा होगा कि अपने घर बुलाकर अपमान करना आसान है। लेकिन अपने लड़केको ज़रा समझा दीजिएगा, मेरे बाप भी ज़मींदारी छोड़ गये हैं और वह निहायत छोटी भी नहीं है। मुझे भी भीख माँगके गुज़र नहीं करनी पड़ती। ”

दयामयी व्याकुल होकर बोलीं—“ विपिनको बुलवाती हूँ बेटा, क्या हुआ है पूछती हूँ। मेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ है, ब्राह्मण-भोजन बाकी है, वैष्णव-भिक्षुओंकी बिदाई भी अभी नहीं हुई है। उसके पहले ही अगर तुम लोग नाराज़ होके चले जाओगे शशधर, तो जिस तालाबकी अभी अभी प्रतिष्ठा हुई है उसीमें मैं डूब मरूँगी, यह तुम लोग निश्चयसे समझ लेना। ”—कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू भर आये।

सासुके आँसुओंसे विशेष कोई फल न हुआ। भद्र-सन्तान होते हुए भी शशधरकी आकृति और प्रकृति दोनोंमेंसे कोई भद्रोचित नहीं है। पास जाकर सटके खड़े होनेमें मन संकुचित हो उठता है। उसका विपुल शरीर और विपुलतर मुखमण्डल क्रुद्ध बिलावकी तरह फूलने लगा, बोला—“ रह सकता हूँ, अगर विप्रदास बाबू यहाँ आकर सबके सामने हाथ जोड़कर मुझसे माफी माँगे। नहीं तो नहीं। ”

उसका यह प्रस्ताव इतना अधिक अचिन्त्य और असंभव-सा था कि सुनकर सब आश्चर्यसे दंग रह गये। विप्रदास माफी माँगेगा हाथ जोड़के ! और सबके सामने ! कुछ देर तक सभी चुप रहे; सहसा आशंकासे जर्द चेहरेसे अत्यन्त विनयके साथ सती बोल उठी—“ नन्दोईजी, अभी नहीं। काम-काज सब मिट जाने दो, रातको मा ज़रूर इसका फैसला कर देंगी। तुम्हारा अपमान

क्या कभी किया जा सकता है ? अन्याय किया होगा तो बे ज़रूर माफी माँग लेंगे । ”

बन्दनाकी आँखोंकी कोरें ज़रा स्फुरित हो उठीं, किन्तु उसने शान्त स्वरमें कहा—“ वे अन्याय तो कभी करते नहीं जीजी ! ”

सतीने उसे झँट दिया, बोली—“ तू चुप रह बन्दना । अन्याय सभी करते हैं । ”

बन्दनाने कहा—“ नहीं, वे नहीं करते । ”

सुनकर मैत्रेयी मानो जल-भुन उठी, उसने तीक्ष्णस्वरसे कहा—“ कैसे जाना आपने ? वहाँ तो आप थीं नहीं । ये क्या फिर बनाके कह रहे हैं ? ”

बन्दनाने क्षण-भर उसकी तरफ देखा, फिर बोली—“ बनाके कहनेकी बात मैं नहीं कह रही । मैंने सिर्फ़ यही कहा है कि मुखर्जी साहब अन्याय नहीं करते । ”

मैत्रेयीने इसके उत्तरमें वैसे ही वक्र-व्यंगके साथ कहा—“ अन्याय सभी करते हैं । कोई भगवान नहीं हैं । असम्मान करनेमें तो उन्होंने मेरे पिताजीको भी नहीं छोड़ा । ”

बन्दनाने कहा—“ तब तो फिर शशधर बाबूकी तरह उन्हें भी चला जाना चाहिए था, रहना नहीं चाहिए था । ”

मैत्रेयीने तीक्ष्ण-स्वरमें जवाब दिया—“ इसकी कैफियत आपको देनेकी नहीं है, इसका फैसला होगा द्विजू बाबूके साथ, जो निमंत्रण देकर लायें हैं । ”

सतीने रोषके साथ तिरस्कार करते हुए कहा—“ तेरे पैरों पड़ती हूँ बन्दना, तू जा यहाँसे, अपने काममें लग । ”

शशधरने दयामयीको लक्ष्य करके कहा—“ मैं लेकिन न्याय-अन्यायका फैसला कराने नहीं आया मा, आया हूँ यह जाननेके लिए कि आपके लड़के हाथ जोड़कर मुझसे माफी माँगेंगे या नहीं ? नहीं तो मैं चला—एक मिनट भी नहीं रह सकता । आपकी लड़की चलना चाहें तो मेरे साथ चल सकती हैं, न जाना चाहें तो न सही, मगर उसके बाद फिर वे सुसरालका नाम जवानपर न लावें । यहींपर आज ही सब खतम कर देना है । ”

यह कैसी सर्वनाशकी बात है ! शशधरके लिए कुछ असंभव नहीं है,—लड़की—जमाईको घर बुलाकर यह कैसी भीषण विपत्ति मोल ली ! सामने खड़ी-खड़ी कल्याणी रोती ही रही । सलाह देनेवाला कोई नहीं है, चौधने का

भी वक्त नहीं। त्रास लज्जा और गहरे अपमानसे दयामयीकी कर्तव्य-बुद्धिपर परदा-सा पड़ गया। कुछ सोच न सकी और डरती हुई बोली—“तुम ज़रा ठहरो बेटा, मैं विपिनको बुलवाती हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि तुमसे कहीं-न-कहीं कोई जबरदस्त भूल हो गई है; पर इन घर-भरके सब लोगोंके बीच यह कलंक प्रकट हो जानेसे मुझे आत्महत्या करके मर जाना पड़ेगा बेटा।”

शशधरने कहा—“मैं खड़ा हूँ, बुलाइए उन्हें। विप्रदास बाबू झूठ ही कह दें कि यह काम उन्होंने नहीं किया।”

“झूठ वह बोलता नहीं शशधर।”—इतना कहकर दयामयीने विप्रदासको बुलवा भेजा। कोई पाँच मिनट बाद विप्रदास आके खड़ा हो गया। वैसा ही शान्त गम्भीर और आत्म-निमग्न। सिर्फ आँखोंमें एक तरहकी उदास क्लान्तिकी छाया झलक रही है,—उसके पीछे कौन-सी बात छिपी हुई है यह बताना कठिन है।

दयामयी उफनते हुए आवेगके साथ कह उठी—“तेरे खिलाफ शशधर क्या बात कह रहा है विपिन ? कहता है तैंने उसे अपने कमरेमेंसे निकाल दिया है। यह क्या कभी सच हो सकता है ?”

विप्रदासने कहा—“सच तो है ही मा।”

“कमरेसे सचमुच ही निकाल दिया है तैंने मेरे जमाईको ? मेरे इस काम-काजके घरमें ?”

“हाँ, सचमुच ही निकाल दिया है। कह दिया है कि आइन्दा फिर कभी मेरे कमरेमें न आवें।”

सुनकर दयामयी वज्राहतकी भाँति निस्पन्द हो गई। कुछ देर बाद, उनका यह अभिभूत-भाव दूर होनेपर उन्होंने पूछा—“क्यों ?”

“उसे तुम्हारा न सुनना ही अच्छा है मा।”

सती स्थिर न रह सकी, व्याकुल होकर बोल उठी—“हम लोग कोई भी सुनना नहीं चाहतीं, पर नन्दोईजी कल्याणीको लेकर इसी वक्त चले जाना चाहते हैं। इतने आदमियोंके बीच, ज़रा सोच देखो कि कितनी ज़बरदस्त फजीहत होगी,—इनसे कहो कि तुमसे अचानक अन्याय हो गया है, कहो इन लोगोंके रहनेके लिए।”

विप्रदासने क्षण-भरके लिए अपनी स्त्रीक मुँहकी ओर देखा, फिर कहा —
“ अचानक मुझसे अन्याय नहीं होता सती । ”

“ होता है, होता है, अचानक अन्याय सभीसे हो जाता है । कहो न इनसे रहनेको । ”

विप्रदासने सिर हिलाते हुए कहा—“ नहीं, अन्याय मुझसे नहीं होता । ”

पति-पत्नीकी बातचीतके बीचमें दयामयी स्तब्ध हुई खड़ी थी, अकस्मात् किसीने मानो उन्हें झकझोर कर सचेतन कर दिया, तीव्र कण्ठसे कह उठी—
“ न्याय-अन्यायकी तकरार रहने दो । लड़की-जमाई मेरे हमेशाके लिए गैर हो जायेंगे—यह मुझसे नहीं सहा जायगा । शशधरसे तुम माफी माँगो विपिन । ”

“ यह नहीं होगा मा, यह असम्भव है । ”

“ सम्भव-असम्भव मैं नहीं जानती । माफी तुझे माँगनी ही होगी । ”

विप्रदास स्थिर होकर खड़ा रहा । दयामयीने मन-ही-मन समझ लिया कि इस असम्भवको अब सम्भव नहीं किया जा सकता । अब तो उनके क्रोधकी सीमा न रही, बोलीं—“ घर तुम्हारा अकेलेका नहीं है विपिन । किसीको निकाल बाहर करनेका अधिकार तुम्हारे पिता तुम्हें नहीं दे गये । ये लोग इस घरमें रहेंगे । ”

विप्रदासने कहा—“ देखो मा, मुझे बगैर बुलाये अगर तुम यह आदेश देती तो मैं चुप ही बना रहता, पर अब नहीं रह सकता । शशधर रहेगा तो मुझे घर छोड़कर चला जाना पड़ेगा । फिर मुझे वापस नहीं बुला सकोगी । कौन-सी बात चाहती हो बताओ ? ”

जीवनमें ऐसे भयानक प्रश्नका उत्तर देनेके लिए कभी किसीने उन्हें नहीं पुकारा, न इतनी बड़ी दुर्भेद्य समस्याका सामना करनेको ही कभी किसीने कहा । एक तरफ लड़की और जमाई हैं तो दूसरी तरफ खड़ा है उनका विपिन—जिस बच्चेको उन्होंने छातीसे लगाकर इतना बड़ा किया है, जो समस्त आत्मीयोंसे बड़ा आत्मीय है, दुःखमें सान्त्वना है, विपत्तिमें आश्रय है—और जो उनको प्राणोंसे भी प्यारा है । यह अमर्यादा उन्हें मृत्यु देगी, किन्तु संकल्पच्युत न करेगी । समझ गई कि सर्वनाशका अतलस्पर्श गह्वर उनके पैरोंके नीचे आ गया है, इस भूलका प्रतीकार नहीं है, गई बातके फिरसे वापस आनेका भी कोई रास्ता नहीं,—परिणाम इसका दैवके समान ही अमोघ है, निर्भय है, और अनन्यगति भी । फिर भी, अपनेको वे दमन न कर सकीं, अदृश्य क्रोध

और अभिमानके तूफानने उन्हें सामनेकी ओर ही ढकेल दिया, कटु कण्ठसे बोलीं—“ यह तुम्हारी अन्यायपूर्ण जिद है विपिन, तुम्हारे लिए मैं लड़की-जमाईको जनम-भरके लिए पराया नहीं बना सकती बेटा । तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो । शशधर, आओ तुम लोग मेरे साथ आओ,—उसकी बातपर ध्यान देनेकी ज़रूरत नहीं । मकान उसका अकेलेका नहीं है । ”—इतना कहकर वे शशधर और कल्याणीको अपने साथ लेकर चली गईं । उनके पीछे पीछे गई मैत्रेयी, जैसे वह उन्हीं लोगोंकी अपनी कोई हो ।

मालूम होने लगा था कि सतीका हृदय-मन अब बिलकुल चकनाचूर हो जायगा । किन्तु उसकी अचंचल दृढ़ता देखकर बन्दना और विप्रदास दोनों ही आश्चर्यसे दंग रह गये । उसकी आँखोंमें आँसू न थे, किन्तु चेहरा पीला-जर्द पड़ गया था, बोली—“ नन्दोईजीने क्या किया है हम नहीं जानती, पर बिना कारण तुमने भी इतनी बड़ी वारदात न की होगी सो निश्चयसे जानती हूँ । सोच-विचार मत करो, अपने मनमें मैं तुम्हें रंजमात्र भी दोष न दूँगी । ”

विप्रदास चुप रहा । सतीने पूछा—“ तुम क्या आज ही चले जाओगे ? ”

“ नहीं, कल जाऊँगा । ”

“ अब न आओगे इस घरमें ? ”

“ इरादा तो नहीं है । ”

“ मैं ? वासू ? ”

“ जाना तुम लोगोंको भी होगा । कल न जा सको, और किसी दिन । ”

“ नहीं, और किसी दिन नहीं,—हम लोग भी कल जायेंगे । ”—इतना कहकर सतीने बन्दनासे पूछा—“ तू क्या करेगी बन्दना, कल ही जायेगी ? ”

बन्दनाने कहा—“ नहीं । मैंने तो झगड़ा नहीं किया जीजी, जो दल बाँधकर कल ही जाना पड़े ? ”

सतीने कहा—“ झगड़ा मैंने भी नहीं किया बन्दना, न इन्होंने किया है । पर जहाँ इनके लिए जगह नहीं है वहाँ मेरे लिए भी नहीं है । एक दिनके लिए भी नहीं । तेरा ब्याह हुआ होता तो इस बातको समझ जाती । ”

बन्दनाने कहा—“ ब्याह नहीं होने पर भी समझती हूँ जीजी, पतिके लिए जगह नहीं होती तो स्त्रीके लिए भी नहीं हो सकती । पर भूल तो होती ही

है। बगैर समझे उसीको स्वीकार करना स्त्रीका कर्तव्य है—तुम्हारी यह बात मैं नहीं मानूँगी।”

सासुके प्रति सतीके अभिमानकी सीमा नहीं थी, बोली—“ पति होते तो मान जाती। ”—और आँसू दवानेके लिए तेजीसे वहाँसे चली गई।

बन्दनाने कहा —“ यह क्या किया मुखर्जी साहब ? ”

“ बगैर किये कोई उपाय न था बन्दना । ”

“ लेकिन माके साथ विच्छेद, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती । ”

विप्रदासने कहा—“ नहीं की जा सकती यह सच है, किन्तु नया प्रश्न आकर जब रास्ता घेर लेता है तो नये समाधानकी ही बात सोचनी पड़ती है। बचके निकलनेका सूरख नहीं रहता। तुम्हारी जीजी मेरे साथ जायगी ही—रोकना फ़ज़ूल है। मगर तुम ? और भी दो-चार दिन रहनेका इरादा है क्या ? ”

बन्दनाने कहा—“ कितने दिन रहना पड़ेगा मुझे नहीं मालूम। पर नये प्रश्न आपके आगे चाहे जितने भी आयें, मैं लेकिन उस पुराने रास्तेसे ही उसका उत्तर ढूँढ़ती रहूँगी—जो रास्ता पहले दिन मेरी नज़रोंमें पड़ा था जब कि अचानक इस घरमें आकर खड़ी हुई थी,—जिसकी तुलना कहीं भी नहीं देखी, जिसने मेरे मनकी धारा ही हमेशाके लिए बदल दी है । ”

विप्रदासने इसका कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ़ उसके ओठोंके किनारे पर म्लान हँसीका ज़रा-सा आभास दिखाई दिया। उस हँसीमें जितनी वेदना थी उतनी ही निराशा। उसने कहा—“ मैं बाहर जा रहा हूँ बन्दना, फिर मुलाकात होगी । ”

बन्दनाकी आँखोंमें आँसू भाप बनकर घुमड़ रहे थे; वह बोली—“मुलाकात अगर हुई तो उस समय मैं दूरसे ही आपको प्रणाम करूँगी। कठोर है आपकी प्रकृति, कठिन है आपका मन,—न उसमें स्नेह है, न क्षमा। तब शायद न कह सकूँ। शायद मौका न मिले, इसीसे अभीसे कहे रखती हूँ मुखर्जी साहब, जिनको लेकर हमारी घर-गृहस्थी, हँसना-रोना, मान-अभिमान चला करता है, हम उन्हींको साथ लेकर चल सकें—उन्हींको हम इस जीवनमें अपना सोचना-समझना सीख सकें। मरीचिकाके पीछे-पीछे हमें न भटकना पड़े। ”—फिर ज़रा ठहरकर बोली—“ दूरसे जब कभी आप याद आयेंगे तभी एकप्र मनसे यह मंत्र जपा करूँगी—वे निर्मल हैं, वे निष्पाप हैं, वे महान् हैं। मनकी

पाषाण शिलाभर उनका लेशमात्र भी दाग नहीं पड़ता । जगतमें वे अकेले हैं, किसीके अपने नहीं हैं वे,—संसारमें कोई उनका अपना नहीं हो सकता । ”
—यह कहकर आँखोंपर आँचल दबाकर वह वहाँसे चली गई ।

×

×

×

उस दिन काम-काज बहुत रात बीते खतम हुआ । इस घरकी सुशृंखलित धारामें कहीं भी कोई व्याघात नहीं हुआ । बाहरसे कोई जान ही न सका कि उस शृंखलाकी सबसे बड़ी कड़ी ही आज टूटकर चकनाचूर हो गई है । सबेरा होनेमें ज्यादा देर नहीं है । काम-काजसे थका हुआ विशाल भवन त्रिलकुल नीरव है,—जिसे जहाँ जगह मिल गई थी वह वहीं नींदमें पड़ा सो रहा है । भण्डारकी भारी जुम्मेदारी निभाकर बन्दना श्रान्त कदमोंसे अपने कमरेकी तरफ जा रही थी, उसकी निगाह पड़ गई कि उधरके बरामदेके पास द्विजदासके कमरेमें बत्ती जल रही है । दुविधा उठ खड़ी हुई कि इस समय वहाँ जाना उचित है या नहीं, किसीकी निगाह पड़ गई तो वह उसके साथ न्याय नहीं करेगा और निन्दा शायद सौ-सौ मुँहसे फैल जायगी; मगर फिर भी वह रुक न सकी, जिस उद्वेगने उसे दिन-भरसे चंचल और अशान्त कर रक्खा है वह उसे उसी ओर ढकेल ले गया । बन्द दरवाजेके सामने जाकर उसने पुकारा—“ द्विजू बाबू, अभी तक जाग रहे हैं ? ”

भीतरसे जवाब आया—“ हाँ । पर इतनी रातमें आप कैसे ? ”

“ आ सकती हूँ ? ”

“ बड़ी खुशीसे । ”

बन्दनाने दरवाजा खोलकर भीतर जाकर देखा कि ढेरके ढेर कागजात लिये हुए द्विजदास बिस्तरपर बैठा हुआ है । उसने पूछा—“ आजका हिसाब होगा ? पर हिसाब तो भागा नहीं जा रहा द्विजू बाबू, इतनी रात जागनेसे तबीयत जो खराब हो जायगी ? ”

द्विजदासने कहा—“ हो जाती तो जी जाता, इन सबको आँखोंसे न देखना पड़ता । ”

“ खर्च बहुत ज्यादा हो गया होगा ? भाई साहबके सामने कैफियत देनी पड़ेगी क्या ? ”

द्विजदास कागजातोंको एक तरफ हटा-हुटकर सीधा होके बैठ गया, बोला—

“ चक्रवर्त्यरिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च । श्रीगुरुकी कृपासे जे दिन अब मेरे नहीं रहे बन्दना देवी, जो भाई-साहबके आगे कैफियत देनी होगी । अब उलटा मैं कैफियत चाहूँगा उनसे । कहूँगा—लाओ जल्दी हिसाब, जल्दी लाओ रुपया, कहाँ कैसा खर्च-वर्च किया है बताओ । ”

बन्दना दंग रह गई, बोली—“ बात क्या है ? ”

द्विजदास दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर उन्हें माथेके ऊपर उठाकर बोला—
“ बात अत्यन्त भीषण है । मा दयामयी मुझपर दया करें, बहनोई शशधर मेरे सहाय हों—सावधान विप्रदास ! तुम्हें अबकी मैं धन और प्राण दोनोंसे वध करूँगा । हम लोगोंके हाथसे अब तुम्हारा निस्तार नहीं है । ”

बन्दनाकी चिन्ता दुर्दमनीय हो उठी, फिर भी वह बगैर हँसे न रह सकी, बोली—“ सब बातोंमें आपको मज़ाक ही सूझता रहता है ? आप क्या एक क्षण भी सीरियस (गम्भीर) नहीं रहना जानते द्विजू बाबू ? ”

द्विजदासने कहा—“ जानता नहीं ? तो ले आओ शशधरको, लाओ,—नहीं, रहने दो उन लोगोंको । देखोगी कि उनके सामने हँसी-मज़ाक गाँव छोड़के भाग जायगा चुटकियोंमें सहाराकी मरुभूमिमें, और गाम्भीर्यका मुखमण्डल हो उठेगा जंगली-ओल (जर्मीकन्द) के समान डरावना । परीक्षा कर देखिए । ”

बन्दना कुरसी खींचकर बैठ गई; बोली—“ तो आपने सब सुन लिया है ? ”

“ सब नहीं, यत्-किंचित् । सब जानते हैं भाई साहब । पर वहाँ गहन वन है, कुछ पता नहीं लगनेका । और जानता है शशधर । वह बता ज़रूर देगा, पर सब झूठ बनाकर बतायेगा । ”

बन्दना व्याकुल-कंठसे बोली—“ जो कुछ आपको मालूम है, मुझे बता सकते हैं द्विजू बाबू ? मैं वास्तवमें बहुत डर गई हूँ । ”

द्विजदासने कहा—“ डरना व्यर्थ है । भाई-साहबका संकल्प टससे मस नहीं हो सकता,—उनको हम लोगोंने खो दिया । ”

बत्तीके उजालेमें अब देखा गया कि आँसुओंसे आँखें उसकी डबडबा आई हैं; गरदन फेरकर किसी कदर उन्हें पोंछकर वह सीधा होके बैठ गया ।

बन्दनाने गाढ़े स्वरमें कहा—“ बिच्छेद इतनी आसानीसे आ जायगा द्विजू बाबू, सचमुच ही क्या इसे रोका नहीं जा सकता ? ”

द्विजदासने सिर हिलते हुए कहा—“ नहीं । यह ऐसी चीज़ है कि जब आती है तब ऐसी ही अबाध गतिसे—ऐसी ही तेजीसे आती है, मन्माही फिर

मानती ही नहीं। जिसे रोना होता है वह रोता रहता है, पर अन्त उसका यहींपर है।” —क्षण-भर मौन रहकर फिर कहने लगा —“ आप जानना चाहती हैं कारण ? विस्तारसे तो मैं नहीं जानता, पर जितना जानता हूँ उसे सिर्फ आपको ही बताऊँगा, और सहायता अगर कभी माँगनी पड़ी तो आपसे ही माँगूँगा — फिर आप चाहे कहीं भी क्यों न रहें। ”

“ सिर्फ मुझसे ही क्यों ? ”

“ उसका कारण यह है कि हाथ अगर पसारना ही पड़े तो महत्के आगे — यही शास्त्रका विधान है। ”

“ पर महत् क्या और कोई नहीं है ? ”

“ शायद हो, पर मुझे उसका पता नहीं मालूम। भाई-साहबकी बात न छेड़ूँगा, पर हमेशाका अम्यास था भाभीके आगे हाथ पसारनेका, वह रास्ता भी आज बन्द हो गया। आप उनकी बहन हैं, मेरा दावा उसी नातेसे है। ”

“ और मा ? ”

द्विजदासने कहा —“ रथ जब तेजीसे चलता है तो मा उसकी असाधारण सारथी रहती हैं, पर पहिये जब कीचड़में धँस जात हैं तो मा उस वक्त असहाय-निरुपाय हो जाती हैं। उतरकर वे उसे ढकेल नहीं सकतीं। उस बुरे वक्तपर जाऊँगा आपके पास, — देंगी भिक्षा ? ”

“ भिक्षाका विषय बगैर जाने कैसे बताऊँ द्विजू बाबू ? ”

“ सो तो मैं खुद भी नहीं जानता बन्दना; और सहजमें माँगने मैं भी न जाऊँगा। जब कहींसे भी कुछ न मिलेगा, तभी पहुँचूँगा आपके पास। ”

बन्दना बहुत देर तक नीचेको सिर झुकाये बैठी रही, फिर मुँह उठाकर बोली —“ जो मैंने जानना चाहा था, नहीं बतायेंगे ? ”

द्विजदासने कहा —“ सब मुझे नहीं मालूम, जितना जानना हूँ वह भी शायद अभ्रान्त न हो। पर एक विषयमें मुझे कोई सन्देह नहीं कि भाई-साहब आज सर्वस्वान्त हो गये — उनके पास कुछ भी नहीं रहा, सब गया। ”

बन्दना चौंक उठी, बोली —“ मुखर्जी साहब आज सर्वस्वान्त हो गये ! कैसे ऐसा हुआ द्विजू बाबू ? ”

द्विजदासने कहा —“ बहुत ही आसानीसे और उस शशधरके षड्यंत्रसे। साहा-बौधरी-कम्पनीने अकरमात् उस दिन दिवाला निकाल दिया और भाई-

साहबका सर्वस्व भी उसी वक्त उसी गड्ढेमें डूब गया । भीतर छिपा रह गया एक और ही इतिहास । ”

बन्दना व्याकुल होकर बोली—“ इतिहासको रहने दीजिए द्विजू बाबू, सिर्फ घटनाकी बात ही बनाइए । सर्वस्व जानेकी बात सच है या नहीं ? ”

“ हाँ, सच है । वहाँ कोई गलती नहीं है । ”

“ और जीजी ? वासू ? उनके लिए भी कुछ नहीं रह गया ? ”

“ नहीं । रह गई सिर्फ भाभीके मायकेकी आमदनी । मामूली थोड़ेसे रुपये । ”

“ पर उसे तो मुग्धजी साहब छूएँगे नहीं द्विजू बाबू ? ”

“ नहीं । उसकी अपेक्षा उपास करनेपर भाई साहबका कहीं ज्यादा विश्वास है । जो भी दिन वीतें । ”

दोनों चुप रह गये । कुछ मिनट बाद बन्दनाने पूछा—“ और आप ? आपका अपना क्या हुआ ? ”

द्विजदासने कहा—परम निर्भय और निरापद बना हुआ हूँ । भाई साहब खुद डूबे पर मुझे तैरता ही छोड़ गये । पानीकी एक बूँद भी पेटमें नहीं जाने दी । आप पूछेंगी कि यह असम्भव सम्भव कैसे हुआ ? हुआ—माकी सुबुद्धि, भाई साहबकी साधुता और मेरे अपने शुभ-ग्रहकी शुभ दृष्टिसे । किस्सा सुनाता हूँ, सुनिए,—यह शशधर था भाई-साहबका बाल्यबन्धु, सहपाठी । दोनोंकी मुहब्बतकी कोई हद न थी । बड़े होनेपर भाई साहबने उसके साथ कर दिया कल्याणीका ब्याह । यह घटकता (सम्बन्ध मिलाना) ही भाई साहबके जीवनकी अक्षय कीर्ति है । सुननेमें आया कि शशधरके पिताके बच्ची-भारी जमींदारी है, बहुत पैसा है, विशाल कारोबार है । इतना बड़ा धनवान् व्यक्ति पबना जिलेमें और कोई नहीं है । चार-ही साल बीते होंगे कि अचानक एक दिन शशधरने आकर खबर दी कि जमींदारी, ऐश्वर्य, कारोबार सब अथाह पानीमें डूबनेवाला है, अब देर नहीं,—रक्षा करनी ही होगी । माने कहा, ‘ रक्षा करना ही उचित है, पर द्विजू मेरा अभी नाबालिग है, उसके पैसेपर तो हाथ लगाया नहीं जा सकता बेटा । ’ शशधरने कहा, ‘ साल-भर भी न लगेगा मा, सब चुकता हो जायगा । ’ माने कह दिया, ‘ आशीर्वाद करती हूँ कि, ऐसा ही हो, पर नाबालिगकी सम्पत्ति है, उसके पिता बिलकुल मनाही कर गये हैं । ’

“ कल्याण रोती हुई आई और भाई-साहबके पैरों पड़ गई, बोली, ‘ भइया

ब्याह तुम्हींने किया था मेरा, आज बाल-बच्चोंको लेकर मैं भीख माँगती फिरूँगी और तुम अपनी आँखोंसे देखा करोगे ? मा देख सकती हैं, पर तुम ? ' जहाँ उनका धर्म है, जहाँ उनका विवेक और वैराग्य है, जहाँ वे हम सबसे बड़े हैं, कल्याणीने वहीं चोट की। भाई साहबने अभय देते हुए कहा, ' तू घर जा बहन, जो कुछ करना होगा मैं करूँगा। ' उसी अभय-मंत्रको जपते-जपते कल्याणी अपने घर चली गई। उसके बादका इतिहास संक्षिप्त है बन्दना। पर उधर तो देखो, सबेरा हो रहा है। "—कहते हुए उसने खुली हुई खिड़कीकी ओर उसकी दृष्टि आकर्षित की।

बन्दना उठके खड़ी हो गई, बोली—“ और ये कागजात आपके कैसे हैं ? ”

द्विजदासने कहा—“ मेरे निर्भय रहनेके दस्तावेज हैं। आते वक्त भाई साहब अपने साथ लेते आये थे। पर मैं पूछता हूँ, आप भी क्या हम लोगोंको ऐसे ही छोड़कर आज ही चली जायेंगी ? ”

“ ठीक नहीं मालूम द्विजू बाबू। पर अब समय नहीं रहा, मैं जा रही हूँ। फिर मुलाकात होगी। ”—इतना कहकर बन्दना धीरेसे वहाँसे चली आई।

×

×

×

२४

अपनी जीजीको जबरदस्ती एक कुरसीपर बिठाकर बन्दना उसके पाँवोंमें महावर लगा रही थी। उसे यह मंगलाचार सिखाकर अन्नदा खुद न-जाने कहाँ छिप गई है। उसकी आँखें लाल-सुख हो रही हैं, लगातार आँसू बहाते-बहाते आँखें सूज गई हैं। बन्दनाके पूछनेपर उसने संक्षेपमें कहा था—“ बहूको मैं अपना मुँह नहीं दिखा सकूँगी। ”

“ तुम क्यों नहीं दिखा सकोगी अनु-दीदी, तुम्हें किस बातकी शरम है ? ”

“ मुझे शरम इस बातकी है कि इसके पहले ही मैं क्यों नहीं मर गई ? सिर्फ द्विजूको ही तो मैंने पाल-पोसकर इतना बड़ा नहीं किया जीजी-बाई, विपिनको भी किया है। उसकी मा जब मरी थी तो किसके हाथ सौंपा था उसने अपने दो-महीनेके नन्हें-से बच्चेको ? मेरे ही हाथों। उस दिन कहाँ थीं

दयामयी ? कहीं थे उनकी लड़की और जमाई ? ”—कहते-कहते वह मुँहपर आँचल दबाकर कहीं अन्यत्र चली गई। जमीनपर बैठके अपने घुटनोंपर जीजीके पाँव रखकर बन्दनाका महावर लगाना मानो खतम ही नहीं होना चाहता।

टप-से एक बँद गरम आँसू सतीके पाँवपर आ पड़ा। झुककर भी वह बन्दनाका मुँह नहीं देख सकी। पर हाथसे उसकी आँखें पोंछकर बोली—
“तू क्यों रो रही है बता तो बन्दना ?”

बन्दनाने उसी तरह सिर झुकाये हुए रँधे हुए कंठसे कहा—“रो तो सभी रहे हैं जीजी। मैं ही अकेली तो नहीं रो रही हूँ।”

“सभी रो रहे हैं सो क्या तुझे भी रोना पड़ेगा, इतना पढ़-लिखकर क्या यही तैने युक्ति सीखी है ?”

सतीकी बात सुनकर बन्दनाने एक क्षणके लिए अपना मुँह उठाकर उसकी ओर देखा, ओर कहा—“युक्ति दिखाके रोना पड़ेगा, नहीं तो आदमी रोयेगा नहीं, तुम्हारी भी यह कैसी युक्ति है जीजी ?”

सतीने अपने हाथसे बन्दनाका माथा हिलाते हुए स्नेहके साथ कहा—
“तर्कवागीशके साथ तर्कमें जीतना मुश्किल है। ऐसा नहीं कहा री मैंने, ऐसा नहीं कहा। उन लोगोंका खयाल है कि हमारा सब-कुछ जाता रहा, इसीसे वे रो रहे हैं मगर सबमुच तो ऐसा हुआ नहीं। मेरे एक तरफ तो हैं पति और दूसरी ओर है पुत्र,—संसारमें कोई भी नुकसान मेरा नहीं हुआ बहन, मेरे लिए तू शोक मत कर। दुःख मुझ नहीं है।”

बन्दनाने कहा—“दुःख भगवान् करें तुम्हें कभी न हो जीजी। पर तुम्हारा दुःख ही सब-कुछ नहीं है। तुम्हारा कितना गया सो तुम जानो, पर रो-रोकर जो आँखें अन्धी कर रहे हैं उनका नुकसान कौन पूरा करेगा बताओ तो ?”

फिर थोड़ी देकर ठहरकर कहने लगी—“मुखर्जी महाशय मर्द आदमी हैं, वे जो खुशी हों कहें, पर जात समय सूखी आँखोंसे आज तुम विदा मत होना जीजी। यह बात उन लोगोंको बहुत ज्यादा चुभेगी।”

“किन लोगोंको चुभेगी री बन्दना ?”

“किन लोगोंको ? नहीं जानती तुम उन्हें ? नौसालकी उमरमें तुम आई थीं इस पराये घरमें, इस घरको सालकी साल तुम्हारा अपना घर बनाते चले

आये जो लोरा—आजके एक ही धक्केमें उन लोगोंको तुम भूल गईं जीजी ? तुम्हारी सासु, तुम्हारे देवर, तुम्हारे घरके दासी-दास, आश्रित लोग, ठाकुरद्वारा, अतिथिशाला, गौशाला, गुरु-पुरोहित—इन सबका अभाव पूरा हो जायगा केवल पति और पुत्रसे ? और कोई नहीं है जीवनमें—सिर्फ यही हैं ? ”

बन्दना कहने लगी —“ यह किन लोगोंके मुँहकी बात है जानती हो जीजी, जिस समाजमें मैं पली-पनपी हूँ उन लोगोंके मुँहकी । तुम सोचती होगी कि पति-भक्तिकी यही अन्तिम बात है, स्त्रीके लिए इससे बढ़कर सोचनेकी और कोई बात नहीं । पर यह तुम्हारी भूल है । कलकत्ते चलो मेरी मौसीके घर, देखोगी—यह बात वहाँ पुरानी हुई पड़ी है—इससे ज्यादा वे सोचती भी नहीं, करती भी नहीं । इसपर तुरा यह कि—” कहते कहते वह रुक गई । उसे सहसा ऐसा लगा कि कोई शायद पीछे खड़ा है, मुँड़कर देखा तो द्विजदास है । कब वह पीछे आ खड़ा हुआ, दोनोंमेंसे किसीको मालूम नहीं पड़ा । शरमा कर बन्दना कुछ कहना ही चाहती थी कि द्विजदासने कहा—“ डरनेकी कोई बात नहीं, न तो मैं आपकी मौसीको ही पहचानता हूँ और न उनके यहाँके औरोंको, आपकी बात उन लोगोंसे प्रकट नहीं कलूँगा । पर असलमें आपसे गलती हो रही है । संसारमें पशु-पक्षियोंका भी दल होता है, उनके आचरणको किसी फारमूलामें बाँधा जा सकता है, पर आदमियोंका दल नहीं । एक साथ इस तरह औसत विचार उनके बारेमें नहीं किया जा सकता । सवेरेसे यही बात सोच रहा हूँ । मौसीके दलसे घसीटकर अनायास ही आपको भाईसाहबके दलमें दाखिल किया जा सकता है, और फिर दयामयीके दलसे निकालकर मजेसे उस मैत्रेयीको आपकी मौसीके दलमें चालान किया जा सकता है । मैं शर्त लगाके कह सकता हूँ कि कहीं भी रंचमात्र विपर्यय नहीं होनेका । वाह रे आदमीका मन ! वाह रे उसकी प्रकृति ! ”

सतीने आश्चर्यके साथ पूछा—“ इस बातके मानी क्या लालाजी ? ”

द्विजदासने उससे ज्यादा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा —“ तुम्हारे सामने भी मानी ? द्विजूके काम और द्विजूकी बातके भी अगर मानी होने लगेँ भाभी, तो फिर अब तक दयामयी-विप्रदासके दरबारमें न जाकर तुम्हारे पास ही उसकी सब अर्जियाँ क्यों पेश होतीं भला ? मानी समझनेकी गरज तुम्हें नहीं है, इसी लिए-तो ? आज तुम्हारे जानेके दिन भी उसे बना रहने दो भाभी, ठीक

और गैर-ठीककी बालकी खाल निकालनेवाले विचार करनेकी ज़रूरत नहीं। ”—इतना कहकर सामने आकर उसने भाभीके पाँवोंपर अपना सिर रखकर प्रणाम किया। ऐसा वह नहीं किया करता। पाँवोंके गीले महावरका रंग उसके माथेसे लग गया, सतीने व्यस्ततासे अपने आँचलसे उसे पोंछना चाहा, पर उसने गरदन हिलाकर माथा अलग कर लिया, बोला—“ दाग अपने-ही-आप-पुछ जायगा भाभी, कमसे कम एक दिन तो बना रहने दो। ”—बात ऐसी कोई खास नहीं थी, द्विजूने हँसते हुए ही कही थी, पर बन्दनाकी दोनों आँखें आँसुओंसे भर आईं। उन्हें छिपाना चाहा, तो फिर वह अपना मुँह ही न उठा सकी।

द्विजदासने कहा—“ मैं आया था ताकीद करने। समय हो चला, भाई-साहब जल्दी कर रहे हैं। चीज़-वस्तु सब पहुँचा दी गई है, वासूको कपड़े-लत्ते पहना-पुहुनूकर गाड़ीमें बिठा आया हूँ, मंगलचारका आयोजन किसने कर दिया नहीं मालूम, वह भी हाथके हाथ हो गया। डर रहा था कि अनु-दीदी शायद कहीं डूब मरी हो, पर अब सन्देह हो रहा है कि कहीं-न-कहीं वे जिन्दा हैं। नहीं तो ये चीज़ें आई कहाँसे ? लेकिन जब कि उन्हें ढूँढ़के पाया नहीं जा सकता तो फिर उन्हें ढूँढ़नेकी ज़रूरत भी नहीं। उधर दयामयीके कमरेकी संकल ही बन्द है। संकट पार करनेके जिस पंथका उन्होंने अवलम्बन लिया है उसमें करनेको कोई काम ही नहीं। हाँ, श्रीमती मैत्रेयीको जो कहना हो कह जा सकती हो, यथा-समय वह वार्ता माके कानों तक पहुँच जायगी। मगर मेरा कहना है कि उसकी कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम ज़रा तत्पर होकर गाड़ीमें चलके बैठो भाभी, तुम्हें रेलमें चढ़ाकर मैं छुट्टी पा जाऊँ, और कुछ काममें मन लगा सकूँ। ”

सतीने ग्लान-हँसी हँसते हुए कहा—“ मुझे विदा करनेके लिए लालाजीको बड़ी जल्दी पड़ी हुई है ! ”

“ मेरा काम पड़ा हुआ है जो बहुत सारा। ”

“ क्या काम है सुनूँ भी तो ? ”

“ इसके पहले कभी तो तुमने सुनना नहीं चाहा भाभी। जब जो माँगा है तुमसे, बगैर पूछे ही देती आई हो बराबर। यह तुम्हारे सुनने योग्य नहीं है। ”

सती और बन्दना दोनों ही क्षण-भर चुपचाप उसकी तरफ देखती रहीं, उसके बाद सतीने कहा—“ तुम जाओ लालाजी, अब मुझे देर न लगेगी। ”

फिर बन्दनासे कहा—“ तू भी यहाँ अब देर न लगाना बहन, जितनी जल्दी हो सके बम्बई चली जाना । कलकत्ते जानेकी ज़रूरत नहीं, काकाजी वहाँ अकेले हैं, इसका खयाल रखना । ”

बन्दनाने भी द्विजङ्गी तरह पाँवोंपर सिर रखकर प्रणाम किया, पाँवोंकी धूल लेकर माथेसे लगाई और कहा —“ नहीं जीजी, मौसीके घर अब नहीं, उधरका पाठ खतम करके ही लौटी थी, उसे मैं नहीं भूँझूंगी । ”—कहते हुए उसने अपने आँचलसे आँखें पोंछी और फिर कहा—“ शायद कल ही बम्बई रवाना हो जाऊँगी; मगर तुम भी जानेके पहले यह भरोसा देती जाओ जीजी, कि फिर जल्दी ही तुम लोगोंको देख सकूँ । ”

सतीने मन-ही-मन क्या आशीर्वाद दिया सो वही जाने, हाथ उठाके उसकी ठोड़ी छूकर चुम्बन किया, और हँसते हुए कहा—“ सो तो तेरे अपने हाथकी बात है बन्दना । काकाजीसे कहना जाकर कि तेरे ब्याहमें वे हमें निमंत्रण भेजें, जहाँ भी कहीं रहूँ ज़रूर पहुँच जाऊँगी । ”—ज़रा ठहरकर, शायद मन-ही-मन यह सोचकर कि कहना ठीक है या नहीं, फिर कहा—“ मेरी बड़ी-भारी, साध थी कि इस घरमें ही तू आवे । लालाजीके हाथ तुझे सौंपकर और तेरे हाथों घर-गिरस्तीका भार-वासूका भार-सब सौंपकर माके साथ कैलास-यात्राको जाती, लौटती तो लौट आती, नहीं तो नहीं सही,—लेकिन, आदमी सोचता कुछ है, होता कुछ और ही है । ”—इतना कहकर वह चुप हो गई । कुछ देर स्तब्ध रहकर फिर कहने लगी—“ इस घरमें मैंने जो कुछ पाया था, संसारमें कोई उसे नहीं पाता । और सबसे ज्यादा पाया था मैंने अपनी सासको । पर उन्हींके साथ विच्छेद हो गया सबसे बढ़कर । जानेके पहले पाँव भी नहीं लग सकी, दरवाजा बन्द है, चौखटकी धूल माथेसे लगाकर कहा, ‘ मा, इस काठकी चौखटपर तुम्हारे पाँवोंकी धूल लगी हुई है, यही मेरे—’ बात पूरी न कर सकी, कंठ रुक आया, अब तो वह बेकल हो टूट-फूट-सी गई, उसकी दोनों आँखोंसे दर-दर आँसुओंकी धार बह चली । दो-तीन मिनट अपनेको सम्हालनेमें लग गये, आँचलसे आँखें पोंछकर बोली—“ और अनु-दीदीको भी ढूँढ़-ढूँढ़ हैरान हो गई, वह भी नहीं मिली । वह मेरी मासे भी बड़ी है बन्दना । हम लोगोंके चले जानेपर उससे कह तो देना तू, मैं उससे नाराज़ होके गई हूँ । ”—फिर उसकी आँखें भर आई । उसने आँचलसे आँखें पोंछ डालीं । उसने एक बिल्ली पाली थी, नाम रखा था

नीमू । काम-काजके घरमें वह कहाँ गायत्र हो गई है, पता नहीं । सवेरे कई बार उसका खयाल आया, और अब फिर उसकी याद आ गई बोली—“ नीमू भी न-जाने कहाँ डुबकी लगाये बैठी है, उसे भी न देख पाई अनु-दीदीसे कह देना बन्दना । ” मजेकी बात तो यह है कि कुछ ही देर पहले उसने ज़ोरके साथ कहा था कि उसके एक तरफ तो हैं पति और दूसरी ओर पुत्र,—संसारमें उसका कुछ नुकसान ही नहीं हुआ । बात उसकी कितनी जबरदस्त झूठ थी !

“ भाभी, कर क्या रही हो ? ”—बाहरसे द्विजदासका फिर तकाजा आया ।

“ आ रही हूँ भइया, हो गया । ”—कहती हुई सती जल्दीसे उठके बाहर चल दी ।

×

×

×

स्टेशनसे द्विजदास जब अकेला लौटा तब शाम हो चुकी थी । मकान-भरमें हर जगह बत्तियाँ जल रही हैं, पूर्ववत् ही स्त्री-पुरुष सब अपने-अपने काममें व्यस्त हैं, इस बड़े परिवारमें कहाँ कौनसा विप्लव हो गया, कोई जानता भी नहीं । बाहरकी तरफ ऊपर विप्रदासकी बैठकके दरवाजे-जंगले सब बन्द हैं,—उधरकी तरफ अँधेरा पड़ा है । ऐसे तो कितने ही दिन बत्ती नहीं जलती, विप्रदास जब कलकत्ते रहता है । इसमें अनहोनी-सी कोई बात नहीं । जीनेके चाई तरफवाले कमरेमें अशोक रहता है, खिड़कीसे दिखाई दिया कि वह आरामकुरसीपर पैर फैलाये पड़ा है और बत्तीके उजालेमें बड़े ध्यानसे कोई किताब पढ़ रहा है । कॉलेजकी गैर-हाजिरी करके अक्षय बाबू आज भी यहीं मौजूद हैं, उनका कमरा आखिरमें पड़ता है । वे घर पर ही हैं या बाहर हवा खाने गये हैं, कुछ मालूम न हो सका । मोटरसे उतरके आँगनमें पैर रखते ही द्विजदासकी निगाह पहुँची तिमंजिलेके लाइब्रेरी-रूमपर । शामके बाद वहाँ प्रायः अँधेरा ही रहता है, आज लेकिन खुली हुई खिड़कीमेंसे उजाला निकल रहा था । उसे सन्देह न रहा कि वहाँ बन्दना होगी । किताब पढ़नेको नहीं, बल्कि आँखें पोंछनेके लिए । लोगोंके संसर्गसे आत्म-रक्षा करनेके लिए उसने एकान्तमें जाकर आश्रय लिया है । आजकी रात किसी कदर काट देनेके बाद कल वह चली जायगी—बहुत दूर बम्बईकी तरफ, जहाँ वह पल-पुनपकर इतनी बढ़ी हुई है—जहाँ उसके पिता हैं, आत्मीयस्वजन हैं, और हैं कितने

ही दिनोंके मित्र और सखी-सहेलियाँ । किसी दिन किसी बहानेसे फिर कभी उसका इस गाँवमें आना संभव हो सकता है—यह सोचा भी नहीं जा सकता । विचित्र है यह दुनिया,—न-जाने कितनी अद्भुत और अनसोची घटनाएँ यहाँ पलक मारते ही घट जाया करती हैं । एक-एक करके उस प्रथम दिनसे लेकर आज तककी सब बातें द्विजदासको याद आने लगीं । वही अचानक आना और फिर अचानक नाराज़ होकर चला जाना । बीचमें सिर्फ़ कुछ घंटोंकी बातचीत । उस दिन बन्दनाने हँसते हुए कहा था—“ सिर्फ़ आँखोंका परिचय ही नहीं है द्विजू बाबू, नहीं तो, देवरके गुण-अवगुण लिख भेजनेमें जीजीने कभी आलस नहीं किया । मैं सब-कुछ जानती हूँ, आपके सम्बन्धमें मुझसे कोई बात छिपी नहीं है । जब-जब घर-भरके लोगोंको आपने जलाया-सताया है तब-तब उसकी सारी खबर पहुँचती रही है मेरे पास । ” द्विजदासने पूछा था—“ हम परस्पर कोई किसीको जानते नहीं, फिर भी आपके सामने मेरी बदनामी फैलानेमें सार्थकता क्या थी ? ” बन्दनाने हँसके जवाब दिया था—“ शायद मैं समझती हूँ कि जीजीको असलमें आप देखे नहीं सुहाते,—यह उसीका बदला है । ”

इसके बाद दोनों ने ही हँसके बातको परिहासमें रूपान्तरित कर दिया था; परन्तु उस दिन दोनोंमेंसे किसीने भी न सोचा था कि यह था सतीका द्विजूके प्रति बन्दनाका चित्त आकर्षित करनेका कौशल ! शायद कभी अपनी बहनको अपने पास लाकर रख सके, शायद कभी उसके हाथ सौंपकर देवरको शासनमें लाया जा सके । परन्तु वैसा नहीं हुआ, उसकी मनकी कल्पना मनहीमें छिपी रह गई । आज भी दोनोंमें से कोई भी उन चिद्धियोंके मानी न समझ सका ।

द्विजदास सीधा ऊपर चला गया । परदा हटाकर भीतर जाकर देखा—बन्दनाकी गोदमें, किताब खुली पड़ी है, पर वह खुद जंगलेके बाहर देखती हुई स्थिर बैठी है । एक पंक्ति भी पढ़ी होगी कि नहीं शक है । सब समझते हुए भी सिर्फ़ बात शुरू करनेकी गरजसे द्विजदासने पूछा—“ कौनसी किताब पढ़ रही थीं ? ”

बन्दनाने किताब बन्द करके मेजपर रख दी, और वह खड़ी होकर पूछने लगी—“ आपको लौटनेमें इतनी देर कैसे हुई ? कलकत्तेकी गाड़ी तो कभीकी चली गई होगी ? ”

द्विजदासने कहा—“ देर ही सही, पर लौट तो आया आखिर। नहीं भी तो लौट सकता था। ”

बन्दनाने कहा—“ आसानीसे। ”

द्विजदास एक क्षण चुप रहकर बोला—“ ठीक यही बात पहले मेरे मनमें उठी थी। गाड़ी छूट गई, खिड़कीसे मुँह निकालकर वासू हाथ हिलाने लगा, क्रमशः उसका नन्हा-सा हाथ गाड़ी मुड़ते ही ओटमें छिप गया। पहले यही मनमें आया कि उनके साथ ही चला जाता तो ठीक रहता—”

बन्दनाने कहा—“ आप वासूको बहुत प्यार करते हैं, न ? ”

द्विजदासने ज़रा सोचकर कहा—“ देखिए, जवाब क्या दूँ, इन सब चीज़ोंका शायद मैं स्वरूप ही नहीं जानता। प्रकृति मेरी ऐसी रूखी, ऐसी नीरस है कि दो ही क्षणमें सब सोखकर सूखी बालूकी तरह फिर ज्यों की त्यों धधक उठती है। प्लायफार्मपर खड़े-खड़े आँखोंमें आँसू भर आये, लेकिन फिर उसी वक्त अपने आप ही सूख गये,—भापका निशान तक न रह गया। ”

बन्दनाने कहा—“ यह एक प्रकारका भगवानका आशीर्वाद है। ”

द्विजदास कहने लगा—“ क्या मालूम, हो भी सकता है। और, सच पूछो तो इस वासूके डरसे ही मा कलसे दरवाजा बन्द किये पड़ी हैं। नहीं तो, न भाई साहबके लिए, न भाभीके लिए। मा सोचती हैं वासूको शायद उन्होंने पाला-पोसा है, पर हिसाब लगाकर देखा जाय तो देखेंगी कि उसकी उमरका आधा समय माका बीता है तीर्थोंमें। तब किसके पास रहता था वह ? मेरे पास। टाइफॉयड-बुखारमें कौन जागा था साठ-साठ दिन ? मैंने। आज जाते वक्त किसने उसे कपड़े-लत्ते पहनाये ? मैंने। उसके कपड़े-लत्ते किसकी आलमारीमें रहते थे ? मेरीमें। उसकी किताब-कापी-सिलेट मेरी ही टेबिलपर रहती थी। उसके सोनेका बिस्तर मेरी ही छाटपर लगता था। मा खींचातानी करके ले भी जाती थीं—पर कितनी ही रातोंको वह जैसे ही जगता, भाग आता मेरे कमरेमें। ”

बन्दना एकटक उसके मुँहकी ओर देख रही थी, बोली—“ तो भी तो आँखोंके आँसू सूखनेमें एक क्षणसे ज्यादा नहीं लगा। ”

द्विजदासने कहा—“ नहीं। ऐसा ही मेरा स्वभाव है। उसके विषयमें मुझे सिर्फ यही चिन्ता है कि वह जा पड़ेगा अपने मा-बापके हाथोंमें। आप कहेगी कि संसारमें यही तो स्वाभाविक है, इसमें डरने की क्या बात है ?

परन्तु स्वाभाविक होनेसे ही मेरे लिए यह बड़ा-भारी संकट है कि इतनी बड़ी उलटी बात आदमीको समझाऊँ कैसे ? ”

बन्दनाने यह नहीं कहा कि समझानेकी ऐसी ज़रूरत ही क्या है ! दूसरी ओर मा-त्रापके विरुद्ध इतना बड़ा अभियोग सत्य हो सकता है, यह विश्वास करना भी उसके लिए कठिन है, खासकर विप्रदासके विरुद्ध । किन्तु कोई तर्क न उठाकर वह चुप रह गई ।

दूसरे ही क्षण अपने वक्तव्यको स्पष्टतर करनेके लिए द्विजदास खुद ही कहने लगा—“ एक बातसे सान्त्वना है मुझे कि भाभी साथ हैं, नहीं तो भाई साहबके हाथ सौंपकर मुझे रत्तीभर भी शान्ति न रहती । ”

बन्दनाने कहा—“ आप तो निर्विकार हैं, वासूकी भलाई-बुराईसे आपको मतलब ही क्या ? जो हो होता रहे न ? ”

मुनकर द्विजदासके चेहरेपर एक सुतीक्ष्ण वेदनाकी छाया-सी पड़ गई, किन्तु वह मौन रहा ।

बन्दनाने कहा—“ भाई साहबके प्रति गंभीर विश्वास और श्रद्धाकी बात एक दिन आपके अपने मुँहसे ही सुनी थी । वह भी क्या उन आँसुओंकी तरह ही पलक मारते सूख गई ? या जो आदमी अपने दोषसे निःस्वया सर्वस्वान्त हो जाता है उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता—आखिर क्या यही आप कहना चाहते हैं ? ”

द्विजदास विस्मय और व्यथासे विह्वल आँखोंसे क्षण-भर उसकी ओर देखता रहा, फिर दोनों हाथ जोड़कर माथेसे लगाता हुआ आहिस्तेसे बोला—“ नहीं, यह मैं नहीं कहना चाहता । मैं कह रहा था, प्यास बुझानेके लिए पानी माँगने कोई समुद्रके पास जाकर हाथ न फैलाये । पर, भाई साहबके संबंधमें अब और आलोचना रहने दो, बाहरवाले उसे नहीं समझेंगे ”

इस बातसे बन्दनाको बड़ी-भारी भीतरी चोट पहुँची, पर प्रतिवादके लिए उसे कुछ ढूँढ़े नहीं मिला, वह स्तब्ध रह गई ।

द्विजदासने अब बिलकुल दूसरी ही बात छेड़ी, उसने पूछा—“ आप क्या कल ही बम्बई चली जायेंगी ? ”

बन्दनाने कहा—“ हाँ । ”

“ अशोक बाबू ही ले जायेंगे ? ”

“ हाँ, वे ही पहुँचा देंगे । ”

द्विजदासने कहा—“ बम्बई-मेल यहाँसे बहुत रात बीते छूटती है। कल आप लोगोंको मैं स्टेशन पहुँचा आऊँगा। पर दिनमें न रह सकूँगा, ज़रा कुछ काम है। ”

“ बापूजीको एक तार भिजवा दीजिएगा। ”

“ अच्छी बात है। ”

दो-एक मिनट चुप रहकर, बगलें झाँकते हुए, द्विजदासने कहा—“ एक बात आपसे पूछूँगा—अकसर सोचा करता हूँ, पर नाना कारणोंसे दिन बीतते चले गये, पूछ न सका। कल आप चली ही जायँगी, फिर वक्त नहीं मिलेगा। अगर नाराज़ न हों तो कहूँ ? ”

“ कहिए। ”

देर होने लगी।

बन्दनाने कहा—“ नाराज़ न होऊँगी, आप बेधड़क कह डालिए। ”

द्विजदासने कहा—“ कलकत्तेसे मा एक दिन नाराज़ होकर भाभीको लेकर अचानक चली आई थीं—याद है ? ”

“ है। ”

“ कारण न मालूम होनेसे आप अचंभेमें पड़ गई थीं। मन आपका बहुत खराब हो गया था, मेरे कमरेमें आकर उस दिन आपने एक बात कही थी कि आपको मैं अच्छा लगता हूँ। याद है ? ”

“ है। पर बहुत शरमके साथ ही याद पड़ती है वह बात ? ”

“ तो उस बातका मूल्य क्या कुछ भी नहीं ? ”

“ नहीं। ”

द्विजदास क्षण-भर स्तब्ध रहकर बोला—“ मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ। उसका मूल्य कुछ भी नहीं। ”

फिर कुछ देर बाद कहने लगा—“ भाभीने कहा था कि आपकी मौसी चाहती हैं कि अशोकके साथ आपका ब्याह हो। सो क्या तय हो गया ? ”

बन्दनाने कहा—“ यह हमारा पारिवारिक विषय है। बाहरवालोंसे इसकी आलोचना नहीं की जा सकती। ”

द्विजदासने कहा—“ आलोचना तो नहीं करता, सिर्फ़ एक बात जानना चाहता हूँ। ”

बन्दनाने तीखे स्वरमें कहा—“ आपके साथ मेरा ऐसा कोई अरुमीयताका

संबंध नहीं कि जिससे ऐसी बात आप पूछ सकते हों। द्विजू बाबू, आप शिक्षित पुरुष हैं, ऐसा कुतूहल लज्जाजनक है। ”

सुनके द्विजदास सचमुच ही लज्जित हो उठा, उसका चेहरा ग्लान हो गया। बोला—“ मुझसे गलती हो गई बन्दना। स्वभावसे मैं कुतूहली नहीं हूँ, दूसरोंकी बात जाननेका लोभ मुझमें बहुत कम है। मगर न जाने कैसे मुझे ऐसा लगता था कि संसारमें जो बात किसीसे भी नहीं कह सकता वह बात आपसे कह सकता हूँ। जिस विपत्तिमें और किसीको भी पुकारा नहीं जा सकता, आपको पुकार सकता हूँ। आप—”

उसकी बातके बीच में ही बन्दना हँस पड़ी, बोली—“ पर अभी-अभी तो आप कह रहे थे कि भाई-साहबके विषयमें बाहरवालोंके साथ आलोचना आप नहीं करना चाहते। मैं तो गैर ही हूँ, बिलकुल बाहरकी ? ”

द्विजदासने कहा—“ अगर यही बात है, तो फिर आपने ही क्यों उनके संबंधमें मुझपर अश्रद्धाका आरोप लगाया ? जानतीं नहीं आप, मेरे अन्दर क्या हो रहा है ? ”

बत्तीके प्रकाशमें स्पष्ट दिखाई दिया कि उसकी आँखोंकी कोरें आँसुओंसे भर आई हैं।

इतनेमें मैत्रेयीने कमरेमें प्रवेश किया। उसने कहा—“ आप कब लौटे, हम लोगोंको तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। ”

द्विजदास मुड़कर खड़ा हो गया, बोला—“ मालूम करनेकी कोई ज्यादा जरूरत थी क्या ? ”

मैत्रेयीने कहा—“ यह खूब कहा ! आपने कल नहीं खाया, आज भी नहीं खाया,—यह और किसीको मालूम हो या न हो, मुझे तो मालूम है। चलिए माके कमरेमें। ”

“ लेकिन माके कमरेका तो दरवाजा बन्द है। ”

मैत्रेयीने कहा—“ था तो बन्द ही, पर मैंने पीछा नहीं छोड़ा। सिर-धुन-धुनाकर दरवाजा खुलवा लिया है, उन्हें नहला-धुला दिया है, संध्या-पूजा भी करवा दी है, ज्वरदस्ती कुछ फल खिलाकर तब पिण्ड छोड़ा है। कह रही थीं—‘ द्विजून खाया तो मुझसे न खाया जायगा। ’ मैंने कहा—‘ सो नहीं होनेका मा, आपका यह हुकम मैं नहीं मान सकूँगी ’ लेकिन तबसे हम सभी आपकी बाट देख रही हैं। चलिए, आपका खाना रख आई हूँ माके कमरेमें। ”

द्विजदास दंग रह गया। इसके मुँहसे इतनी बात उसने पहले कभी नहीं सुनी थी। बोला—“चलिए।”

मैत्रेयीने बन्दनाको लक्ष्य करके कहा—“आप भी आइए। मा आपको बुला रही हैं।”—इतना कहकर वह द्विजदासको एक प्रकारसे गिरफ्तार करके ही ले गई वहाँसे। सबके पीछे-पीछे गई बन्दना।

अपने कमरेमें दयामयी बिस्तरपर लेटी हुई थी। अनुज्ज्वल दीपालोकमें उनके शोकाच्छन्न चेहरेकी तरफ देखनेसे क्लेश मालूम होता है। आँखें सूजकर लाल हो गई हैं, थोड़ी देर पहले नहानेसे माथेके बाल भीगे और बिखरे हुए हैं। सिरहाने बैठी कल्याणी माथेपर हाथ फेर रही है, दूसरी ओर कुरसीपर शशधर बैठा है, कुछ दूरीपर एक दूसरी कुरसीपर अक्षय बाबू बैठे हुए हैं। द्विजदासके कमरेमें घुसते ही दयामयीने करवट लेकर मुँह फेर लिया, और दूसरे ही क्षण एक अस्फुट क्रन्दनके अवरुद्ध वेगसे उनका सारा शरीर काँपने लगा। बन्दना चुपकेसे धीरे-धीरे जाकर उनके पैरोंके पास बैठ गई। इतनी बड़ी वेदनाके दृश्यकी शायद वह कभी कल्पना भी न कर सकती। बहुत देर तक सभी नीरव रहे, इस स्तब्धताको भंग करके सबसे पहले बात की शशधरने। बोला—“कलसे सुना है कि तुम बिना खाये-पीये हो,—जो भी थोड़ा-बहुत खा सको, खा लो।”

द्विजदासने कहा—“हाँ।”

जमीन साफ करके मैत्रेयी थाली लगा रही थी, उस तरफ देखते हुए शशधरने कहा—“तुम्हें लौटने में इतनी देर कैसे हो गई? वे लोग गये तो हैं ढाई बजेकी गाड़ीसे?”

“हाँ।”

शशधरने ज़रा हँसनेका प्रयत्न करते हुए कहा—“और मजेकी बात तो यह कि कलकत्तेवाला मकान भी सुना है तुम्हारा ही है।”

द्विजदासने कहा—“क्यों, मेरे मकानमें भाई-साहबका प्रवेश निषेध है क्या?”

शशधरने कहा—“सो नहीं कहता। बल्कि वे ही ऐसा-कुछ भाव दिखला गये थे। इस मकानको छोड़कर भी तो उनके जानेकी ज़रूरत नहीं थी, आपसमें ही कोई निबटारा कर-करा लेते।”

द्विजदासने कहा—“ निबटारेका रास्ता अगर खुला था तो आपने कर क्यों नहीं लिया ?

“ मैं कर लेता ? ”—शशधरने अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—“ यह कैसी बात है तुम्हारी ? मेरा अपमान तो किया उन्होंने और निबटारा मैं कर लेता ? सलाह तो बुरी नहीं ! ”—कहकर वह जबरदस्ती खींच-खींचके हँसने लगा । उसकी हँसी रुकनेपर द्विजदासने कहा—“ सलाह तो बुरी नहीं दी शशधर बाबू । औरतें कहा करती हैं पहाड़की ओट रहना,—सो भाई-साहब थे पहाड़, आप थे उनकी ओटमें । अब आमने-सामने खड़े होंगे हम और आप । मान-अपमानका खेल अभी खतम थोड़े ही हो गया है,—अभी तो शुरू ही हुआ है । ”

“ इसके मानी ? ”

“ मानी यही कि मैं आपका बाल्य-बन्धु विप्रदास नहीं हूँ,—मैं हूँ द्विजदास । ”

शशधरके चेहरेकी हँसी धीरे-धीरे गायब हो गई, उसने भयंकर गम्भीर कण्ठसे पूछा—“ तुम्हारी बातका अर्थ क्या है, ज़रा खुलासा करके तो कहो ? ”

बड़े भाईके मित्र होनेके कारण शशधर द्वारा ‘ तुम ’ कह जानेपर भी द्विजदास उससे ‘ आप ’ ही कहा करता था; बोला—“ आपकी यह बात मैं मानता हूँ कि अर्थ आज स्पष्ट हो जाना ही अच्छा है । मेरे भाई-साहब उस श्रेणीके आदमी हैं जो सत्यकी रक्षाके लिए सर्वस्वान्त तक हो सकते हैं, आश्रितोंके लिए देहका मांस तक काटके दे सकते हैं; उन जैसे लोगोंके ‘ आदर्श ’ नामकी न-जाने कौनसी एक विचित्र चीज़ होती है जिसके लिए ऐसा काम नहीं जो वे न कर सकते हों,—वे लोग एक तरहके पागल हैं—इसीसे उनकी ऐसी दुर्दशा होती है । परन्तु मैं निहायत साधारण आदमी हूँ, मेरा आपके साथ ज्यादा प्रभेद नहीं है । ठीक आप ही की तरह मेरे ईर्ष्या है, घृणा है, बदला लेनेके शैतानी बुद्धि भी है, लिहाजा भाई-साहबको आपने धोखा देकर ठगा होगा तो मैं भी आपको ठगूँगा, उनके नामसे जालसाजी की होगी तो मैं भी आपको आरामसे जेलकी हवा खिलवाऊँगा,—कमसे कम कोशिश करनेमें कोई त्रुटि न रखूँगा जब तक कि दोनों पक्ष ही राहके भिखारी नहीं हो जाते । विश्व-जनोंके मुँहसे सुना है कि ऐसी ही शायद इसकी परिणति है । स्ने अब वही होने दो । ”

शशधर चिल्लाकर कह उठा—“ मा, सुन रही हैं अपने दिन्नुकी बातें ? जो मनमें आया कह दिया—इसे मना कर दीजिए । ”

द्विजदासने कहा—“ मासे शिक्षायत करनेमें कोई लाभ नहीं शशधर बाबू । वे जानती हैं कि मैं विपिन नहीं हूँ,—मातृवाक्य द्विजूके लिए वेद-वाक्य नहीं हैं । द्विजू ताल ठोककर स्पर्धा करनेका अभिनय नहीं करता, वे इस बातको समझती हैं । ”

किसीके मुँहसे कोई बात नहीं निकली । इन दोनोंका अकस्मात् इस तरहका वाद-प्रतिवाद मानो त्रिलकुल अन-सोची बात थी । विस्मय और डरसे सबके सब स्तब्ध हो गये । शशधर समझ गया कि यह मज़ाक नहीं, अत्यन्त कठोर संकल्प है । उत्तर देते हुए अब उसके गलेमें पहले जैसा ज़ोर नहीं रह गया था, फिर भी ज़ोर देकर ही कह उठा—“ अब यहीं खतम है । यहाँ अब मैं पानी तक न ग्रहण करूँगा । ”

द्विजदासने कहा—“ कैसे अब तक ग्रहण कर रहे थे, यही तो आश्चर्य है शशधर बाबू ! ”

कल्याणी रो दी, बोली—“ छोटे भइया, अन्तमें तुम ही क्या हम लोगोंको मार डालना चाहते हो ? अपनी माके पेटके सगे भाई हो तुम, तुम्हीं करोगे हम लोगोंका सर्वनाश ? ”

द्विजदासने कहा—“ तू समझती है कि आँखोंसे आँसू टपकाकर सर्वनाशको बार-बार रोका जा सकता है ? कहीं भी कोई विचार न होगा, तुम्हीं लोगोंकी ही होगी बार-बार जीत ? माना कि भाई-साहब नहीं हैं, फिर भी तुझे जब खानेको न मिले; आना मेरे पास, तब तेरा रोना-बिलखना सुनूँगा,—अभी नहीं । ”

दयामयी चुपचाप बहुत सह चुकी थीं, अब उनसे न सहा गया, एकाएक वे चीत्कार कर उठीं—“ द्विजू, तू जा यहाँसे । इस तरह गाली-गलौज करना क्या विपिन ही तुझे सिखा गया है ? ”

“ कौन सिखा गया कहा ? विपिन ? ”

“ हाँ, वही । ज़रूर वही सिखा गया है ? ”

द्विजदासके ओंठ क्षण-भरके लिए सिकुड़ गये, बोला—“ मैं जा रहा हूँ । लेकिन मा, अपनेको तुमने बहुत छोटा कर डाला है, अब और छोटा न बनाओ । ”—कहता हुआ वह बाहर चला गया ।

अपने कमरेमें आकर द्विजदास चुपचाप बैठा हुआ था । करीब दो घंटे बाद

मैत्रेयी वहाँ आई, उसके हाथमें परोसी हुई थाली थी, बोली—“ फिरसे सब खाना बनाके लाई हूँ, खाने बैठिए। इसी कमरेमें पाटा लगा दूँ ? ”

“ यह आपसे किसने कहा ? ”

“ किसीने नहीं। कलसे आपने कुछ खाया-पीया नहीं, सो क्या मैं नहीं जानती ? ”

“ इतने लोगोंके रहते हुए आपको जाननेकी आवश्यकता ? ”

मैत्रेयी सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही। जवाब न पाकर द्विजदासने कहा—
“ अच्छा, वहीं रख दीजिए। अभी भूख नहीं है, अगर लगी तो बादमें खा लूँगा। ”

मैत्रेयी एक किनारेसे पाटा लगाकर, उसपर थाली रखकर, जतनके साथ सब ढाक-ढूककर वहाँसे चली गई। उसने ज्यादा आग्रह नहीं किया, यह भी नहीं कहा कि ठंडा हो जानेसे खाना अच्छा नहीं लगेगा।

रातके करीब बारह बजे होंगे, द्विजदास कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। मामूली थोड़ा-सा खा-पीकर सो जाऊँ—यह सोचकर हाथ-मुँह धोनेके लिए जैसे ही बाहर गया, देखा कि दरवाजेके पास कोई खड़ा है। बरामदेमें बहुत कम प्रकाश था, पहचान न सकनेसे उसने पूछा—“ कौन ? ”

“ मैं हूँ मैत्रेयी। ”

द्विजदासके आश्चर्यकी सीमा न रही, बोला—“ इतनी रातको आप यहाँ क्यों ? ”

“ खाते वक्त किसी चीज़की अगर ज़रूरत पड़ गई—इसीसे बैठी हूँ। ”

“ यह आपकी बहुत ज्यादाती है। पहले तो ज़रूरत ही नहीं पड़ती और पड़ती भी तो क्या घरमें और कोई नहीं है ? ”

मैत्रेयीने मृदु कंठसे कहा—“ कई दिनोंके निरन्तर परिश्रमसे सब थके हुए हैं। कोई जाग नहीं रहा है, सब सो गये। ”

द्विजदासने कहा—“ आपने खुद भी तो कम मेहनत नहीं की है, तो फिर आप क्यों नहीं सोई ? ”

मैत्रेयीने कोई जवाब नहीं दिया, चुप रही।

द्विजदासका अपेक्षाकृत रूखा स्वर अब बहुत-कुछ मुलायम हो आया, बोला—“ इस तरह बैठा रहना भद्दा दिखाई देता है। आप भीतर नलके

बैठिए, जब तक खाऊँ—निरीक्षण करती रहें। ”—यह कहकर वह हाथ-मुह धोने पानीवाली कोठरीमें चला गया।

इसक पहले मैत्रेयीके साथ द्विजदास बहुत कम ही बोला है। ज़रूरत भी नहीं पड़ी, और इच्छा भी नहीं हुई। अब बातचीत किस ढँगसे करे, यह सोचता हुआ वह वापस आके देखता है कि न तो वहाँ थाली है और न मैत्रेयी खुद। इस बीचमें क्या बात हो गई, इसका अनुमान लगानेसे पहले ही वह वापस आ गई। बोली—“ढँकना उठाकर देखा कि सब सूत्रके लकड़ी हो गया है, इसीसे फिरसे लाने गई थी। बैठिए। ”

द्विजदासने कहा—“धुआँ निकल रहा है जो ! इतनी रातको गरमागरम चीजें कहाँसे मिल गई ? ”

मैत्रेयीने कहा—“सब कुछ तैयार रख छोड़ा था। जब आपने कहा कि खानेमें देर लगेगी तभी समझ लिया कि सब चीज़ तैयार न रखनेसे आपका खाना ही न होगा। ”

द्विजदास जीमने बैठा तो पहले उसने रन्धन-नैपुण्यकी प्रशंसा करते हुए जान लिया कि उनमेंसे कई चीज़ें खुद मैत्रेयीके हाथकी बनी हुई हैं। उन्हें वह बार-बार अनुरोध करके उसे ज्यादा-ज्यादा खिलाने लगी। इस विद्यामें वह व्युत्पन्न है, जानती है कि कैसे खिलाया जाता है।

द्विजदासने हँसते हुए कहा—“ज्यादा खानेसे तबीयत खराब न हो जायगी ? ”

“नहीं, नहीं होगी। कलसे उपास किये हुए हैं, इसे ज्यादा खाना नहीं कहते। ”

“लेकिन मैं ही तो अकेला बगैर खाये नहीं हूँ, यहाँ और भी तो बहुतसे होंगे। ”

मैत्रेयीने कहा—“बहुतोंकी बात मुझे नहीं मालूम, पर माको मैं किस कठिनाईसे कौर-घूँट खिला सकी हूँ सो मैं ही जानती हूँ। मैं न रहती तो कितने दिनों तक दरवाजा बन्द किये पड़ी रहती, सोचती हूँ तो डर जाती हूँ। लेकिन आप मुझे ‘आप’ न कहा कीजिए। सुनती हूँ तो शरमा जाती हूँ। मैं कितनी छोटी हूँ आपसे। ”

द्विजदासने कहा—“सो ठीक है, तुमसे अब ‘आप’ न कहूँगा। लेकिन यह तो बताओ, तुमने अन्नदा-दीदीकी भी कुछ खबर ली थी ? ”

मैत्रेयीने कहा—“ उसे और क्या हो गया ? वह भी क्या बगैर-खाये है ? ”

अब तक मैत्रेयीकी बातें उसे बहुत अच्छी लग रही थीं, एक तरहकी प्रसन्नताकी हवा इस दुःखमें भी मानो उसके मनको कुछ-कुछ स्पर्श कर जाती थी, परन्तु इस अन्तकी बातसे उसका चित्त एक क्षणमें विरूप हो उठा, बोला—“ अनु-दीदीके बारेमें इस तरह बात नहीं की जाती । शायद सुन रखा होगा कि वे हमारे यहाँकी दासी हैं, पर इस घरमें उनसे बढ़कर मेरा और कोई नहीं है । हम लोगोंको पाल-पोसकर उन्होंने इतना बड़ा किया है । ”

मैत्रेयीने कहा—“ सो सुना है । पर ऐसे तो कितने ही घरानोंमें पुरानी दासियाँ लड़के-बालोंको पालती-पोसती हैं । इसमें नई बात कौनसी है ? अच्छा, आपका भोजन हो चुकनेपर मैं उनकी खबर लूँगी । ”

द्विजदास जवाब बगैर दिये क्षण-भर उसके मुँहकी ओर देखता रहा । सहसा उसे ऐसा लगा कि ठीक ही तो है, ऐसा तो कितने ही परिवारोंमें हुआ करता है । जो भीतरकी बात नहीं जानता उसके निकट सिर्फ बाहरकी घटनामें अत्यन्त आश्चर्यकी बात इसमें क्या है ? उसकी कठोर विचारधारा हलकी हो आई । बोला—“ अनु-दीदीने न भी खाया हो तो इतनी रात बीते वे न खायेगी । उनके लिए लिए आज चिन्ता करनेकी ज़रूरत नहीं । ”

फिर कई मिनट तक कोई कुछ न बोला । द्विजदासने पूछा—“ मैत्रेयी, गैरोंकी इस तरह सेवा करना तुमने सीखा किससे ? अपनी मासे ? ”

मैत्रेयीने कहा—“ नहीं तो, अपनी जीजीसे । उनके समान पतिकी सेवा करते हुए मैंने किसीको नहीं देखा । ”

द्विजदासने हँसके कहा—“ पति क्या गैर हुआ करते हैं ? मैं गैरोंकी सेवा करनेकी बात पूछ रहा था ? ”

“ ओह—गैरोंकी ? ”—कहकर तुरत ही मैत्रेयीने हँसके शरमाके मुँह नीचे झुका लिया ।

द्विजदासने कहा—“ अच्छा खैर, कहो, अपनी जीजीकी ही बात कहो । ”

मैत्रेयीने कहा—जीजी अब जीती नहीं हैं । तीन साल हुए, एक लड़का और दो लड़कियाँ छोड़के मर गई हैं । चौधरी-साहबने साल-भर भी धीरज नहीं धरा, फिर ब्याह कर लिया है । कितना बड़ा अन्याय है बताइए तो ? ”

द्विजदासने कहा—“ पुरुष ऐसा ही किया करते हैं । वे इसे अन्याय नहीं मानते । ”

“ आप भी ऐसा ही करेंगे क्या ? ”

“ पहले एक तो कर लूँ, उसके बाद दूसरीके बारेमें सोचूँगा । ”

मैत्रीयीने कहा—“ ऐसा कहनेसे तो नहीं चलेगा । तब आपकी भाभी मौजूद थीं, पर अब वे यहाँ नहीं हैं । माकी देख-भाल कौन करेगा ? ”

द्विजदासने कहा—“ कौन देख-भाल करेगा सो मैं नहीं जानता मैत्रीयी, शायद लड़की-जमाई ही उनकी देख-भाल करें, या फिर और कोई आकर इसका भार ले,—संसारमें कितनी असंभव बातें संभव हो जाती हैं, कोई नहीं बता सकता । हम लोगोंकी बात जाने दो, तुम अपनी बात कहो । ”

“ पर मेरी अपनी बात तो कुछ है नहीं । ”

“ कुछ भी नहीं है ? बिलकुल ही कुछ नहीं ? ”

मैत्रीयी पहले तो ज़रा सिकुड़-सी गई, उसके बाद जरा-सा हँसकर कहने लगी—“ ओहो मैं समझ गई । आपने चौधरी साहबकी बात किसीसे सुनी होगी शायद । छि छि कैसे निर्लज्ज आदमी हैं, जीजीके मरते ही वहाँसे प्रस्ताव भिजवा दिया मुझसे ब्याह करनेके लिए । ”

“ उसके बाद ? ”

मैत्रीयीने कहा—“ जीजाजीके पास धन बहुत है, मा और बापूजी दोनों ही राजी हो गये । सोचा, और कुछ हो चाहे न हो लीलाके बाल-बच्चे तो सुखी रहेंगे । जैसे संसारमें मेरे लिए और कोई काम ही न हो जीजीके बाल-बच्चोंको पालनेके सिवा । मैंने कह दिया, ऐसी बात तुम लोग फिर जवानपर लाई तो मैं फाँसी लगाके मर जाऊँगी । ”

“ क्यों, तुम्हें इतनी ज्यादा आपत्ति क्यों थी ? ”

“ आपत्ति नहीं होगी ? संसारमें इतनी बड़ी अशान्तिकी और कौनसी बात है ? ”

द्विजदासने कहा—“ यह बात तुम्हारी सच नहीं है । संसारमें सभी क्षेत्रोंमें अशान्ति नहीं आती मैत्रीयी । मेरी माने ही भाई-साहबको पाला-पोसा था । ”

मैत्रीयीने कहा—“ पर आखिरमें उसका नतीजा क्या निकला ? आजके समान दुःखपूर्ण घटना इस घरमें और कभी हुई थी क्या ? ”

द्विजदास सन्न रह गया । इसकी बात झूठ नहीं है, किन्तु सत्य भी हरगिज नहीं । दो-तीन मिनट तक अभिभूतके समान बैठा रहा, फिर अकस्मात् मानो उसे चेतना-सी हो आई, बोला—“ मैत्रीयी, प्रतिवाद मैं नहीं करूँगा । इस

परिवारमें मह्यदुःख आ गया यह सच है, मगर फिर भी मैं जानता हूँ कि तुम्हारी यह बात साधारण स्त्रियोंके अति तुच्छ सांसारिक हिसाबसे बढ़कर और कुछ नहीं है।” इतना कहनेके बाद ही वह उठ खड़ा हुआ। उसका खाना समाप्त हो चुका था।

दूसरे दिन दोपहर-भर वह घर नहीं रहा, किस कामसे कहाँ चला गया था सो वही जाने। संध्याके अँधेरेमें चुपचाप वह घर वापस आया और सीधा बन्दनाके कमरेके सामने जा खड़ा हुआ, आवाज दी—“भीतर आ सकता हूँ?”

“कौन, द्विजू बाबू? आइए आइए।”

द्विजदासने भीतर जाकर देखा—बन्दनाने अपना बक्स-अक्स सम्हालकर तैयार कर लिया है, सफरकी तैयारियाँ लगभग पूरी हो चुकी हैं। बोला—सचमुच ही चल दीं, ऐं? एक दिन भी ज्यादा नहीं रखा जा सका?”

उसके चेहरेकी तरफ देखकर बन्दनाकी इच्छा नहीं हुई कि कुछ कहे, फिर भी कहना ही पड़ा—“जाना तो होगा ही, एक-आध रोज ज्यादा रखके लाभ क्या है बताइए-?”

द्विजदासने कहा—“लाभकी बात तो मैंने सोची नहीं, सिर्फ़ सोचता हूँ—सभी चले जा रहे हैं, इतने बड़े घरमें मेरा अब कोई मित्र-बन्धु नहीं रह गया।”

बन्दनाने कहा—“पुराने मित्र जाते हैं और नये आते हैं—ऐसा ही संसारका नियम है द्विजू बाबू, उसी आशापर धीरज धरके रहना पड़ता है,—चंचल होनेसे काम नहीं चलता।”

द्विजदासने जवाब नहीं दिया, चुप रहा।

बन्दनाने कहा—“समय ज्यादा नहीं है, कामकी बातें दो-एक कह लें। सुना होगा शायद, शशधर बाबू कल्याणीको लेकर चले गये हैं।”

“नहीं, सुना तो नहीं, पर अनुमान कर लिया था।”

“जाते वक्त एक बूँद पानी भी उन्हें कोई नहीं पिला सका। दोनोंने आके माको प्रणाम करके कहा—‘हम लोग जा रहे हैं।’ माने कहा—‘जाओ।’ फिर दूसरी ओर मुँह फेरे रहीं।”—इतना कहकर बन्दना चुप हो गई। जिस बजहसे उन लोगोंको जाना पड़ रहा है, माके सामने द्विजूने कल रातको जो बातें कही थीं उनका उल्लेख तक नहीं किया।

कुछ क्षण मौन रहकर वह फिर कहने लगी—“मा बहुत ज्यादा मुरझा गई हैं। देखनेसे करुणा आती है,—लज्जाके मारे किसीके आगे मानो उनसे मुँह

दिखाते नहीं बनता। मैत्रेयी उनकी जितनी सेवा कर रही है शायद उनकी अपनी लड़की भी नहीं कर सकती। मा अगर किसी दिन स्वस्थ हो उठीं तो वह उसीकी सेवा-टहलसे। लड़की बहुत अच्छी है, कुछ दिन उसे पकड़ रखनेकी कोशिश कीजिएगा, यही मेरा अनुरोध है।”

“ऐसा ही होगा।”

“द्विजू बाबू, जानेसे पहले एक अनुरोध और करती जाऊँगी।”

“करिए”

“आपको ब्याह करना पड़ेगा।”

“क्यों?”

बन्दनाने कहा—“नहीं तो यह विशाल परिवार यों ही छिन्न-भिन्न हो जायगा। आप लोगोंकी बहुत बड़ी क्षति हुई है यह मैं जानती हूँ, पर जो कुछ बचा है वह भी बहुत है। आप लोगोंका कितना दान है, कितने सत्कार्य, कितने आश्रित-जन हैं, कितने दीन-दरिद्रोंके अवलम्बन हैं आप लोग,—और सो भी क्या सिर्फ आजसे? कितने पुराने समयसे यह धारा बहती चली आ रही है आप लोगोंके परिवारमें—किसी दिन रुकी नहीं, वह क्या अब बन्द हो जायगी? भाई-साहबकी गलतीसे जो चला गया है, सो तो था बाहुल्य, प्रयोजनसे अतिरिक्त। गया तो जाने दीजिए। जो कुछ वे छोड़ गये हैं, शान्त मनसे उसीको यथेष्ट समझके ग्रहण कीजिए। वह अवशिष्ट ही आपके लिए अक्षय और काफी हो, प्रतिदिनकी आवश्यकताओंमें भगवान कमी न रखें, आज विदा लेनेसे पहले उनसे मेरी यही प्रार्थना है।”

द्विजदासकी आँखोंमें आँसू भर आये।

बन्दना कहने लगी—“आपके पिताजी अखंड विश्वाससे आपके भाई-साहबको सर्वस्व सौंप गये थे, पर वह रहा नहीं। पिताके समक्ष वे अपराधी हो रहे। परंतु वह त्रुटि अगर दैन्य लाकर उन लोगोंके पुण्यकर्मको बाधाग्रस्त करे, तो किसी भी दिन मुखर्जीसाहब अपनेको सान्त्वना न दे सकेंगे। इस अशान्तिसे आपको उनकी रक्षा करनी ही होगी।”

द्विजदास किसी कदर आँसुओंको रोककर बोला—“भाई-साहबकी बात इस तरह किसीने भी नहीं सोची बन्दना, मैंने भी नहीं। कैसे आश्चर्यकी बात है!”

भाग्य अच्छा था जो शमादानकी छाया पड़नेसे उसे बन्दनाका चेहरा नहीं दीख पड़ रहा था। उसने कहा—“भाई साहबके लिए मैं

सभी तरहके दुःख अपना सकता हूँ, पर उनके कार्योंका बोझ भला कैसे ढोऊँगा ?—साहस नहीं होता। उन्हीं सबको देखने आज बाहर गया था। उनका स्कूल, उनका विद्यालय, उनकी संस्कृत-पाठशाला, मुसलमानोंके लिए स्थापित मक़तब या मदरसे,—और वे भी क्या दो-एक हैं ? बहुतसे हैं। किसान रिआयाकी आव-पाशीके लिए एक नहर खुदाई जा रही है, बहुत दिनों तक उसके लिए रुपये जुटाने पड़ेंगे। कागजोंमें एक लम्बी सूची मिली है मुझे—उसमें सिर्फ दानके आँकड़े हैं। वे लोग जब माँगने आयेंगे तो मैं क्या कहूँगा, कुछ समझमें नहीं आता।”

बन्दनाने कहा—“कहिएगा उन्हें, मिलेगा। उन्हें देना ही होगा। पर एक बात पूछती हूँ आपसे, क्या अब तक उन्होंने इस बारेमें किसीसे कुछ कहा सुना नहीं ?”

“नहीं।”

“इसकी वजह ?”

द्विजदासने कहा—“सुकृत गोपन करनेके लिए नहीं; किन्तु कहते भी तो किससे ? संसारमें उनका बन्धु तो कोई था नहीं। जब-जब दुःख आया है उसे अकेले ही झेला है, और जब आनन्द आया है उसका भी अकेले ही उपभोग किया है। अथवा जताया हो तो उनके उस एकमात्र बन्धुको।”—कहते हुए उसने ऊपरकी ओर देखा, और फिर कहने लगा—“पर उस बातको आत्मीय-स्वजन कैसे जान सकते हैं ? जानते होंगे सिर्फ वे और उनका वह अन्तर्यामी।”

बन्दनाने कुतूहलके साथ पूछा—“अच्छा द्विजू बाबू, आपको क्या मालूम होता है मुखर्जी साहबने किसी दिन किसीसे प्यार नहीं किया ? किसी भी आदमीको ?”

द्विजदासने कहा—“नहीं, यह बात उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है। मनुष्योंके संसारमें इतना बड़ा निःसंग एकाकी पुरुष और कोई भी न होगा।”

इसके बाद बहुत देर तक दोनों चुप रहे।

बन्दनाने जबरदस्ती मानो एक बोझ-सा झाड़के फेंक दिया, बोली—“सो होने दीजिए द्विजू बाबू। उनका सारा काम आपको उठा लेना पड़ेगा,—एकको भी आद छोड़ नहीं सकते।”

“पर मैं तो भाई-साहब नहीं हूँ, अकेला उठा कैसे सकता हूँ बन्दना ?”

“अकेले नहीं, दोनों जनें मिलके उठाइएगा। इसीसे तो कहती हूँ आपसे, आपको ब्याह करना होगा।”

“मगर प्रेम हुए बिना मैं ब्याह कैसे करूँ ?”

बन्दना आश्चर्यसे उसके मुँहकी ओर देखने लगी, बोली—“यह क्या कह रहे हैं द्विजू बाबू ? यह बात तो हमारे समाजमें सिर्फ हम ही लोग कहती रहती हैं। पर, आपके परिवारमें किसने कब प्रेम करके ब्याह किया है जो आपका उसके बगैर काम ही न चलेगा ? इस बहानेको छोड़ दीजिए।”

द्विजदासने कहा—“माना कि यह विधि हमारे घरकी नहीं है, किन्तु उसी नजीरको हमेशा मानना पड़ेगा, और उसीसे सुखी होऊँगा, ऐसा विश्वास मुझे नहीं है।”

बन्दनाने कहा—“विश्वासके विरुद्ध तर्क नहीं चल सकता, और सुखकी जमानत भी नहीं दे सकती, कारण वह धन जिनके हाथमें है उनका पता मैं नहीं जानती। उनकी विचार-पद्धति अद्भुत है,—उसमें तत्त्वकी खोज बृथा है। लेकिन, ब्य हके पहले नयन-मन-रंजन और पूर्वानुरागका खेल मैं बहुत देख चुकी हूँ, और फिर एक दिन उस अनुरागने दौड़ लगा दी न जाने किस गहन वनमें, सो प्रहसन भी बहुत देखा। मेरा कहना है कि उस जालमें पाँव रखनेकी ज़रूरत नहीं द्विजू बाबू। सोनेका माया-मृग जिस वनमें चरता डोलता हो, उसे वहीं चरन दीजिए, इस घरमें सादर बुलानेकी कोई ज़रूरत नहीं।”

द्विजदास मुसकराता हुआ बोला—“इसके मानी हैं कि सुधीर बाबूने आपके मनको चुरी तगह बिगाड़ दिया है।”

बन्दनाने भी हँसकर कहा, “हाँ। किन्तु मनका उस समय भी जितना कुछ बाकी था उसे बिगाड़ दिया आपने। और उसके बाद आये हैं अशोक। अब जली तकदीरमें ये ही टिके रहें तो बच जाऊँ।”

“कौन ? अशोक ? उनसे आपको किस बातका डर है ?”

“डर यह है कि उन्होंने भी अकस्मात् प्रेम करना शुरू कर दिया है।”

“तो क्या आपका यही संकल्प है कि कोई प्रेम-प्यारके पाससे भी न निकले ?”

“हाँ, यही मेरी प्रतिज्ञा है। ब्याह अगर कभी किया, तो यही संकल्प कर रहा है कि बड़े-भारी सुखकी आशासे कहीं किसी बड़ी-भारी विडम्बनामें पैर न रखूँ। इसीसे अगोक बाबूको सावधान कर दिया है कि मुझे प्यार करते ही मैं शाग खड़ी होऊँगी।”

“ सुनके, उन्होंने क्या कहा ? ”

“ कहा कुछ भी नहीं, सिर्फ मेरे मुँहकी तरफ देखते रह गये । उनकी हालत देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ द्विजू बाबू । ”

“ दुःख अगर सचमुच ही हुआ हो तो अब भी उम्मीद है । पर जान रखिएगा यह सब मौसीके घरकी घोरतर प्रतिक्रिया है,—महज सामयिक, टिकनेवाली नहीं । ”

बन्दनाने कहा—“ असम्भव नहीं, हो भी सकती है । मगर सीखा बहुत है । सोचती हूँ, भाग्यसे कलकत्ते खूब आ गई, वरना बहुत-सी बातें अज्ञात ही रह जाती । ”

द्विजदास कुछ देर चुप रहकर बोला—“ ज्यादा वक्त अब नहीं रहा, अन्तिम उपदेश मुझे क्या देना है सो दे जाइए—मुझे क्या करना होगा ? ”

बन्दनाने परिहासकी भंगिमासे कई बार सिर हिलते हुए कहा—“ उपदेश चाहिए ? सचमुच ही चाहिए क्या ? ”

द्विजदासने कहा—“ हाँ, सचमुच ही चाहिए । मैं भाई-साहब नहीं हूँ, मुझे बन्धुकी भी ज़रूरत है और उपदेशकी भी । ब्याह करने मुझसे कहे जा रही है, सो मैं करूँगा । मगर मुहब्बत न सही, बन्धुत्व बगैर पाये जो भार आप मुझे दिये जा रही हैं उसे वहन कैसे करूँगा ? ”

द्विजदासके चेहरेपर परिहासका आभास तक न था, उसके कंठस्वरने बन्दनाको विचलित कर दिया, उसने कहा—“ डरकी कोई बात नहीं द्विजू बाबू, बन्धु आयेगा, सचमुचका प्रयोजन होनेपर भगवान उसे आपके दरवाजेके पास आकर पहुँचा जायेंगे । इतना विश्वास रखिएगा । ”

प्रत्युत्तरमें द्विजदास कुछ कहना ही चाहता था कि इतनेमें बाधा आ पड़ी । बाहरसे मैत्रेयीकी आवाज़ आई—“ द्विजू बाबू भीतर हैं क्या ? मा आपको एक बार बुला रही हैं । ”

द्विजू उठके खड़ा हो गया, बोला—“ बारह बजे गाड़ी जाती है, सादे-ग्यारह बजे यहाँसे खाना होना पड़ेगा । ठीक वक्तपर आपको आकर आवाज़ देंगा । याद रहे । ”—इतना कहकर वह जल्दीसे बाहर चला गया ।

×

×

×

२५

बन्दनाके निर्विघ्न बम्बई पहुँच जानेके संवादके उत्तरमें कई दिन बाद द्विजदासका जवाब पहुँचा था कि वह नाना कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण यथासमय चिट्ठी नहीं लिख सका। जैसा कि बन्दना अपनी आँखोंसे देख गई है सब वैसा ही चल रहा है। लिखने लायक कोई खास बात नहीं है। मैत्रेयीके पिता तो कलकत्ते लौट गये हैं, पर वह खुद अभी यहीं है। माकी सेवा-मुश्रुषामें उसकी त्रुटि नहीं पकड़ी जा सकती, घर-गृहस्थीका भार भी फिलहाल उसीपर आ पड़ा है। ठीक ही चल रहा है। घरके सब उससे खुश हैं। स्वयं द्विजदासकी तरफसे भी आज तक शिकायतका कोई कारण नहीं हुआ। अन्तमें बन्दना और उसके पिताके प्रति शुभ कामना करके और यथाविधि नमस्कारादि लिखके उसने पत्र समाप्त किया है।

इसके बाद तीन महीनेसे भी ज्यादा समय बीत गया, किसी तरफसे कोई पत्रादिका आदान-प्रदान नहीं हुआ। विप्रदासका, जीजीका, वासूका संवाद जाननेके लिए बन्दनाका मन बीच-बीचमें बहुत उत्कण्ठित हुआ है, पर जाननेका कोई उपाय उसे ढूँढ़े नहीं मिला। अपनी तरफसे उन लोगोंने आज तक खबर नहीं दी कि वे कहाँ हैं, कैसे हैं—सब-कुछ अज्ञात है। सिर्फ इसीकी जानकारीके लिए द्विजदासको अनुरोध-पूर्वक चिट्ठी लिखनेमें बन्दनाको इतनी शरम मालूम होती है कि सौ-सौ इच्छायें होते हुए भी यह काम उसके लिए असाध्य-सा हो रहा है। अब तो बलरामपुरकी स्मृतिकी तीव्रता और वेदनाकी तीक्ष्णता दोनों ही बहुत हल्की हो गई हैं, परन्तु वहाँसे चली आनेके बाद तो उसकी हालत प्रायः शोचनीय हो गई थी। किन्तु दिनपर दिन व्यथातुर विशुद्ध चित्त धीरे-धीरे जितना ही शांत होता आ रहा है उतना ही यह अनुभव होता है कि उन लोगोंके साथ सचमुचका ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है; एकत्र निवासके वे सुख-दुःखसे भरे अनिर्वचनीय दिन विचित्र घनिष्टतासे मनमें कितना ही क्यों न निबिड़ताका संचार करें, उनकी आयु थोड़ी है। यह समझना उसके लिए बाकी नहीं रहा कि इस आचारनिष्ठ प्राचीनपंथी मुखर्जी-परिवारके लिए वह आवश्यक भी नहीं है और अपनी भी नहीं है। दोनों पक्षोंमें शिक्षा संस्कार और सामाजिक परिवेष्टनने जो व्यवधान बना रखा है वह जैसा सत्य है वैसा ही कठिन भी।

इतनेमें एतिके कर्मस्थल पंजाबसे मौसीजी आ पहुँचीं। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है। पंजाबकी अपेक्षा बम्बईको आब-हवा अच्छी है, यह सलाह उन्हें किस डाक्टरने दी है, सो तो वे ही जानती हैं, पर आई हैं स्वास्थ्यके ही बहाने। बम्बई आनेके पहले बन्दना उनसे मिलके नहीं आई, यह शिकायत उनके मनके अन्दर मौजूद थी, परन्तु बहनौतिनके मिजाजका जो कुछ थोड़ा-बहुत परिचय उन्हें मिला है उससे बहनोई रे-साहबके दरबारमें प्रकट रूपसे नालिश रजू करनेकी उन्हें हिम्मत नहीं पड़ रही थी; फिर भी खानेकी टेबिलपर बैठकर इशारेसे उन्होंने यह बात छेड़ ही दी। बोलों—“मिस्टर रे, आपने एक बातपर गौर किया है या नहीं, मैं नहीं कह सकती, पर मैंने बहुत जगह देखा है कि मा-बापका इकलौता लड़का या इकलौती बेटी इतने ज्यादा जिद्दी हो जाया करते हैं कि उनके साथ निभना मुश्किल हो जाता है।”

साहबने इस बातका उसी क्षण स्वीकार कर लिया, और देखा कि दृष्टान्त उनके हाथके पास ही मौजूद है। आनन्दके साथ उसका उल्लेख करते हुए बोले—“जैसे यह पगली चिटिया। एक बार ‘ना’ कर दिया तो, किसकी मजाल कि ‘हाँ’ करा ले ? बचपनहीसे देखता आ रहा हूँ—”

बन्दनाने कहा—“इसीसे शायद अपनी जिद्दिन लड़कीको प्यार नहीं करते होंगे, क्यों बापूजी ?”

साहबने ज़ोरके साथ प्रतिवाद किया, बोले—“तू मेरी जिद्दिन लड़की है ? हरगिज़ नहीं। कोई नहीं कह सकता।”

बन्दना हँस दी, बोली—“अभी-अभी तो तुम कह रहे थे बापूजी !”

“मैं ? हरगिज़ नहीं।”

सुनकर मौसीतक बगैर हँसे न रह सकीं।

बन्दनाने पूछा—“अच्छा बापूजी, तुम्हारी तरह माको भी क्या मैं देखे न सुहाती थी ?”

साहबने कहा—“तेरी माको ? इस विषयको लेकर तो कितनी ही बार उससे मेरा झगड़ा हो जाया करता था। एक बार बचपनमें तैने मेरी घड़ी तोड़ दी थी। तेरी माने गुस्सेमें आकर तेरा कान पेंठ दिया और तू रोती हुई दौड़ी आई मेरे पास। मैंने गोदमें उठा लिया और फिर उस दिन तेरी माके साथ दिन-भर नहीं बोला।”—कहते-कहते वे पूर्वस्मृतिके आवेगमें उठके पास आ गये और लड़कीका माथा छातीसे लगाकर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे।

बन्दनाने कहा—“ बचपनकी तरह अब क्यों नहीं प्यार करते बापूजी ? ”

साहबने मौसीको जताया—“ सुना मिसेज़ घोषाल, पगलीकी बात सुनी ? ”

बन्दनाने कहा—“ क्यों फिर जब-तब कहते रहते हो कि ब्याह करके तेरा शंखट मिटा देना चाहता हूँ । मैं क्या तुम्हारी आँखोंकी किरकिरी हूँ ? ”

“ सुनती हैं मिसेज़ घोषाल, लड़कीकी बात सुनी ? ”

मौसीने कहा—“ सच है बन्दना । लड़की बड़ी हो जाती है तो मा-बापको कैसी जबरदस्त चिन्ता हो जाती है, सो खुदके लड़की होनेपर ही एक दिन समझोगी । ”

“ मैं समझना नहीं चाहती मौसी । ”

“ पर पिताके आगे तो कर्तव्य है बेटी । मा-बाप तो चिरजीवी नहीं होते । सन्तानका भविष्य न सोचें तो उनके लिए अपराधकी बात होगी । क्यों तुम्हारे पिताजीको मनमें शान्ति नहीं मिल रही है, इस बातको सिर्फ़ वे ही समझ सकते हैं जो खुद मा-बाप हैं । तुम्हारी बहन प्रकृतिका जबतक मैं ब्याह न कर सकी तबतक मुझसे भर-पेट रोटी नहीं खाई गई । सोना छूट गया था मेरा । कितनी रातें मुझे यों ही जग-जगके बितानी पड़ी हैं सो तुम नहीं समझोगी, तुम्हारे पिता समझ सकते हैं । तुम्हारी मा जिन्दा होती तो उनकी भी मेरी जैसी दशा होती । ”

रे साहबने सिर हिलाते हुए आहिस्तेसे कहा—“ बिलकुल सच है मिसेज़ घोषाल । ”

मौसी उन्हींकी तरफ़ मुखातिब होकर कहने लगीं—“ आज इसकी मा जीती होती तो बन्दनाके लिए वे आपको परेशान कर डालतीं । मैंने खुद ही क्या कम किया है उनको । अब तो उसकी यादसे भी शरमा जाती हूँ । ”

साहबने उनका अनुमोदन करते हुए कहा—“ इसमें आपका दोष नहीं । ऐसा ही हुआ करता है । ”

मौसी कहने लगीं—“ यही मैं जानती हूँ । सिर्फ़ यही चिन्ता बनी रहती थी कि अपनी भी तो उमर बढ़ती जा रही है,—आदमीके मरने-जीनेकी तो कोई स्थिरता नहीं, जीते-जी लड़कीका कुछ उपाय न कर सकी और अचानक कुछ छे गया तो क्या होगा । मारे चिन्ता और डरके वे तो सूख-से गथि थे । ”

बन्दनासे अब न सहा गया, उसने देखा तो उसके बापूजीका भी मुँह सूखने

लगा है, खाना बन्द हो गया है। उसने कहा—“मौसाजीको बेमतलब बहुत ज्यादा डर दिखाया है मौसी, और अब मेरे बापूजीको भी दिखा रही हो। ऐसा क्या हो गया, बताना भला ? बापूजी अभी बहुत दिन जीयेंगे। अपनी लड़कीकी भलाईके लिए जो कुछ करना होगा उसके लिए उन्हें बहुत समय मिलेगा। तुम झूठमूठको चिन्तामें मत डालो बापूजीको।”

मौसी कोई दबनेवाली रूह नहीं। खासकर, रे साहबने जब कि उन्हींका समर्थन करते हुए कहा—“तुम्हारी मौसीजी ठीक ही कह रही हैं बन्दना। वास्तवमें मेरी तबीयत अब ठीक नहीं रहा करती, और यह तो ठीक ही है कि शरीरका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ये अपनी आत्मीय हैं, समय रहते ये अगर सावधान न करें तो कौन करेगा बताओ ?”—इतना कहकर वे दोनोंके मुँहकी तरफ देखने लगे। मौसीने तिरछी निगाहोंसे देखा कि बन्दनाका चेहरा छाया-च्छन्न-सा हो रहा है, वे तुरंत लज्जित-कंठसे व्यस्तताके साथ कह उठीं—“यह कहना आपका बिलकुल असंगत है मिस्टर रे। आपकी सौ सालकी परमायु हो, हमारी सबकी यही प्रार्थना है। मैंने तो सिर्फ यही कहना चाहा था—”

साहब बीच ही में बोल उठे—“नहीं, आप ठीक ही कह रही हैं। सच-मुच स्वास्थ्य मेरा ठीक नहीं है। समयपर सावधान न होना, कर्तव्यकी उपेक्षा करना सचमुच ही अनुचित है।”

बन्दनाने अपने गूढ़ क्रोधको दमन करते हुए कहा—“आज बापूजी कुछ खाने-पीने ही न सकेंगे मौसीजी।”

मौसीने कहा—“रहने दीजिए इन सब बातोंको मिस्टर रे। आपका खाना-पीना पूरा न हुआ तो मुझे बहुत कष्ट होगा।”

साहबकी खाने-पीनेमें रुचि जाती रही थी, फिर भी जबरदस्ती उन्होंने मांसका एक टुकड़ा काटके मुँहमें डाला। इसके बाद खाने-पीनेका काम कुछ देर तक चुपचाप ही चलता रहा।

साहबने पूछा—“जमाई साहबकी प्रैक्टिस कैसी चल रही है मिसेज़ घोषाल ?”

मौसीने जवाब दिया—“अभी तो शुरू ही की है। सुना है बुरी नहीं चलती।”

फिर कुछ देर सचाटा रहा। मौसीने मुँहका ग्रास निगलते हुए कहा—“प्रैक्टिस ज़ैसी भी चले मिस्टर रे, मैं उसको बहुत महत्व नहीं देती। मेरा

तो कहना है कि उससे भी बहुत बड़ा है आदमीका चरित्र। उसके निर्मल हुए बगैर कोई भी स्त्री कभी यथार्थ सुखी नहीं हो सकती। ”

“ इसमें क्या सन्देह । ”

मौसी कहने लगी—“ मेरी एक मुश्किल यह है कि मेरे अन्दर मायकेके शिक्षासंस्कार मौजूद हैं। उन लोगोंके दृष्टान्त मनमें गुंथे हुए हैं। उनसे एक तिल भी कहीं कम-वेश देखती हूँ तो मुझसे सहा नहीं जाता। अपने अशोकको देखती हूँ तो उसी नैतिक आब-हवाकी बात याद आ जाती है जिसमें मेरा बचपन बीता है। मेरे पिता, मेरे भाई जैसे थे—यह अशोक भी ठीक वैसा ही उतरा है। वैसा ही सरल, वैसा ही उदार, वैसा ही चरित्रवान् । ”

रे साहबने सब-कुछ मान लिया, कहने लगे—“ मुझे भी ठीक ऐसा ही लगा है मिसेज़ घोषाल। लड़का बड़ा सदाचारी है, छै-सात दिन वह यहाँ था, उसके व्यवहारसे मैं मुग्ध हो गया हूँ। ”—इतना कहकर उन्होंने कन्याको साक्षी मानते हुए कहा—“ क्यों, ठीक कह रहा हूँ न पगली, अशोक हम लोगोंको कैसा अच्छा लगा था ? जिस दिन वह यहाँसे गया, मेरा तो दिन-भर मन खराब रहा । ”

बन्दनाने स्वीकार करते हुए कहा—“ हाँ बाबूजी, बड़े अच्छे आदमी हैं ! जैसे विनयी वैसे ही भद्र। मेरे तो किसी भी अनुरोधपर उन्होंने ‘ ना ’ नहीं किया। मुझे वे बम्बई आकर न पहुँचा जाते तो बड़ी आफत होती । ”

मौसीने कहा—“ और एक बात शायद तुमने देखी होगी बन्दना, उसमें स्नॉबरी बिलकुल नहीं, जो कि आजकलके दिनोंमें, खेदके साथ कहना ही पड़ेगा कि हममेंसे बहुतोंके अन्दर पाई जाती है । ”

बन्दनाने हँसते हुए कहा—“ तुम्हारे घर पर तो किसी दिन किसी स्नॉबको देखा नहीं मौसीजी । ”

मौसीने हँसके कहा—“ देखा क्यों नहीं बेटी। तुम अत्यन्त बुद्धिमती हो, तुम्हें वे कैसे धोखा दे सकते हैं ? ”

सुनकर रे साहब भी हँस दिये। यह बात उन्हें बहुत अच्छी लगी। बोले—“ इतनी बुद्धि साधारणतः पाई नहीं जाती मिसेज़ घोषाल। बापके मुँहसे यह बात गर्वकी-सी सुनाई पड़ेगी, पर बिना कहे भी रहा नहीं जाता । ”

बन्दनाने कहा—“ इस प्रसंगको तुम बन्द करो मौसीजी, नहीं तो फिर बापूजीको सम्हालते न बनेगा। तुमने इकलौती लड़कीके दोषोंको ही देखा है

पर यह नहीं देखा कि इकलौती लड़कीके बापोंकी तरह दाम्भिक आदमी भी संसारमें कम होते हैं। मेरे बापूजीकी धारणा है कि उनकी लड़की जैसी लड़की संसारमें दूसरी नहीं है।”

मौसीने कहा—“ उस धारणाकी मैं भी बड़ी हिस्सेदार हूँ बन्दना। सजा मिलनेवाली हो तो वह मुझे भी मिलनी चाहिए। ”

पिताके मुँहपर अनिर्वचनीय परितृप्तिकी मन्द-मन्द हँसी चमक उठी, उन्होंने कहा —“ मैं दाम्भिक हूँ या नहीं सो तो नहीं जानता, पर इतना जानता हूँ कि कन्या-रत्नकी दृष्टिसे मैं सचमुच ही भाग्यवान हूँ। ऐसी लड़की बहुत कम बापोंको मिलती है। ”

बन्दनाने कहा—“ बापूजी, यह क्या, आज तो तुमने एक भी ‘ सन्देश ’ नहीं खाया ? अच्छे नहीं बने शायद ? ”

साहबने प्रेटमेंसे आधा ‘ सन्देश ’ तोड़कर मुँहमें देते हुए कहा—“ सब कुछ बिटियाने अपने हाथसे बनाया है। अबकी कलकत्तेसे लौटनेके बाद इसने साराका सारा खाना बदल दिया है। रसेदार तरकारी, भुजिया, मछलीका शोल, दही-सन्देश और भी न जाने क्या-क्या बनाया करती है। किससे सीख आई है मालूम नहीं, घरमें मांस तो आने ही नहीं देती। कहती है उससे मेरी तबीयत खराब हो जाती है। देखिए मिसेज़ घोषाल, ये सब बंगाली खाने खाते-खाते मालूम होता है जैसे बुढ़ापेमें मैं अच्छा ही हूँ। अब ज़रा कुछ भूख भी लगने लगी है। ”

बन्दनाने कहा—“ मौसीजीको आदत नहीं है, शायद तकलीफ होती हो। ”

मौसीने इस गूढ़ व्यंगपर कुछ ध्यान नहीं दिया, बोली —“ नहीं-नहीं, तकलीफ काहेकी है, यह तो मुझे अच्छा ही लगता है। सिर्फ़ आब-हवा बदलना ही तो चेज़ नहीं है, खाने-पीनेमें भी चेज़ होना ज़रूरी है। इसीसे शायद मैं इतनी जल्दी स्वस्थ हो उठी हूँ। ”

“ अच्छी होने लगी हो, न मौसीजी ? ”

“ ज़रूर। इसमें शक थोड़े ही है। ”

“ तो और भी कुछ दिन रह जाओ। और भी अच्छी हो जाओगी। ”

“ लेकिन ज्यादा दिन रहना भी मुश्किल है बन्दना। अशोकने लिखा है कि इस महीनेके आखिरमें ही वह पंजाब चेज़के लिए आनेवाला है। उसके आनेके पहले ही मुझे वहाँ पहुँच जाना है। ”

भोजन-अध्याय समाप्त हो रहा था, साहब उठना ही चाहते थे कि मौसी मन-ही-मन चंचल हो उठीं। वे प्रस्ताव पेश करनेके पक्षमें जो अनुकूल वातावरण तैयार कर चुकी थीं उसे आँखोंके लिहाजसे भ्रष्ट कर देनेसे फिर पैदा करना दुरूह हो जायगा, यह सोचकर उन्होंने संकोच छोड़कर कहा—“मिस्टर रे, एक बात कहनी थी, अगर समय—”

साहब उसी क्षण बैठ गये और बोले—“नहीं नहीं, समय क्यों नहीं है। कहिए क्या बात है ?”

मौसीने कहा—“मैंने सुना है कि बन्दनाकी भी असम्मति नहीं है। अशोक धनवान् तो नहीं है, पर अपनी सुशिक्षा और चरित्रबलसे स्ट्रगल (Struggle=संघर्ष) करके एक दिन वह उन्नति करेगा ही, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। आप अगर उसे अपनी लड़कीके अयोग्य न समझें तो—”

साहब आश्चर्यमें आकर बोले—“लेकिन यह कैसे हो सकता है मिसेज़ घोषाल ? अशोक आपका अपना भतीजा है, तो रिश्तेमें बन्दनाका मोसेरा भाई हुआ !”

मौसीने कहा—“सिर्फ कहनेके लिए, नहीं तो बहुत दूरका नाता है। मेरी नानी और बन्दनाकी नानी दोनों बहनें थीं, उसी रिश्तेसे बन्दनाकी मैं मौसी लगती हूँ। यह विवाह निषिद्ध नहीं हो सकता मिस्टर रे।”

साहब कुछ देर चुप रहे, शायद मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाते रहे, फिर कहने लगे—“अशोकको जितना भी मैंने देखा है और बन्दनाके मुँहसे जो भी कुछ सुना है उससे मैं उसे अयोग्य तो नहीं समझता। लड़कीका ब्याह तो एक-न-एक दिन मुझे करना ही है, मगर उसकी अपनी राय भी तो जान लेना ज़रूरी है।”

मौसीने स्नेहके स्वरमें बन्दनाको उत्साह देते हुए कहा—“शरमाओ मत बेटी, कह दो अपने बापूजीसे, क्या तुम्हारी इच्छा है ?”

बन्दनाका चेहरा क्षण-भरके लिए सुख हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण स्पष्ट स्वरमें उसने कहा—“अपनी इच्छाको मैं विसर्जन कर चुकी हूँ मौसीजी, उसकी खोज करनेकी ज़रूरत नहीं।”

साहबने डरते हुए कहा—“इसके मानी ?”

बन्दनाने कहा—“मानी मैं ठीक-ठीक समझाके बता नहीं सकती बापूजी। लेकिन इससे यह न सोच लेना कि मैं बाधा दे रही हूँ।”—फिर ज़रा ठहरकर

बोली—“मेरी सती जीजीका ब्याह हुआ था नौ-सालकी उमरमें। बाप-माने जिनके हाथ उन्हें सौंप दिया उन्होंने जीजीने अंगीकार कर लिया, अपनी बुद्धिसे उन्होंने चुनाव नहीं किया। फिर भी, भाग्यसे जिस पतिको पाया वह संसारमें दुर्लभ है। मैं उसी भाग्यपर ही विश्वास करूँगी बापूजी। विप्रदास बाबू साधु पुरुष हैं, आनेके पहले उन्होंने मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा था—जहाँ मेरा कल्याण है, भगवान वहीँ मुझे पहुँचा देंगे। उनकी वह बात कभी झूठी नहीं होनेकी। तुम मुझे जैसा आदेश दोगे मैं उसीका पालन करूँगी। मनमें किसी प्रकारका संशय, किसी तरहका डर-भय मैं न रखूँगी।”

साहब आश्चर्यसे दंग रह गये और उसके मुँहकी तरफ़ देखते रहे, मुँहसे उनके एक शब्द भी न निकला।

मौसीने कहा—“ब्याहके समय तुम्हारी सती जीजी थीं बालिका, इससे उनके मतामतका कोई सवाल ही नहीं उठा। मगर तुम तो बच्ची नहीं हो, बड़ी हो गई हो, अपनी भलाई-बुराईकी ज़िम्मेदारी अब तुम्हींपर है, इस तरह आँख मीचके भाग्यके भरोसे खेल खेलना तो अब तुम्हें नहीं सोहता बन्दना।”

“सोहता है या नहीं, मैं नहीं जानती मौसीजी, परन्तु उन्हींकी तरह, वैसे ही भाग्यको प्रसन्न मनसे मान लूँगी।”

“मगर इस तरह उदासीनकी तरह बात करोगी तो तुम्हारे बापूजी मन स्थिर कैसे करेंगे ?”

“जिस तरह इनके बड़े भाईने किया था सती-जीजीके सम्बन्धमें, जिस तरह इनके समस्त पूर्व पुरखोंने अपनी अपनी सन्तानोंका विवाह किया था—मेरे सम्बन्धमें भी उसी तरह बापूजी अपने मनको स्थिर करें।”

“तुम खुद कुछ भी न देखोगी, कुछ भी न सोचोगी ?”

“सोचा-सोची, देखा-देखी बहुत देख चुकी मौसीजी। अब और नहीं। अब भरोसा करूँगी बापूजीके आशीर्वादपर ओर उस भाग्यपर जिसको आजतक कोई नहीं देख सका।”

मौसीने हताश होकर ज़रा-कुछ कड़ुए स्वरमें कहा—“भाग्यको हम भी मानती हैं; लेकिन अपने संभाज, अपनी शिक्षा, और अपने संस्कार, सबको डुबोकर मुखर्जियोंका इन कई दिनोंका संसर्ग ही तुम्हें इतना ज्यादा आच्छन्न कर डालेगा—यह मैंने नहीं सोचा था। तुम्हारी बात सुनकर अब ऐसा नहीं मालूम होता कि तुम हमारी वही बन्दना हो। मानो हम लोगोंके लिए तुम बिलकुल ही पराई हो गई हो।”

बन्दनाने कहा—“ नहीं मौसीजी, मैं पराई नहीं हो गई। उन लोगोंको अपनानेके लिए मुझे किसीको पराया नहीं बनाना होगा, यह बात निश्चित रूपसे जान आई हूँ। मेरे विषयमें तुम लोग किसी तरहकी आशंका मत करो। ”

मौसीने पूछा—“ तो अशोकको बुलानेके लिए एक तार भेज दिया जाय ? ”

“ भेज दो। मुझे कोई आपत्ति नहीं। ”—इतना कहकर बन्दना कमरेसे बाहर चली गई।

“ मिस्टर रे, तो फिर आपके नामसे ही तार भेज दिया जाय ? ”—कहते हुए मौसीने मुँह उठाकर आश्चर्यके साथ देखा कि अकस्मात् उनकी आँखें भर आई हैं। इसका कारण उन्हें हँदें न मिला और साहबने धीरे-धीरे जब यह कहा कि टेलिग्राम आज रहने दो मिसेज़ घोषाल, तब भी हेतु न समझ सकनेके कारण उन्होंने पूछा—“ क्यों, रहने क्यों दें मिस्टर रे, बन्दना तो सम्मति दे ही गई है ? ”

“ नहीं नहीं, आज रहने दो। ”—कहकर वे चुप रह गये। इस चुप्पीने और उनके उन आँसुओंने भीतर-ही-भीतर मासीको क्रुद्ध कर दिया। एक प्रवीण और पदस्थ व्यक्तिकी इस तरहकी सेण्टिमेण्टलिटी (भावुकता) उनके लिए असह्य हो उठी। मगर आगे ज़िद करनेका भी उन्हें साहस न हुआ। दो-एक मिनट चुप रहनेके बाद साहबने कहा—“ उसके बापके करनेकी चिन्ता तो मैंने की है, पर उसकी मा नहीं है, सो उसकी भी चिन्ता मुझे करनी पड़ेगी मिसेज़ घोषाल। इसके लिए थोड़ा समय चाहिए। ”

मौसीने मन-ही-मन कहा, यह और एक स्टुपिड सेण्टिमेण्टलिटी (मूर्खता-पूर्ण भावुकता) हुई। साहबने इसे ताड़ा या नहीं सो नहीं मालूम, पर अबकी बार उन्होंने जबरदस्ती ज़रा भ्लान हँसी हँसते हुए कहा—“ मुश्किल तो यह है कि उसकी बात हम कोई अच्छी तरहसे समझ नहीं पाते। सिर्फ़ आजकी बात नहीं, बंगालसे आनेके बादसे ऐसा लग रहा है कि उसे ठीक-ठीक मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। उसने सम्मति दी ज़रूर है, पर वह उसकी अपनी है या उसके नये रिलीज़नकी, कुछ समझमें ही न आया। ”

“ नया रिलीज़न ? मानी ? ”

“ मानी मैं भी नहीं जानता। किन्तु स्पष्ट देख रहा हूँ कि बंगालसे वह न-जाने क्या एक चीज़ अपने साथ लेती आई है, रात-दिन वही उसको घेरे रहती है। उसका खाना-पीना बदल गया है, बात-चीत बदल गई है, रहन-सहन और चलना-फिरना तक मालूम होता है पहले जैसा नहीं रहा। ”

तड़के ही उठकर नहा-धोकर मेरे कमरेमें पहुँच जाती है और पाँव छूती है। कहता हूँ, ब्रिटिया, पहले तो तू यह सब कुछ न करती थी ? जवाब देती है, तब जानती न थी बापूजी। अब जो तुम्हारे पाँवोंकी धूल माथेसे लगाकर दिन शुरू करती हूँ तो समझ लेती हूँ कि वह मुझे दिन-भरके सब कामोंमें रक्षा करेगी। ”—कहते कहते उनकी आँखें फिर डबडबा आईं।

मौसी मन-ही-मन अत्यन्त नाराज़ होकर बोलीं—“ यह सब नया ढंग सीख आई है उसी मुवर्जियोंके घरसे। आप तो जानते हैं कि वे कैसे दकियानूसी कट्टर हैं। मगर इसे रिलीज़न नहीं कहते, कुसंस्कार कहते हैं। वह पूजा-ऊआ भी करती है क्या ? ”

साहबने कहा—“ मालूम नहीं करती है या नहीं। शायद नहीं करती। कुसंस्कार मुझे भी लगा है, मना भी किया-कराया, पर वह पगली पहलेकी तरह अब तो बहस ही नहीं करती, चुपचाप सिर्फ़ सुनती और देखती रहती है। मेरा भी मुँह बन्द हो जाता है—कुछ कहते नहीं बनता। ”

मौसीने कहा—“ यह आपकी कमजोरी है। पर इतना निश्चित समझ लीजिए कि इसे रिलीज़न नहीं कहते, इसका नाम है सुपरस्टिशन, अन्धश्रद्धा। इसको प्रश्रय देना अन्याय है, अपराध है। ”

साहब दुविधाके साथ धीरे-धीरे कहने लगे—“ वही हो शायद। रिलीज़न शब्द मुँहसे ही कहता रहा हूँ, कभी खुद तो चर्चा की नहीं उसकी, उसका नेचर, स्वरूप, क्या है सो भी नहीं जानता; सिर्फ़ कभी-कभी अवाक् होकर सोचा करता हूँ कि लड़कीको इस तरह ऊपरसे नीचे तक बदल किसने दिया ? वह हँसी नहीं, आनन्दकी चंचलता नहीं, वर्षा ऋतुके खिलते हुए फूलकी तरह उसकी पँखुड़ियाँ मानो पानीसे भीगी हुई हैं। कभी उसे बुलाकर कहता हूँ, पगली, मुझसे छिपा मत, भीतर-ही-भीतर तुझे किसी बीमारीने तो नहीं घेर लिया है ? चटसे हँसके सिर हिलाकर कह देती है, नहीं बापूजी, मैं बिल्कुल अच्छी हूँ, मुझे किसी बीमारीने नहीं घेरा। ’ हँसती हुई वह तो घरके काममें लग जाती है, पर मेरी छातीके पंजर ढीले पड़ जाते हैं मिसेज़ घोषाल। यही एक लड़की है, मा नहीं, अपने हाथसे इतना बड़ा किया है इसे,—अपना सर्वस्व देकर भी अगर अपनी उसी बन्दनाको वैसाकी दैसी वापस पा जाता—”

मौसीने ज़ोर लगाकर कहा—“ पायेंगे। मैं वचन दे रही हूँ, ज़रूर पायेंगे।

यह सिर्फ एक सामयिक अवसाद है, धर्मकी सनक भी हो सकती है, पर है बिलकुल निस्सार। सिर्फ उन लोगोंके संसर्गमें आनेका क्षणिक विकार है। ब्याह कर दीजिए, सब दो दिनमें ठीक हो जायगा। हेमशाकी शिक्षा ही आदमीमें रह जाती है मिस्टर रे, दो दिनकी सनक दो ही दिनमें खतम हो जाती है।”

साहबको तसल्ली हुई, पर सन्देह नहीं मिटा। बोले—“उसको कहाँसे किससे क्या प्रेरणा मिली, मुझे नहीं मालूम, किन्तु सुना है, यदि वह आती है, तो फिर सच्चे मनुष्यके मनसे उसे हर्गिज नहीं मिटाया जा सकता। मनुष्यके चिर दिनके अभ्यासको वह एक क्षणमें बदल देती है। नशा जा मिलता है रक्तकी धारामें, जीवन-भर फिर उसकी खुमारी नहीं जाती। इसी बातका मुझे डर है मिसेज़ घांशाल।”

प्रत्युत्तरमें मौसी जरा अवज्ञाकी हँसी हँस दीं, कहने लगीं—“वाहियात है वाहियात। मैंने बहुत देखा है मिस्टर रे, दो-चार दिन बाद फिर कुछ नहीं रह जाता। फिर वहीका वही। लेकिन इसे बदने देना भी ठीक नहीं,—आज ही अशोकको एक तार कर दूँ—वह आ जाये।”

“आज ही भेजेंगी ?”

“हाँ आज ही। और आपके नामसे।”

साहबने मृदु कंठसे सम्मति जताते हुए कहा—“जैसा ठीक समझें करिए। मैं जानता हूँ, अशोक अच्छा लड़का है। चरित्रवान् है, सदाचारी है—नहीं तो बन्दना उसके साथ आनेको हरगिज राजी न होती।”

मौसीने इसी बातको ज़रा बढ़ा-फुलाकर कहना चाहा, पर इतनेमें एक विघ्न आ खड़ा हुआ। बन्दनाने कमरेके भीतर आकर कहा—“बापूजी, आज हाजी-साहबके यहाँकी औरतोंने मुझे चायक लिए निमंत्रण दिया है। दोपहरको जाऊँगी,—शामको आफिससे लौटते वक्त मुझे साथ लेते आना।”

मौसीने पूछा—“उनके घर तुम तो कुछ खाओगी-पीओगी नहीं बन्दना ?”

“नहीं।”

“क्यों ?”

“मेरी तबीयत नहीं होती।—बापूजी, तुम भूल तो न जाओगे ?”

“नहीं बेटी, तुम्हें लाना भूल जाऊँ, ऐसा भी कभी हो सकता है ?”

कहते हुए राय साहब ज़रा हँस दिये । फिर बोले—“अशोक आ रहे हैं । उन्हें आज एक तार भेज दूँगा ।”

“अच्छी बात है, भेज दो ।”

मौसीने कहा—“मैं ही ज़बरदस्ती उसे बुलवा रही हूँ । देखना, आनेपर उसका असम्मान न होने पावे ।”

“डरो मत मौसीजी, हमारे यहाँ किसीका असम्मान नहीं किया जाता । अशोक बाबू खुद जानते हैं ।”

लड़कीकी बात सुनकर राय साहबने प्रसन्न होकर कहा—“ऑफिस जाते वक्त रास्तेमें आज ही तार कर दूँगा ब्रिटिया । आज शुक्रवार है, सोमवारको वह यहाँ पहुँच सकता है अगर कोई विघ्न न आया ।”

इतनेमें दरवाना डाक लेकर आ पहुँचा । ढेरके ढेर अखबार हैं, जगह-जगहकी चिट्ठी-पत्री भी कुछ कम नहीं । इधर कुछ दिनोंसे डाकके प्रति बन्दनाका औत्सुक्य नहीं था । वह समझ गई थी कि प्रतिदिनकी आशा करके प्रतीक्षा करना वृथा है । उसकी याद करके चिट्ठी लिखनेवाला है ही कौन । वह जा ही रही थी कि राय साहबने उसका नाम लेकर कहा—“तेरे नामकी भी दो चिट्ठियाँ हैं बन्दना । और, लीजिए, एक आपकी भी है मिसेज़ घोषाल ।”

अपनीसे भी दूसरेकी चिट्ठीपर मौसीका ज्यादा कुतूहल है । मुँह बढ़ाकर देखती हुई बोली—“एक तो अशोकके हाथकी लिखी हुई मालूम होती है । दूसरी किसकी है ?”

इस अकारण प्रश्नका बन्दनाने कोई उत्तर नहीं दिया, दोनों चिट्ठियाँ हाथमें लेकर वह अपने कमरेकी तरफ़ चल दी ।

राय साहबने मुसकराते हुए कहा—“अशोकके साथ मालूम होता है चिट्ठी-पत्री चल रही है । तार कर दूँ, वह चला आवे । लड़का वास्तवमें अच्छा है । उसपर विश्वास न होता तो बन्दना कभी चिट्ठी न लिखती ।”

प्रत्युत्तरमें मौसी भी गर्वके साथ ज़रा हँस दीं । अर्थात् ‘जानती बहुत कुछ हूँ ।’

शामके वक्त आफिससे लौटते वक्त हाजी-साहबके घर होते हुए रे साहब अकेले घर लौटे । बन्दना वहाँ नहीं गई । मौसी सामने ही पड़ गई, मुँह बनाकरबोलीं—“बन्दना चिट्ठी लेकर जो तबकी घुसी है अपने कमरेमें, सो अब तक निकली ही नहीं ।”

राय साहबने उद्विग्न-मुखसे पूछा—“खाया नहीं ?”

“नहीं । सबेरें वही दो-चार फल खाये थे, फिर कुछ नहीं खाया ।”

“राय साहबने तेजीसे बन्दनाके कमरेके सामने जाकर दरवाजा खटखटाया, बोले—“त्रिटिया ।”

बन्दनाने किवाड़ खोल दिये । उसके चेहरेकी तरफ देखते ही राय साहब सन्न रह गये, पूछा—“क्या हुआ री ?”

बन्दनाने कहा—“बापूजी, आज रातकी गाड़ीसे मैं बलरामपुर जाऊँगी ।”

“बलरामपुर ? क्यों ?”

“द्विजदास बाबूने एक चिट्ठी लिखी है,—पढ़ोगे बापूजी ?”

“तू पढ़, मैं सुनता हूँ ।”—कहते हुए वे एक कुर्सी खींचकर बैठ गये । बन्दना उनसे सटकर खड़ी हो गई और चिट्ठी पढ़कर सुनाने लगी, जिसमें लिखा था—

“सुचारितासु,

आपके जानेका दिन याद आता है । सहनमें गाड़ी खड़ी थी और आपने कहा था कभी-कभी चिट्ठी देनेके लिए । मैंने कहा था—आलसी आदमी टहरा, चिट्ठी-पत्री लिखनेकी ज्यादा आदत नहीं, और अच्छी तरह लिख भी नहीं जानता । यह भार बल्कि और किसीपर छोड़ जाइए ।

सुनकर आप सन्न होकर मेरे मुँहकी तरफ देखने लगीं । उसके बाद गाड़ीपर जा बैठीं, दूसरी बार अनुरोध नहीं किया । शायद आपने सोचा होगा कि असौजन्य जिसे ऐसे समयमें भी एक-आध अच्छी बात मुँहपर नहीं लाने देता, उससे आगे और कहा भी क्या जा सकता है ?

मैं ऐसा ही हूँ । फिर भी आशा थी कि अगर कभी लिखना ही हो तो ऐसा कुछ लिख सकूँ जो राजी-खुशीकी खबरसे अधिक हो और वह लिखना अनायास ही मेरे समस्त अपराधोंकी क्षमा माँग सके ।

मनमें सोचा करता कि मनुष्यके लिए क्या अनसोचा दुःख ही है ? अनसोचा सुख क्या संसारमें होता ही नहीं ?

भाई साहबके दृष्ट देवता क्या बराबर आँखें मीचे ही रहेंगे, आँख खोलकर कभी देखेंगे ही नहीं ? अघटन जो घटित हो गया वही चिरस्थायी बना रहेगा, उसे डिगाने-मिटानेकी शक्ति क्या कहीं भी नहीं है ?

देखा गया कि नहीं है,—वह शक्ति कहीं भी नहीं है । न तो भगवान् ही डिगे, न उनका भक्त ही टस-से-मस हुआ । निर्धूम निष्कम्प दीप-शिखा आभ

भी ज्योंकी त्यों ऊर्ध्वमुखी होकर जल रही है, ज्योति कहींसे भी रंचमात्र नष्ट नहीं हुई है ।

यह प्रसंग क्यों छेड़ा, सो बतलाना है । तीन दिन हुए भाई साहब घर वापस आगये हैं । सबेरे जब वे गाड़ीसे उतरे तो उनके पीछे-पीछे उतरा वासू । उसके पाँव नंगे थे और गलेमें उत्तरीय * पड़ा था । गाड़ी वापस चली गई, और कोई नहीं उतरा । सबेरेकी धूपमें छतपर खड़ा था, आँखोंके आगे सारी दुनिया अन्धकारमय हो उठी,—ठीक अमावसकी रातकी तरह । शायद दो ही मिनट बीते होंगे, उसके बाद सब दीखने लगा, फिर सब स्पष्ट हो आया । ऐसा भी हुआ करता है, इसके पहले मैं नहीं जानता था ।

नीचे उतर आया । भाई साहबने कहा—‘ तेरी भाभी कल सबेरे मर गईं द्विजू । हाथमें रुपये-पैसे ज्यादा नहीं हैं, उसके लिए मामूली-सा श्राद्धका आयोजन कर दे । मा कहाँ हैं ? ’

मैंने कहा—‘ ढाका गई हैं, अपनी लड़कीके घर । ’

‘ ढाका ? ’—ज़रा चुप रहकर बोले—‘ क्या जानें, शायद आ न सकेंगी, पर मातृदाय जानकर वासू उन्हें चिट्ठी जरूर लिख दे । ’

मैंने कहा—‘ देगा क्यों नहीं । ’

वासू दौड़ा आया और मेरी गरदनसे लिपटकर उसने अपना मुँह छिपा लिया । उसके बाद रो उठा । जैसे उस रोनेकी कोई भाषा नहीं, वैसे ही चिट्ठीमें प्रकट करनेकी भी भाषा नहीं । शिकारका जानवर मरनेके पहले अपनी अन्तिम नालिश जिस भाषामें छोड़ जाता है, बहुत-कुछ वैसा ही समझो । उसे गोदमें उठाकर भाग आया सीधा अपने कमरेमें । वह वैसा ही रोता रहा मेरी छातीमें मुँह छिपाकर । मैंने मन-ही-मन कहा—ओ रे वासू, तुकमानकी दृष्टिसे तैने कुछ ज्यादा खोया हो सो बात नहीं, और भी एक आदमीकी क्षतिकी मात्रा तुझसे कहीं अधिक बढ़ गई है । और फिर तुझे समझानेवाला तो कोई है, पर उसके कोई भी नहीं है । सिर्फ़ एक आशा है—बन्दना अगर समझ सकें ।

इस तरह बहुत देर बीत गई । अन्तमें उसकी आँखें पोंछते हुए मैंने कहा—तू डरे मत रे, मा न रहें, बाप न रहें, पर मैं तो हूँ । ऋण तो उनका न चुका सकूँगा, पर उसे अस्वीकार कभी नहीं करूँगा । आज सबसं बढ़कर

* उत्तरीय=माता या पिताकी मृत्यु होनेपर, अशौच दूर होने तक, जनेऊकी भाँति पहना जानेवाला धजी-सा एक कपड़ा ।

ज्यथा और सबसे बढ़कर नुकसानके दिन यही रही तेरे काकाकी शपथ ।

किन्तु इस विषयको लेकर अब बातें न बढ़ाऊँगा । बातोंमें है ही क्या । बचपनमें पिताजी कहा करते थे मुझे गँवार, मा कहती थीं जंगली । भाई साहब भी कितनी ही बार गुस्सा हुए हैं,—अनादर और अवहेलनासे कितने ही दिन यह घर विषवत् हो उठा है, तब भाभी ही आई हैं मेरे पास, और उन्होंने कहा है—‘ लालाजी, क्या चाहिए तुम्हें बताओ तो ? ’ गुस्सेमें मैंने जवाब दिया है—‘ कुछ नहीं चाहिए भाभी, मैं चला जाऊँगा यहाँसे । ’

‘ कब ? ’

‘ आज ही । ’

सुनकर हँसके कहतीं—‘ हुकम नहीं है जानेका । जाओ तो देखूँ मेरे हुकमके खिलाफ । ’

फिर नहीं जा सका । पर वह जानेका दिन जब सचमुच ही आ गया तो वे ही चली गईं । सोचता हूँ, सिर्फ मेरे ही लिए था हुकम, उनको हुकम देनेवाला कोई नहीं था दुनियामें ?

भाई साहबसे पूछा—‘ कैसे मरीं वे ? ’ बोले—‘ कलकत्ते ही में तबीयत खराब हो गई—शायद भीतर-ही-भीतर बहुत सोचा करती थी—फिर ले गया पछाँहकी तरफ । पर कहीं भी सुविधा नहीं हुई । अन्तमें हरिद्वारमें बुखार आ गया, लेकर चला आया काशी । वहीं देहान्त हो गया । ’ बस ।

पूछा—‘ इलाज हुआ था भाई-साहब ? ’

बोले—‘ यथासम्भव हुआ ही था । ’

पर वह ‘ यथा ’ कितना-सा था, सो भाई साहबके सिवा और कोई नहीं जानता ।

इच्छा हुई कि कहूँ, मुझे इतनी बड़ी सजा क्यों दी ? क्या किया था मैंने ? पर उनके मुँहकी तरफ देखकर इस प्रश्नको ज्ञानपर न ला सका ।

पूछा—‘ वे किसीसे कुछ कह नहीं गई भाई साहब ? ’

बोले—‘ हाँ । मरनेके आठ-दस घंटे पहले तक होश था । पूछा कि सती भासे कुछ कहना है ? ’

बोली—‘ नहीं । ’

‘ मुझसे ? ’

‘ नहीं । ’

‘ द्विजसे ? ’

‘हाँ। उससे मेरा आशीर्वाद कह देना। कहना, सब रहा।’

मैं भागकर भाभीके सूने घरमें आ गया। फोटो उतरवानेमें उन्हें बड़ी शरम लगती थी। सिर्फ़ एक ज़सवीर उनकी आलमारीमें छिपी हुई रखी थी। मेरी ही उतारी हुई थी वह। उसके सामने खड़ा होकर बोला—‘धन्य हो गया मैं भाभी, समझ गया आज तुम्हारा हुकम। इतनी जल्दी चली जाओगी, यह मैंने नहीं सोचा था। मगर, कहीं भी अगर हो तुम, तो देखोगी कि तुम्हारे आदेशकी मैंने उपेक्षा नहीं की। सिर्फ़ इतनी शक्ति दो कि तुम्हारे शोकमें किसीके सामने मेरे आँसू न गिरें। पर आज यहीं तक रहने दो उनकी बात।

अब रह गया मैं। जाते वक्त आपने अनुरोध किया था ब्याह करनेके लिए। कारण, इतना भार अकेला मैं नहीं ढो सकता—संगी-साथीकी ज़रूरत है। वह संगी होगी मैत्रेयी—यही आपके मनमें था। मैंने आपत्ति नहीं की, सोचा कि संसारमें पन्द्रह-आना आनन्द ही जब मिट चुका, तब बाकी एक-आनेके लिए खींचातानी न करूँगा। किन्तु वह भी आज नहीं होता दीखता,—भाभीकी मृत्युने ला दी अलंघनीय बाधा। बाधा किस बातकी? मैत्रेयी भार तो ले सकती है, पर वह बोझ नहीं ढो सकती। यह बात मालूम कर ली है। पर मेरे लिए अबकी बार वह बोझ ही हो गया है भारी। फिर भी कहूँगा कि विपत्तिके दिनोंमें उसने हम लोगोंके लिए बहुत किया है, उसके लिए मैं उसका कृतज्ञ हूँ। समय अगर कभी आया तो उसका ऋण भूलूँगा नहीं।

कल बहुत रात बीते वासू रो उठा। उसे किसी तरह सुला-सुलकर मैं चला गया भाई साहबके कमरेमें। देखा कि वे जगकर किताब पढ़ रहे हैं। मैंने पूछा—‘कौनसी किताब है भाई साहब?’ भाई साहबने किताब बन्द करके हँसते हुए कहा—‘क्या करने आया है तू बता?’ उनकी तरफ़ देखकर, जो कुछ कहने गया था सो न कह सका। सोचा, सोते-सोते वासू रो उठा है, उसमें विप्रदासका क्या है? दूसरी बात मनमें उठ आई, बोला—‘श्राद्धके बाद आप कहाँ रहेंगे भाई साहब? कलकत्ते?’

उन्होंने कहा—‘तीर्थयात्रा करने जाऊँगा।’

‘लौटेंगे कब तक?’

भाई साहब फिर जरा हँसके बोले—‘लौटूँगा नहीं।’

स्तब्ध होकर उनके मुँहकी ओर खड़ा देखता रहा। सन्देह न रहा कि उनका संकल्प टल नहीं सकता। भाई साहबने गृहस्थाश्रम छोड़ दिया।

परन्तु, अनुनय-विनय रोना-पीटना आखिर किसके आगे ? • इस निष्ठुर संन्यासीके आगे ? इससे बढ़कर और अपमान क्या हो सकता है ?

मैंने कहा—‘लेकिन वासू ?’

भाई साहबने कहा—‘हिमालयके पास एक आश्रमका पता लगा लिया है, वहाँवाले छोटे बच्चोंका भार उठा लेते हैं। शिक्षा भी वे ही देते हैं।’

‘उन लोगोंके हाथ सौंप देंगे उसे ? और मैंने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है सो ?’

उसके बाद मैं दोनों हाथोंसे कान दबाकर भाग आया वहाँसे। उन्होंने क्या जवाब दिया, मैंने नहीं सुना।

वासूके पास बैठकर सारी रात सोचता रहा हूँ। कहाँ इसका किनारा है, किसी भी तरह पता नहीं पा सका। याद उठ आई आपकी। आप कह गई थीं कि बन्धुकी जब सचमुच ही ज़रूरत होगी तब भगवान् अपने आप ही पहुँचा देंगे उसे दरवाजेके सामने। कहा था आपने कि इस बातपर विश्वास रखो। कौन बन्धु है, कब वह आयेगा मालूम नहीं, फिर भी विश्वास किये हुए बैठा हूँ कि मेरे इस अत्यन्त प्रयोजनके समय एक दिन वह आयेगा ही।

—द्विजदास।”

पढ़ना खतम होनेपर देखा गया कि राय साहबकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। रूमाल निकालकर उन्हें पोंछने लगे, बोले—“आज ही जाओ बेटा, मैं वाधा नहीं दूँगा। दरवान और तुम्हारा वह बूढ़ा हिमू भी साथ चला चलेगा।”

बन्दनाने झुककर पिताके पाँव छुए और सिरसे हाथ लगाती हुई बोली—
“जानेकी तैयारी करूँ बापूजी, जाती हूँ।”

×

×

×

२६

मैनेजर विराजदत्त मोटर लेकर स्टेशनपर उपस्थित थे। उन्होंने बन्दनाको सम्मानके साथ ट्रेनसे उतारकर गाड़ीमें बिठाया।

बन्दनाने पूछा—“मा अभी तक घर नहीं आई दत्तजी ?”

“नहीं दीदी।”

“मैत्रेयी ?”

“ नहीं, उन्हें तो कोई लाने नहीं गया । ”

“ वासू अच्छी तरह है ? ”

“ हाँ । ”

“ मुखर्जी साहब ? द्विजू बाबू ? ”

“ बड़े बाबू अच्छी तरह हैं, पर छोटे बाबू देखनेमें वैसे अच्छे नहीं मालूम होते । ”

बन्दनाने पूछा—“ बुखार-उखार तो नहीं आया ? ”

दत्तजीने कहा—“ ठीक मालूम नहीं दीदी, पर काम-काज तो सब कर रहे हैं । ”

बन्दना कुछ देर चुप रहकर बोली—“ दत्तजी, मुझे ऐसा लगता है कि मा शायद इस दुःखके बीच अब न आयेंगी । पर दुःख चाहे जितना भी क्यों न हो श्राद्धका आयोजन तो करना ही पड़ेगा । कुछ हो रहा है क्या ? ”

“ हो क्यों नहीं रहा है दीदी । बूढ़े बाबूके श्राद्धके लिए जैसा हुआ था लगभग वैसा ही इन्तजाम हो रहा है । ”

बात अच्छी तरह समझ न सकनेके कारण बन्दनाने विस्मयके साथ पूछा—

“ किसके जैसा कहा आपने, मुखर्जी साहबके पिताके श्राद्धके समान ? उतनी बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं ? ”

दत्तजीने कहा—“ हाँ, लगभग वैसी ही । जाकर देख लीजिएगा । बड़े

बाबूने छोटेको बुलाकर कहा—‘ द्विजू, पागलपन मत कर, सब चीज़की एक मात्रा होती है । ’ छोटे बाबूने तपाकसे कहा—‘ मात्रा होती है सो जानता हूँ, पर मात्राज्ञान तो सबका एक-सा नहीं होता भाई साहब । ’ बड़े बाबूने हँसके कहा—

“ पर तू तो सभीकी मात्राको लँघे जा रहा है द्विजू । ’ छोटे बाबूने कहा—‘ तो आप लोगोंसे मेरी यही विनती है कि एक बारके लिए मुझे क्षमा कर दीजिए । मैं मात्रा लंघन कर सकूँगा, पर भाभीकी मर्यादा लंघन नहीं कर सकूँगा । ’ इसके बाद फिर कोई कुछ नहीं बोला । अब आप अगर कुछ कर सकें तो करें । खर्च बीस-पच्चीस हजारसे कम न बैठेगा । ”

“ खर्च क्या सब छोटे बाबूका हो रहा है ? ”

“ हाँ, वे ही कर रहे हैं । ”

बन्दनाने पूछा—“ इतना क्या उनके लिए बहुत ज्यादा मालूम होता है दत्तजी ? ”

“ बहुत ज्यादा न होनेपर भी,—हालमें चला भी तो बहुत गया है दीदी । अब स्पृहलके चलनेकी ज़रूरत है । और फिर इसके ऊपर नई आफत आनेमें क्या देर लगती है ? ”

“अब और नई आफत कैसी ? ”

दत्तजी क्षण-भर चुप रहकर बोले—“आपने क्या सुना नहीं, जमाई-साहबके साथ मुकदमा चल रहा है ? इन सब बातोंका झूतीजा तो आप जानती ही हैं, फलाफल इसका कोई नहीं बता सकता । ”

“तो मना क्यों नहीं किया ? ”

“मना ? ये तो बड़े बाबू नहीं हैं दीदी, जो मनाही मान लेंगे । इनको मना करनेवाली सिर्फ एक ही थी, जो स्वर्गमें चली गई हैं । ”—इतना कहकर दत्तजीने एक गहरी साँस ले ली और चुप रह गये ।

बन्दनाने फिर कोई प्रश्न नहीं किया । मकानके पास आकर देखा कि सामने-वाले मैदानमें एक तरफ लकड़ियाँ काट-काटकर उनका बड़ा-भारी ढेर लगा दिया गया है । जो झोपड़ियाँ दयामयीके व्रत और अनुष्ठानके अवसरपर बनवाई गई थीं उनकी मरम्मत हो रही है । बाहरवाले प्रांगणमें विशाल मण्डप बनाया जा रहा है, बहुतसे लोग कामपर लगे हुए हैं । बन्दना इस बातको समझ गई कि विराजदत्तने अत्युक्ति कुछ भी नहीं की ।

गाड़ीसे उतरत ही वह सीधी ऊपर चली गई । पहले द्विजदासके कमरेमें पहुँची । एक मोटे तकियेके सहारे वह बिस्तरपर पड़ा हुआ था । परदा हटाये जानेकी आवाजसे आँख खोलके उठ बैठा और बोला—“बन्धु अपने आप ही चला आया मेरे दरवाजेपर—। ”

बन्दनाने कहा—“हाँ आया ही तो । पर इस वक्त पड़े कैसे हो ? ”

द्विजदासने कहा—“आँखें मीचके तुम्हारा ही ध्यान कर रहा था, और और मन-ही-मन कह रहा था, बन्दना, मेरे दुःखकी सीमा नहीं है । देहमें बल नहीं, मनमें भरोसा नहीं, शायद अब ढकेलते न बनेगा, नाव बीच धारमें ही डूबेगी । उस पार पहुँचना अब न हो सकेगा । ”

बन्दनाने कहा—“पहुँचना ही होगा । तुम्हें छुट्टी देकर अब नाव चलानेका भार लूँगी मैं खुद । ”

“सो ले लो । नाराज होकर अब चली मत जाना । ”

बन्दनाने उसके पास आकर ढोक देके प्रणाम किया, उसके पाँवकी धूल माथेसे लगाकर उठके खड़ी हुई तो देखा कि दोनोंकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं । इस तरह प्रणाम करना उसका यह पहले-पहल था । उसने कहा—“तुम्हारी आँखोंमें भी आँसू आते हैं, यह मैं पहले नहीं जानती थी । ”

द्विजदासने कहा—“ मैं भी नहीं जानता था । शायद उनके आनेका रास्ता अब तक बन्द था । पहले-पहल खुला था उस दिन जिस दिन तुम मैत्रेयीको बुलाकर उसपर इस घर-गृहस्थीका भार देनेके लिए कहकर चली गई । मैंने आड़में छिपकर आँखें पोंछ डालीं और मन-ही-मन कहा— इतनी बड़ी मार्मिक चोट जो आसानीसे हँसते-खेलते पहुँचा सकती है उसके आगे कभी भीख न मागूँगा । पर वह प्रतिज्ञा मेरी न निभ सकी । भाभी चली गई स्वर्ग, भाई साहबने जाहिर किया संसार-त्यागका संकल्प, एक मिनटके भूकम्पमें मानो सब कुछ धूलमें मिल गया । यह भी सह सका था, पर जब यह सुना कि घर छोड़कर वासू चला जायगा किसी अज्ञात आश्रममें, तो फिर नहीं सहा गया । एक बार सोचा कि जो कुछ है सब कल्याणीके बच्चोंको दे-दाकर मैं भी चला जाऊँ किसी तरफ, तब सहसा खयाल आगया तुम्हारी जाते समयकी अन्तिम बातका—तुमने मुझसे विश्वास करनेके लिए कहा था, कहा था—मेरे अत्यंत प्रयोजनके समय बन्धु अपने आप ही आ जायगा दरवाजेके पास । सोचा, यही तो मेरा अन्तिम प्रयोजनका समय है, अब और प्रयोजन कब होगा ? इसीसे तुम्हें चिट्ठी लिख दी । सन्देह आना चाह रहा था मनमें, पर ज़ोरके साथ उसे दूर भगा दिया, और कहा—बन्धु अब आयेगा ही । नहीं तो झूठ हो जायगी उसकी बात, झूठ हो जायगा भाभीका अन्तिम आशीर्वाद । जो बोझ वे छोड़ गई हैं उस बोझको मैं ढोऊँगा किस बलपर ? ”—कहते-कहते दो बूँद आँसू फिर दुलक पड़े ।

बन्दाने कहा—“ सभी कहते हैं कि तुम बड़े अवाध्य हो, किसीका कहना नहीं मानते । एक भाभीके सिवा तुमने और किसीकी बात नहीं सुनी । ”

द्विजदासने कहा—“ यही तुम्हें डर है ? पर क्यों नहीं सुनी, भाभी होती तो इसका जवाब दतीं । ”—इतना कहकर उसने अपनी आँखें पोंछ डालीं ।

बन्दना कुछ क्षण चुपचाप उसकी ओर देखती रही, फिर बोली—“ जवाब मैं पा गई, अब मेरे मनम कोई शंका नहीं है । ”—कहते हुए उसने द्विजदासका हाथ अपने हाथमें खींच लिया और फिर कुछ देर तक स्थिर रहकर कहा— सिर्फ तुम्हारे ही चारों ओर भूकम्प हुआ हो सो बात नहीं, मेरे अन्दर भी ऐसा ही भूकम्प हो चुका है । जो कुछ धूलमें मिलना था सो मिल चुका है; पर जो टूटने-झूटनेवाला नहीं था, डिगनेवाला नहीं था, उस अखंड और अडिगको मैं आज पा गई हूँ । अब जाती हूँ भाई साहबके पास । जाते वक्त मुझे उन्होंने

आशीर्वाद देते हुए कहा था—‘बन्दना, जो तुम्हारा अपना हो, मेरा आशीर्वाद है कि भगवान उसीको एक दिन तुम्हारे हाथमें सौंप दें।’ साधु-वाक्यपर मैंने अविश्वास नहीं किया, निश्चयसे जान लिया था कि यह बात उनकी सच्ची होगी ही; सिर्फ यह नहीं सोचा था कि वह आशीर्वाद इतने दुःखके भीतरसे उम अपने आदमीको ला देगा। जाऊँ, उन्हें जाकर प्रणाम कर आऊँ।”

इतनेमें “द्विजू, बन्दना आई है न?” कहती हुई अन्नदा वहाँ आ पहुँची।

“आ गई दीदी।”—कहती हुई बन्दनाने उसकी तरफ मुड़के देखा। अन्नदाके गंभीर-शोकाच्छन्न चेहरेको देखकर बन्दना चौंक पड़ी। पास जाकर उसकी छातीसे माथा टेककर अस्फुट स्वरमें बोली—“तुम्हारी यह शकल! मैं सोच भी नहीं सकती थी अनु-दीदी।” इसके बाद ही वह सिसक-सिसकके रोने लगी। अन्नदाकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। धीरे-धीरे बहुत देर तक वह उसकी पीठपर हाथ फेरती रही, फिर मृदुस्वरसे कहने लगी—“अन्नानक अब न चली जाना दीदी, कुछ दिन रहना। आर ज्यादा तुमसे क्या कहूँ।”

बन्दनाने कुछ न कहा, उसकी छातीपर वैसे ही मुँह छिपाये हुए सिर्फ सिर हिला दिया। इस तरह बहुत देर बीत गई। उसके बाद मुँह उठाकर आँचलसे आँखें पोंछते हुए उसने पूछा—“वासू कहाँ है अनु-दीदी?”

“नौकर उसे तालाबमें नहलाने ले गये हैं।”

“उसे खिलाता-पिलाता कौन है?”

अन्नदाने कहा—“द्विजू। दोनों एक साथ खाते हैं, एक साथ सोते हैं।” कहते-कहते फिर उसकी आँखोंमें आँसू भर आये; आँखें पोंछती हुई बोली—“मा तो सिर्फ वासूकी ही नहीं मरी, द्विजूकी भी मरी है।”—फिर आँखें पोंछीं और कहने लगी—“सभी कहते हैं, अकालमें असमयमें घरकी बड़ी बहू मर गई, इतनी कम उमरकी बहूके श्राद्धमें इतनी धूमधाम क्यों? इसे सभी कोई मना करते हैं,—ज्यादती होते देख सबको आग लग जाती है, सोचते हैं यह ज्यादाती है। यह तो नहीं जानता कोई कि वह थी इसकी पहले जनमकी मा। उसकी मर्यादामें किसी भी छलसे चोट पहुँचे, यह वल्हकैसे सह सकता है?”

द्विजदासने बन्दनाको इशारेसे दिखाते हुए कहा—“अब कोई डर नहीं अनु-दीदी, बन्दना आ गई हैं, अब सारा बोझ इन्हींके माथे लादकर मैं ओझल हो जाऊँगा।”

अन्नदाने कहा—“पराई लड़की इतना बोझ उठाने क्यों लगी भइया?”

“पराई लड़की ही तो बोझ उठाया करती है अनु-दीदी । इन्हें बुलाकर मैंने कह दिया है कि इतना दुःखका भार मैं नहीं ढो सकता और उसपर वासू अगर चला गया तो—यह रहा तुम लोगोंका बलरामपुरका मुखजियोंका घर, और यह रहा तुम लोगोंका सात-गिदीका मान-सम्मान,—शशधरके लड़कोंको यहाँ बुलाकर मैं संसारसे इस्तीफा देता हूँ । सिर्फ भाई साहब ही दे सकते हैं सो बात नहीं, द्विजु भी दे सकता है । संन्यास तो नहीं ले सकता, मैं जानता भी नहीं कि क्या चीज है वह,—पर रुपये-पैसेका बोझ अनायास ही फेंक-फाँककर चल दूँगा । ”

अन्नदाने बन्दनाके दोनों हाथ थामकर कहा—“रुकोगी नहीं दीदी, विपिनकी राय बदलवा नहीं सकोगी ? वासूको घर नहीं रख सकोगी ? ”

“सकूँगी अनु-दीदी । ”

“और यह जो सत्यानासी मामला चल रहा है जमाई-बाबूके साथ—रुकवा नहीं सकोगी इसे ? ”

“हाँ, यह भी कर सकूँगी अनु-दीदी । ”—क्षण-भर स्तब्ध रहकर फिर कहने लगी—“ये भी मेरे अबाध्य न होंगे, इसी शर्तपर मैं इस घरकी छोटी-बहू बननेको राजी हुई हूँ अनु-दीदी । ”

बातको अच्छी तरह न समझ सकनेसे अन्नदा चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखती रही । बन्दनाने कहा—“जो गया सो तो जा ही चुका । ऊपरसे क्या माको भी खोना पड़ेगा ? मुकदमा बगैर उठाये उन्हें वापस कैसे लाया जा सकता है ? ”

द्विजदासने तकियेके नीचेसे चाबियोंका गुच्छा निकालकर बन्दनाके पैरोंके पास फेंक दिया और कहा—“यह लो । अबाध्य न होऊँगा कभी—आज यही शर्त मंजूर करता हूँ तुम्हारी । ”

बन्दनाने चाबियोंका गुच्छा उठाकर आँचलसे बाँध लिया ।

अब अन्नदाको सारा तात्पर्य समझमें आ गया । बन्दनाको छातीसे लगाकर देरतक वह स्थिर खड़ी रही, उसकी आँखोंसे सिर्फ बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं ।

X

X

X

बन्दनाने विप्रदासके कमरेमें जाकर उन्हें प्रणाम किया । बोली—“भाई साहब, आ गई मैं । ”

यह नया सम्बोधन विप्रदासके कानोंको कुछ अटपटा-सा लगा । पर इस बारेमें कुछ न कहकर उन्होंने पूछा—“सुन लिया था तुम आ रही हो, तुम्हारे पिताजीका तार मिला था । रास्तेमें तकलीफ तो नहीं हुई ? ”

“ नहीं । ”

“ साथ कौन आया ? ”

“ हमारे यहाँका दरवान और बूढ़ा नौकर हिमू । ”

“ बापूजी तुम्हारे अच्छी तरह हैं ? ”

“ हाँ । ”

विप्रदास ज़रा-सा चुप रहकर बोले—“द्विजु कैसा पागलपन कर रहा है, देखा ?”

बन्दनाने कहा—“ आप श्राद्धके विषयमें कह रहे हैं ? पर वह पागलपन क्यों है ? आयोजन तो इतना ही बड़ा होना चाहिए था । नहीं तो उनकी मर्यादाको धक्का पहुँचेगा । ”

“ पर वह सम्हाल कैसे सकेगा बन्दना ? ”

“ वे नहीं तो, मैं तो सम्हाल सकूँगी भाई साहब ? ”

विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ शक्ति तुममें है, मैं मानता हूँ, पर मिजाज़ बिगड़ जानेसे तो मुश्किल होगी । अचानक नाराज़ होकर चलीं न गईं तो समझेंगा कि हाँ बच गया । ”

बन्दनाने कहा—“ उस दिन आई थी पराई-सी, सिरपर कोई भार नहीं था । पर आज आई हूँ घरकी छोटी-बहू होकर । गुस्सा दिलनेसे गुस्सा हो भी सकती हूँ, पर अब चली कैसे जा सकती हूँ ? वह रास्ता तो बन्द हो चुका है । ”—इतना कहकर उसने चाबियोंका गुच्छा दिखाते हुए कहा—“ यह देखिए, इस घरकी सब आलमारियों और सन्दूकोंकी तालियाँ ये रहीं । अपने-आप उठाकर इन्हें मैंने आँचलसे बाँध लिया है । ”

आनन्द और आश्चर्यसे विप्रदास चुपचाप देखता रह गया । बन्दना कहने लगी—“ आपसे शरमके साथ कहनेकी—छिपा-छिपूके कहनेकी कोई बात नहीं मेरी । भगवानके सामने जैसे आदमीकी छिपाने योग्य कोई बात नहीं होती ठीक वैसे ही । याद है आपको अपने आशीर्वादकी ? जाते समय मुझसे कहा था आपने कि तुम्हारा जो यथार्थमें अपना है उसीको तुम पाओगी एक रोज़ । उस दिनसे मेरी चंचलता जाती रही है, शान्त मनसे सिर्फ़ यही बात सोचती हूँ कि जो जितेन्द्रिय हैं, जो आजन्म शुद्ध सत्यवादी और साधु हैं उनके आशीर्वादसे अब मुझे कोई डर नहीं रह गया । जो मेरे पति हैं उन्हें मैं पाऊँगी ही । ”—कहते-कहते उसकी आँखें आँसुओंसे भर आई ।

विप्रदासने पास आकर उसके माथेपर हाथ रखकूँ, मौन आशीर्वाद दिया, और आज यह पहला दिन है कि बन्दना उनके पोंथेपर बहुत देर

तक मस्तक रखकर प्रणाम करती रही। उसके उठके खड़े होनेपर विप्रदासने कहा—“आज जिसे तुमने पाया है वन्दना, उससे बढ़कर दुर्लभ धन और कुछ नहीं। यह बात मेरी हमेशा याद रखना।”

वन्दनाने कहा—“याद रखूंगी भाई साहेब, एक दिनके लिए भी न भूलूंगी।”

जरा ठहरकर बोली—“एक दिन बीमारीमें आपकी सेवा की थी, आपने पुरस्कार देना चाहा था। पर उस दिन मैंने नहीं लिया था,—याद है वह बात ?”

“है।”

“आज वही पुरस्कार लेना चाहती हूँ। वासूको मैंने ले लिया।”

विप्रदासने मुसकराते हुए कहा—“ले लो।”

“उसे सिखाऊँगी मुझे ‘मा’ कहके पुकारना।”

“ऐसा ही करना। उसकी मा और उसके बाप—दोनोंको ही आज छोड़े जाता हूँ तुम्हारे अन्दर। और छोड़े जाता हूँ इस मुखर्जा-घरानेकी महती मर्यादा तुम्हारे हाथमें।

वन्दनाने क्षण-भर सिर झुकाये चुपचाप मानो यह भार ग्रहण कर लिया। उसके बाद वह बोली—“और एक प्रार्थना है। अपनेको पहचान न सकनेके कारण एक दिन आपके आगे मैंने अपराध किया था। आज वह भूल जाती रही, आज उसके लिए क्षमा चाहती हूँ।”

“क्षमा बहुत दिन पहले ही कर चुका वन्दना। मैं जानता था, तुम्हारी अन्तरात्माने जिसे एकाग्र मनसे चाहा है उसे तुम एक-न-एक दिन पहचानोगी ही। इसीसे, मेरे पास तुम्हें कोई शरम नहीं।”

वन्दनाकी आँखोंमें फिर आँसू भर आये, जबरन उन्हें रोकती हुई बोली—“और भी एक भिक्षा है। हम लोगोंके घर-संसारमें क्या एक दिन भी न रहेंगे आप ? अभिमान और संकोचके वश किसी भी दिन मन-भरकर आप सेवा नहीं कर पाई हूँ, पर वह बाधा तो अब जाती रही, अब तो मुझे संकोच नहीं रहा,—रहिए न कुछ दिन मेरे पास ? दो-चार दिन पूजा कर लें।”—कहकर वह छलछलाती हुई आँखोंसे उसकी ओर देखती रही, उसका आकुल कंठस्वर मानो अन्तःकरणको भेदकर बाहर निकला था।

विप्रदास मुसकराते हुए चुप रहे।

वन्दनाने कहा—“इस मुसकराइट-झुदा मौनको ही मैं सबसे ज्यादा डरती

भाई साहब । कैसा कठोर है आपका मन, इसे न तो गूलाया जा सकता है और न डिगाया ही जा सकता है । देंगे नहीं जवाब ? ”

विप्रदास अबकी बार हँस पड़े । उनकी हँसी जितनी स्निग्ध थी उतनी ही चर और निर्मल । उन्हें इस तरह हँसते हुए, बन्दनाने आज पहले ही पहल देखा ।

बली—“ जवाब पा गई, अब आपको मैं परेशान न करूँगी । पर मनको शान्त करे कहूँ, सो बता दीजिए । वह तो भीतरसे बार-बार रो-रो उठता है । ”

विप्रदासने कहा—“मन आप ही शान्त हो जायगा बन्दना, जिस दिन तुम निश्चय होकर यह समझ जाओगी कि तुम्हारे ‘ भाई साहब ’ दुःखके गढ़में लड़नेके लिए घर नहीं छोड़ रहे हैं । उसके पहले नहीं । ”

“ पर इसे मैं समझूँगी किस तरह ? ”

“ सिर्फ़ मुझपर विश्वास करके । जानती तो हो बहन, मैं झूठ नहीं बोलता । ”

बन्दना चुप रही । फिर दो-एक मिनट बाद एक गहरी साँस लेकर बोली—“ यही होगा । आजसे जी-जानसे समझाऊँगी अपनेको, भाई-साहब सच कहे हैं, सत्यवादी हैं वे, झूठी बातमें बहल नहीं गये मुझे । जहाँ मनुष्यका धर्म श्रेय है, उसी तीर्थके लिए उन्होंने यात्रा की है । ”

विप्रदासने कहा—“ हाँ । अपने मनको समझाकर कहना कि जो सबसे बढ़कर सुन्दर है, सबसे बढ़कर सत्य है, सबसे बढ़कर मधुर है, ‘ भाई साहब ’ उसी मार्गकी खोजमें निकले हैं । उन्हें बाधा नहीं देनी चाहिए, उन्हें भ्रान्त नहीं कहना चाहिए, उनके लिए शोक करना अपराध है । ”

बन्दनाकी आँखोंमें फिर आँसू उमड़ आये, जल्दीसे उन्हें पोंछकर बोली—“ ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा । इस जीवनमें अगर फिर कभी भेंट न हुई, तो भी कहूँगी—वे भ्रान्त नहीं हुए, उनके लिए शोक करना अपराध है । ”

परदेकी सँधमेंसे मुँह निकालकर दत्तजीने कहा—“ दीदी, एक ज़रूरी बात बली है, एक बार बाहर आना होगा । ”

“ आती हूँ बिराज बाबू । भाई साहब, जाती हूँ ज़रा । ”—इतना कहकर बली बाहर चली गई ।

सतीका श्राद्ध समारोहके साथ समाप्त हो गया । भिक्षुक दीन-दुःखी सब सती-साध्वीका जयगान करके वापस चले गये । सभीने कहा—“ मुखर्जी-रानेका कारज ऐसा ही हुआ करता है । उसमें छोटा-बड़ा नहीं होता । ”

सवेरे नहा-धोकर बन्दना जब विप्रदासके कमरेमें उन्हें प्रणाम करके पहुँची तो वहाँका दृश्य देखकर वह मारे आश्चर्यके ठिठकके खड़ी हो गई । उनके पास

बैठी थी दयामयी । सेवरेकी गाड़ीसे आई हैं, अभी तक किसीको मालूम है । माकी शकल देखकर बन्दनाके हृदयको बड़ी चोट पहुँची । सोने रंग काला-स्याह पड़ गया है, माथेमें छोटे-छोटे बाल हैं रूखे-सूखे, धूल है उनमें, आँखें बैठ गई हैं, माथेपर रेखाएँ खिंच गई हैं—दुःख-शोकरक वेदनापूर्ण तसवीर उसने पहले कभी नहीं देखी । उसे याद उठ आई उसी उस ऐश्वर्यवती सर्वस्वामिनी विप्रदासकी माकी । कितनेसे दिन बीते हैं आज उनकी सारीकी सारी महिमा मानो राहकी धूलमें मिल गई है । पास उसने उन्हें प्रणाम किया, बोली—“ कब आई मा, मैं तो जान भी न पा-

दयामयीन उसकी ठोड़ी छूकर अपने पोटुए चूमे, बोली—“ मेरे खबरकी क्या ज़रूरत थी बन्दना ? तब आया करती थी विप्रदासकी मा गाँव-भरके लड़कें-बूढ़े सबको खबर लग जाती थी । विपिन, काम तो चुका बेटा, चल न, मा-बेटे आज ही यात्रा कर दें । ”

सुनकर विप्रदासने हँसते हुए कहा—“ डरो मत मा, मा-बेटेकी य विघ्न नहीं आयेगा, पर आज नहीं । बन्दनाके पिता आ रहे हैं कल, अब छोटी-बहूके हाथमें सब घर-गृहस्थी सम्हालये बगैर कैसे जाओगी तुम ? ”

दयामयी बहुत देर तक चुप रहीं, फिर बोली—“ ऐसा ही हो विपिन सहन नहीं होगा मुझे, ऐसा झूठ अब कभी मुँहसे न निकालूँगी । पर कै बाकी है और ?

“ सिर्फ सात दिन मा । आज ही के दिन हमारी यात्रा शुरू हो जायगी बन्दनाने कहा—“ भीतर चलो मा, अपने कमरेमें । ”

दयामयीने सिर हिलाकर अस्वीकार किया, बोली—“ तुम्हारी यह बात रख सकूँगी बेटो । जितने दिन रहना है, यहीं रहूँगी, और जानेका दिन तो यहींसे दोनों जने चल पड़ेंगे । भीतर जो कुछ है, सब तुम्हारा रहा बन्दनाने जिद नहीं की, सिर्फ एक बार उनकी पदधूलि लेकर नीची क्रिये बाहर चल दिया ।

विप्रदासका पत्र पाकर साहब एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर बलरामपुर पहुँचे और कन्याको द्विजदासके हाथ अर्पण करके फिर बम्बई लौट गये ।

इस विवाहमें नौबत नहीं बजी, बराती और कन्या-पक्षवालोंमें किसी त विवाद नहीं हुआ, स्त्रियोंने मंगल-ध्वनिकी अस्फुट, शंख बजे दबे हुए स—सुहाग-रात रही स्तब्ध, मौन ।

